तुलसी के राम





बजरङ्ग दत्त मिश्र

२५६·४१
मिश्र/बातु

तुलसी के राम

लेखक

बजरङ्ग दत्त मिश्र

प्रकाशक

सत् प्रकाशन

११३, बलराम हाउस, इलाहाबाद

प्रकाशक :
बजरङ्ग दत्त मिश्र
११३, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद–२

•

प्रथम संस्करण : ११००

•

मूल्य : पचीस रुपए मात्र

•

सर्वाधिकार : लेखकाधीन

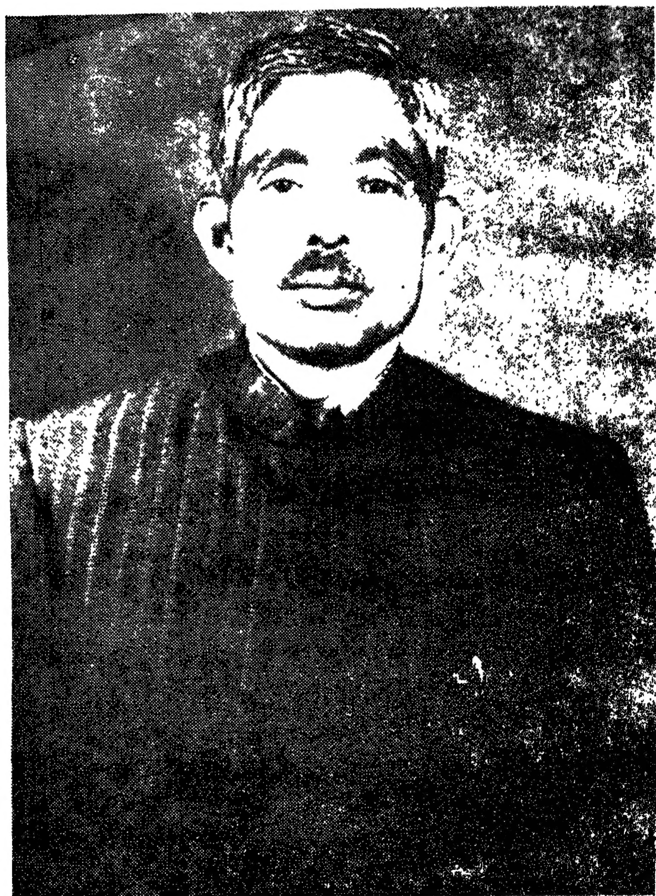
•

मुद्रक :
पियरलेस प्रिन्टर्स
१, बाई का बाग,
इलाहाबाद–३

समर्पण



पूज्य पिता स्वर्गीय पं० माताशरण मिश्र को
जिनके पुण्य - प्रताप से ही यह सब संभव हुआ ।



लेखक : बजरङ्ग दत्त मिश्र

लेखक-परिचय

भक्त-भगवान जहाँ अवतीर्ण
ज्ञान का नित्य जहाँ उत्कर्ष,
वही है हरि का क्रीड़ा क्षेत्र
उसी को कहते भारतवर्ष।

जहाँ कवि आते साधक सन्त
सिद्धगण करते हरि का गान,
यहाँ के जनपद ग्राम पुनीत
लिए हैं अपना अद्‍भुत मान।

सई सरिता के पावन तीर
बसा है वैद्यपट्टी प्रिय ग्राम,
विदित जनपद प्रतापगढ़ मान्य
मिश्र बजरंगदत्त का धाम।

पिता माताशरण पुनीत
मातृ सुखदेई देवी धन्य,
पितामह पंडित राम कुमार
पौत्र हैं जिनके आप अनन्य।

बयासी उन्नीस सौ कमनीय
मास अगहन नवमी अनुकूल,
विहँसते भू पर आए आप
मिटाते अपनी माँ का शूल।

बुद्धि बचपन से बड़ी कुशाग्र।
प्रथम श्रेणी में हो उत्तीर्ण,
कला-सौष्ठव विनम्र-व्यवहार
दक्षता मानवता से पूर्ण।

भक्ति का उर में बढ़ता भाव
शासकीय सेवा में अनुरक्त,
त्याग की बने रहे प्रतिमूर्ति
न्याय के हित में सदा सशक्त

सदा सेवा रत सेवा लीन
सत्य के हित इनका सत्संग,
लेखनी से देते सद्ग्रन्थ
राष्ट्रहित धार्मिक लिए उमंग।

विविध इनके आर्योचित कार्य
सन्त सद्मित्र सुजन कमनीय,
आधिदैविक भौतिक अध्यात्म
आत्मविद राम भक्त महनीय।

लिखा मानस मुक्ता अभिराम
लिखा ये भक्त-भरत सुखधाम,
लिखा है संवैधानिक ग्रंथ
लिखा पावन तुलसी के राम।

प्रसारण में लेकर के भाग
नए युग को देते संकेत,
आप का तन-मन सेवा लीन
सत्य-साधन के आप निकेत।

आपकी निष्ठा में हनुमान
चरित में बैठे भरत सुजान,
लेखनी गंगा सी सुपुनीत
करे जन-मानस का कल्याण।

सत्यदेव मिश्र 'उपेन्द्र'
ग्राम—मझरा, देवरी आमघाट
मीरजापुर

परम सन्त पूज्यपाद प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी की अनुशंसा

दोहा— मिश्र दत्त बजरंग जी, लिख्यों ग्रंथ अभिराम।
अति पावन शोभा सदन, यह तुलसी के राम ॥

छप्पय— राम नाम ही नाम और सब नाम असत हैं।
राम रटें तें पाप कटैं सब संतनि मत हैं।
राम नाम के लेत मधुर बानी ह्वै जावै।
राम स्वाद रस मिल्यौ जिनहिं तिनि अन्य न भावै।
राम नाम काननि प्रबिसि, हिय के मेटे शोक सब।
रोम रोम रमि जात है, राम रूप ह्वै जाय तब ॥

संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग) प्रभुदत्त ब्रह्मचारी



डॉ० उदय नारायण तिवारी की मंगल-कामना

पंडित बजरंग दत्त मिश्र ने भगवान राम तथा भरत के सम्बन्ध में दो पुस्तकें लिखी हैं। ये दोनों पुस्तकें स्वतंत्र होते हुये भी एक दूसरे की पूरक हैं। राम में शील, शक्ति एवं सौंदर्य का एक साथ ही समावेश है। अतएव उनके चरित्र को आधार मानकर आदिकवि से लेकर वर्तमान समय तक अनेक काव्य-ग्रंथों का निर्माण हो रहा है। इनकी दोनों पुस्तकें रामचरित मानस के आधार पर लिखी गई हैं। प्रथम पुस्तक में राम के जीवन से सम्बद्ध विविध पक्षों को उजागर किया गया है। एक प्रकार से ये दोनों ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के विशिष्ट एवं गहन अध्ययन के परिणाम हैं। ये दोनों ग्रन्थ रामचरित मानस के सामान्य पाठकों के लिये जितने उपादेय हैं उतने ही इस विषय के विशिष्ट अध्येताओं के लिये भी हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मानस प्रेमी एवं तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ इनसे लाभान्वित होंगे। मैं इन दोनों पुस्तकों को प्रकाशित रूप में देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ। साथ ही ऐसे ही सत्साहित्य की सृष्टि में वृद्धि करने हेतु मर्यादा पुरुषोत्तम लोकाभिराम श्रीराम से लेखक के दिव्य स्वास्थ्य एवं आह्लाद के लिये हृदय से प्रार्थी हूँ।

२०-३-८४ उदय नारायण तिवारी

श्री गुरवेनम:

सनातनधर्मावलम्बी जगत के लिए दशरथनन्दन श्रीराम एक दृढ़ आलोक-स्तम्भ की भाँति अवलम्ब हैं। महर्षि बाल्मीकिजी से लेकर आज तक अनेकानेक लेखकों एवं कवियों ने इसे आधार बनाकर अपनी लेखनी को धन्य किया है। न केवल भारतवर्ष में ही अपितु अन्यान्य उन देशों में भी श्रीराम-कथावस्तु को आश्रय बनाकर अनेक रचनायें विभिन्न रूपों में मिलती हैं, जहाँ भूतकाल में कभी वैदिक धर्म की पताका फहराती थी। भारतीय कथा साहित्य में तो जीवन के प्रत्येक अंग की उच्चातिउच्च मर्यादापालन का निर्वाह जितना श्रीरामकथा में प्राप्त होता है उतना अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

मेरे अभिन्न मित्र पंडित बजरंग दत्त मिश्र जी ने गोस्वामी तुलसीदासजी रचित श्रीरामचरितमानस का गम्भीर अध्ययन करके श्रीरामचरित रूपी दधिभाण्ड को स्वाध्याय रूपी मथानी से मथकर जो नवनीत निकाला है वह जनमानस के अंग-प्रत्यंग को पोषण प्रदान कर संतुष्ट करने वाला सिद्ध हुआ है। श्रीराम की लोकोत्तर मर्यादाओं को इन्होंने जिस सहजता से आधुनिक युग के लिए स्वीकार्य एवं सुगम बनाने का प्रयास किया है वह स्तुत्य है। चाहे गृहस्थ हो, चाहे त्यागी-विरागी हो सभी के लिए अनुकरणीय आदर्शों को बोधगम्य बनाकर प्रस्तुत करने का लेखक का प्रयत्न सराहनीय है। यह प्रयास इसलिए भी श्लाघ्य है कि इसमें नीरसता का कहीं चिह्न भी नहीं है, अपितु साहित्यिक छटा, भाव-सरसता एवं सहजता की ऐसी त्रिवेणी बन पड़ी है कि इसका अध्ययन करने वाला भाव-विमुग्ध होकर अवगाहन करता हुआ तन्मय हो जाता है और यही इस कृति की श्रेष्ठता का मापदण्ड है।

मेरी हार्दिक मंगल कामना है कि श्री मिश्र जी की यह रचना जनमानस को आलोकित करते हुये उसका मार्ग प्रशस्त करेगी।

रामाश्रम सत्संग मथुरा

मधुबनप्रसाद यादव

'तुलसी के राम' एक सहज दृष्टि में

भारत की कालजयी संस्कृति की अजस्र सरिता के तट पर अनेकानेक ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं, कवि-विद्वानों एवं महापुरुषों ने सद्ग्रंथों के रूप में लोक कल्याणार्थ चिरस्थायी दिव्य-देवालयों, भव्य भवनों तथा विशाल प्रासाद-सत्रों का निर्माण किया है। इनके माध्यम से भारतीय समाज में आराधना, पूजा एवं अर्चना अक्षुण्ण एवं परंपरागत रूप में प्रचलित है।

कालक्रम में शास्त्रीय विधि-निषेधों के भेदों-प्रभेदों तथा यदाकदा के संघर्षों के कारण बहुसंख्यक सामान्य-सरल जन के लिए जब इनका समीचीन उपयोग करना अत्यन्त ही कठिन हो गया तो सत्य-द्रष्टा सत्काव्य-स्रष्टा संत तुलसी ने 'कहत सुनत सब कर हित होई' के पवित्र उद्देश्य से स्वान्तः सुखाय अपने 'स्व' के सर्वस्व को 'पर' के परत्व के परमात्म-तत्व में विलीन करके एक विमल वाङ्मय का, ललित लोक भाषा के सुनीति नीर में सबके सत्वों को सानकर एक विशद, उन्मुक्त एवं सर्वसुलभ चारु-चैत्य का निर्माण कर दिया।

इस चैत्य पर युग-द्रष्टा, क्रान्तिकारी तुलसी ने 'राजाराम' की मनः पूत तथा तपः पूत लोक-नायकत्व पूर्ण अप्रतिम प्रतिमा को प्रतिष्ठापित करके उसका लोकाभिषेक भी कर दिया। सन्त तुलसी ने इस प्रकार राम को भारत की प्रत्येक झोपड़ी तथा महल में पहुँचा दिया है। इतना ही नहीं भारतीय समुद्र पार के द्वीप-द्वीपांतरों में जहाँ कहीं भी गए हैं, वहाँ उनके राम उनके साथ ही विराजमान हो गए हैं।

इस महान कार्य के लिए सन्त तुलसी को काकभुशुण्डि (विवेक) के रूप में राम जन्मों के सुयोगों पर अजेय-अयोध्या के राजप्रासाद में युक्ति-पूर्ण-योग-दृष्टि से सम्पन्न होकर अनेकशः बालक राम के उत्कृष्ट-उच्छिष्ट-प्रसादान्न को सांस्कृतिक रूप में ग्रहण करते हुए उनके रूप माधुरी-रस का पान करना पड़ा है। तब कहीं जाकर वे इस सिद्धि को प्राप्त करने में समर्थ हो सके हैं जिसके बल पर ही वे ज्ञान गर्वाभिमानियों के प्रतिनिधि स्वरूप बुद्धिजीवी मारकण्डेय जी तथा विशद एवं

अबाध-विचार-वाहक-विष्णु-वाहन वैज्ञानिक गरुण जी की शंकाओं का सम्यक् समाधान कर सके हैं। इस कार्य की फल-श्रुति, परमशिव के द्वारा उन्हें शुभाशीष के रूप में प्राप्त हुई है और 'संसय विहंग उड़ावन हारी' परम कल्याणकारी, श्रेयष्करी-रामकथा के श्रेष्ठतम कथाकार के रूप में विश्व-विश्रुत हैं।

यह तथ्य पुनः उजागर हो उठा है कि न तो आयु प्रमाण हैं और न वंश ही। श्रेष्ठता कहीं भी कभी भी किसी के द्वारा प्राप्त की जा सकती है :—

'तस्मात्प्रमाणं वयो न वंशः, कश्चित्क्वचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके।'

यह होते हुए भी आसुर-भावापन्न लोगों ने इतिहासिकता तथा वैज्ञानिकता के भौतिक मंत्राभिचारित मायास्त्रों का आश्रय लेकर भ्रमान्धकार उत्पन्न करते हुए 'राजाराम' की मनोज्ञ-मूर्ति पर आक्रमण करने का उपक्रम प्रारंभ कर दिया है।

इस भ्रमान्धकार को दूर करने के लिए मेरे वरेण्य तथा श्रद्धेय मित्र श्री बजरंग दत्त मिश्र ने अब तक समस्त ज्ञात तथा उपलब्ध राम संबंधी साहित्य का विधिवत् तथा शास्त्रीय अध्ययन करके इस तुलसी के राम' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है और यह मर्यादा पुरुषोत्तम रण-रंग-धीर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठतम के एक बाण के सदृश ही पर्याप्त है। यह बजरंग बाण ही है। इसके लिए अनवरत् प्रयास क्रम की ग्रंथमाला में प्रथम ग्रंथ 'मानस-मुक्ता' है। श्री हनुमान जी की भाँति उनकी कृपा से—अपनी जन्मजात प्रतिभा से रामचरित मानस के मुक्ता-गोलकों का विवेक-खरल में संपिष्टण करके, वैराग्य, भक्ति तथा ज्ञान इत्यादि विविध शक्तिशाली रसायनों से संपुटित करके उसकी ओजकारी ऊर्जा से भक्ति-भावित 'भक्त-भरत' नाम के ऐसे योग-युक्त रसायन-ग्रंथ की निष्पत्ति हुई जिसके सेवन से अन्तर्यामी सर्वजन हृदयस्थ राम 'तुलसी के राम' के रूप में सब के लिए व्यक्त हो गए हैं।

इस 'तुलसी के राम' में पाठकों को 'नीति, प्रीति, स्वारथ, परमारथ कोउ न राम सम जान जथारथ' के अनुसार राजाराम के विविध मंजुल, उदात्त, सूक्ष्म तथा व्यापक सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न, पुण्य-पूत एवं रसमय रूपों का वर्णन तो मिलेगा ही, साथ ही साथ 'राम न देखा आन' की अद्वैत-सिद्धि की साधना में राम की मुनि-मन-हारिणी रम-

णीय लीला-रहस्यों से प्रस्फुटित चारु-हास्य की छटा भी परिलक्षित होगी जो भक्ति तथा मुक्ति-दायिनी, भावातीत एवं विलक्षण है। इससे पाठक आत्म-साक्षात्कार की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। परिणामस्वरूप विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होने वाली विचार धाराएँ स्वतः उस दिशा में संगमार्पित होकर के प्रवाहित होने लगेंगी; जिससे 'एक दिशा में बहे भिन्नता की यह धारा' का वैदिक संकल्प पूर्ण हो सकेगा।

इसमें शास्त्रीय तथा सांस्कृतिक मर्यादाओं एवं मान्यताओं की रक्षा करते हुए उन स्वयं-सिद्ध श्रेष्ठताओं की संपुष्टि आधुनिक युगानुकूल वैज्ञानिक विधाओं से भी सम्यक् रूपेण की गई है, जो हमारी राष्ट्रीय भावात्मक एकता की भाव-भूमि के निर्माण में आधारभूत शिलान्यास हैं। अंतरंग एवं वहिरंग युग दृष्टियों से यह एक अभिनव एवं श्रेष्ठ कृति है। इसके लिए भी मिश्र जी को साधुवाद है। 'तुलसी के राम' जो सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं, इन्हें स्वस्थ दीर्घजीवी के रूप में सत्साहित्य की संरचना हेतु मंगलाशीष प्रदान करें—

बजरंगदत्त द्वारा प्रदत्त यह ग्रन्थ प्रसाद-रसायन है।
सत्यं शिवं सुन्दरं सुरभित भूषित प्रभा सुखायन है॥

मैं यह लिख कर स्वयं कृतकृत्य हूँ।

वीरपुर—गाजीपुर

शिवराम राय

सम्मति

भारतीय संस्कृति की मर्यादाओं का साङ्गोपाङ्ग निर्वाह करने वाले पुरुषोत्तम के रूप में दशरथनन्दन श्रीराम की प्रतिष्ठा है। राम मानव से महामानव, महामानव से देव और देव से परब्रह्म बने। राम की इस देवत्व-यात्रा ने अनेक वाङ्मयों तथा धर्मों को प्रभावित किया। रामकथा के मूलसर्जक आदि कवि बाल्मीकि के अनन्तर जैन तथा बौद्ध परम्पराओं में भी रामकथाकार महान कवि हुए। भारत की प्रायः समस्त भाषाओं में कोई न कोई रामायण-ग्रन्थ लिखा गया। इतना ही नहीं रामकथा देश, काल एवं व्यक्ति के बन्धनों को तोड़ कर वृहत्तर भारत के सुदूर-देशों—थाइलैण्ड, लाओस, कम्बोडिया तथा इण्डोनेशिया तक पहुँची और वहाँ के समूचे वातावरण को आत्मसात् कर लिया।

इस प्रकार यदि भारत रामकथा का शक्तिपीठ है तो वृहत्तर भारत के अन्यान्य देश उसके खण्डपीठ हैं। रामकथा के प्रभावी आदर्श चिरकाल से ही समाज को दिशा निर्देश देते रहे हैं। रामकथा की प्रासंगिकता आज के युद्धविभीषिका-जर्जर विश्वमानस को देखते हुए बढ़ सी गई है। फलतः समूचे विश्व में उसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

श्री बजरङ्गदत्त मिश्र, एक ऐसे ही कर्मठ साहित्यकार हैं जो रामकथा का अमृततत्व समाज को वितरित करने के लिए कृतसंकल्प हैं। मेरी दृष्टि में अमृतान्वेषी से अधिक महान होता है अमृत का वितरक।

'तुलसी के राम' श्री बजरंगदत्त मिश्र के अनेक वर्षों के सारस्वत अध्यवसाय का परिणाम है। इस लोकोपयोगी ग्रन्थ में विद्वान ग्रन्थकार ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र के विभिन्न पक्षों की रुचिकर व्याख्या की है। वैदुषी तथा भक्ति का मणिकाञ्चन इस व्याख्याग्रन्थ में अनुस्यूत है। मेरा हार्दिक विश्वास है कि रामकथा की व्याख्या का यह नवीन उपायन भक्तिप्रवण जनता को मानसिक शान्ति प्रदान करेगा।

राष्ट्रीय अस्मिता तथा सामाजिक सौराज्य की स्थापना राजनेताओं से कम, सन्तों, कवियों तथा साहित्यकारों से अधिक होती है। मैं ऐसे ही सन्त श्री बजरंगदत्त मिश्र का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ।

रीडर संस्कृत विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

अभिराज राजेन्द्र मिश्र
२०-२-८७

दो शब्द

श्री बजरंग दत्त मिश्र का लिखा 'तुलसी के राम' का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि श्री मिश्र जी ने रामचरित मानस में उल्लिखित राम के विभिन्न चारित्रिक गुणों एवं उनके ईश्वरत्व की एक सांगोपांग सुव्यवस्थित व्याख्या अपने इस निबंध में की है। जहाँ पर पाठकों को मानस के कुछ स्थल दुरूह और बोधगम्य नहीं हैं उन स्थलों को लेखक ने अपनी मौलिक प्रतिभा एवं अध्ययनशीलता के द्वारा जनमानसपटल पर उतारने का सफल प्रयास किया है।

श्री मिश्र ने इस निबंध को १६ अनुभागों में बाँटा है : रामकथा, परब्रह्मराम, स्थितप्रज्ञ राम, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, अहैतुक कृपालु राम, प्रबोधक राम, सीतापति राम, भक्त-हितकारी राम, जगतोद्धारक राम, अनुज स्नेही राम, सखा स्नेही राम, अमितवीर राम, प्रजापालक राम एवं उपास्य राम।

उपर्युक्त अनुभागों से यह स्वतः परिलक्षित है कि राम में जितने गुण समाहित हैं उन सबका लेखक ने इतना सजीव एवं सुस्पष्ट चित्रण किया है जिसके बिना पाठक मानस के अवगाहन में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। रामचरित मानस में राम के प्रधान पात्र होने के नाते जितनी भिन्न परिस्थितियों में उनका जीवन दिखाया गया है, और किसी पात्र का नहीं। भिन्न-भिन्न मनोविकारों को उभारने वाले जितने अवसर उनके सामने आए हैं, उतने और किसी पात्र के सामने नहीं। लक्ष्मण भी प्रत्येक परिस्थिति में उनके साथ रहे, इससे उनके संबंध में भी यही कहा जा सकता है। भरत का चरित्र जितना अंकित है उतना सबसे उज्ज्वल सबसे निर्मल और सब से निर्दोष है।

अनन्त शक्ति के साथ धीरता, गंभीरता और कोमलता 'राम' का प्रधान लक्षण है। यही उनका रामत्व है। विद्वान लेखक ने इसे भली-भाँति मौलिक ढंग से विश्लिष्ट करने की चेष्टा की है जिसमें उनको पूर्ण सफलता मिली है।

'रामकथा' में श्री मिश्र जी ने गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित

मानस' में व्यवहृत रामकथा का निरुपण तो किया ही है किन्तु पाठकों के व्यापक दृष्टिकोण का ध्यान रखते हुए उन्होंने अन्य कथाकारों की रामकथा की विशेषताओं का भी संक्षिप्त उल्लेख किया है। इस संबंध में बाल्मीकि रामायण, डा० बुल्के की 'रामकथा' स्वामी कर-पात्री जी की रामायण मीमांसा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित 'वयं रक्षाम:' भगवान सत्यसाईं द्वारा उच्चरित 'रामकथा रस वाहिनी' एवं संत श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र' द्वारा रचित 'श्री रामचरित' का विशेष उल्लेख है।

श्री मिश्र जी ने 'परब्रह्म राम' में राम के अनन्त गुणों का बड़े कौशलपूर्ण ढंग से विवेचन किया है। वे मात्र विष्णु अवतार ही नहीं वरन् साक्षात् परब्रह्म हैं "राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।"

'स्थितप्रज्ञ राम' में लेखक ने राम के उन गुणों को दर्शाया है जिनमें वे किसी भी वातावरण में होकर भी अपने को विचलित नहीं करते। उनके लिए सभी परिस्थितियाँ, चाहे कैसी भी हों सब समान हैं और वे कठिन से कठिन अवसरों पर भी अपना संयम एवं धैर्य नहीं खोते। इस बात को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने मानस का मंथन करके उसमें से मोतियों को निकालकर पाठकों के सम्मुख रख दिया है।

'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' में लेखक ने उन स्थलों का सोदाहरण चित्रण किया है जिनमें मानसकार ने राम के प्रत्येक कार्यकलाप को मर्यादा से ओतप्रोत दिखाया है। गोस्वामी जी ने अपने इष्टदेव राम को मर्यादा की कसौटी में ऐसा खरा उतारा है जहाँ पर इतर रामकथाकार उनसे गौड़ ही सिद्ध होते हैं।

'गुरुजनोनुगामी राम' के अन्तर्गत राम के चरित्र की सर्वोच्च विशालता उनके अपने माता-पिता, गुरु तथा अन्य सभी गुरुजनों के आज्ञापालन एवं मान-सम्मान में है। मिश्र जी ने इसमें ऐसे प्रकरणों का समावेश किया है जहाँ पर श्रीराम गुरुजनों के आदर एवं प्रतिष्ठा में एक उच्चादर्श प्रस्तुत करते हैं। माता को सान्त्वना देते हुए उनका यह कथन कितना सार्थक है :—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जे पितु मातु चरन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

'सहज स्वभाव सुशील राम' में लेखक ने राम की सरलता एवं सहजता का निरूपण किया है। राम का स्वभाव कृत्रिमता से रहित है और उनका अन्तस् जितना निर्मल है उतना वाह्य भी। उनका स्वयं का यह कथन कितना विश्वविश्रुत है :—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

'अहैतुक कृपालु राम' में लेखक ने राम की अहैतुकी कृपा के उन उदाहरणों को सँजोया है जिनमें राम की उक्त कृपा चरितार्थ होती है। गोस्वामी जी बड़े स्पष्ट शब्दों में इसका अंकन बड़े सुन्दर ढंग से किया है—

मोर सुधारहिं सो सब भाँती। जासु कृपाँ नहिं कृपा अघाती॥

'प्रबोधक राम' में लेखक ने अपनी अध्ययनशीलता एवं रामचरित मानस के गहन-सिंहावलोकन का परिचय दिया है। इसमें उन सभी तत्वों का समावेश किया गया है जहाँ पर श्रीराम के मुखारविन्द से शाश्वत उद्बोधन के भाव निस्सृत होते हैं जिसे लेखक ने रामगीता की संज्ञा दी है।

'सीतापति राम' में लेखक सीता और राम के पुनीत प्रेम की व्याख्या करते हुए पाठकों को ऐसे मार्मिक स्थालों का दिग्दर्शन कराता है जहाँ पर राम सीताहरण के पश्चात् व्याकुल हो जाते हैं और सीता के उद्धार के लिए प्राणपण से जुट जाते हैं। सीता के प्रति उनका अगाध प्रेम हनुमान जी द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से परिभाषित किया गया है।

लेखक ने इसी प्रकार श्रीराम के अन्य रूपों के संबंध में भी विद्वतापूर्ण आध्यात्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किए हैं।

अन्त में मैं लेखक को इस कृति के लिए साधुवाद देता हूँ जिसने 'रामचरितमानस' ऐसे अगम काव्य का दोहन करके उसमें निहित रत्नों को बटोर कर सुधी पाठकों के सम्मुख बड़ी विश्लेषणात्मक एवं प्रसाद पूर्ण भाषा में सँजो दिया है। यह एक ऐसी विशेषता है जो हर एक में सन्निहित नहीं रहती, यह तो केवल विचारशील एवं अध्ययन परक मनीषियों में अधिकांशतया परिलक्षित होती है।

मेरा तो अपना व्यक्तिगत मत यह है कि 'रामचरितमानस' पाठ करने वाली जनता यदि इस पुस्तक का अध्ययन एवं मनन करेगी तो मानस के मूलभूत विचारों से वह सहज ही अवगत हो जायगी।

२-४-८७ **डॉ० रामलखन पाण्डेय**

आभार

पण्डित रघुवीर शरण शर्मा जो कि अहंता-ममता-मुक्त परम सरल सन्त हैं ने 'तुलसी के राम' के प्रथम शीर्षक के कुछ अंशों को सुनकर जिस आत्मीयता तथा स्नेह से अपनी सम्मति दी उससे मेरा उत्साह द्विगुणित हो उठा। उनकी इस अहैतुकी कृपा तथा आशीर्वचनों के लिए मैं उनके समक्ष श्रद्धावनत हूँ।

आदरणीय भाई हौसिला प्रसाद त्रिपाठी, मंत्री ग्राम स्वावलंबी विद्यालय आचार्य नगर फैजाबाद जो कि वर्तमान परिस्थितियों में दुर्लभ रचनात्मक कार्यकर्ता हैं, ने मेरा एक ग्रंथ मानसमुक्ता मुद्रित करवाकर मुझे इतना संबल प्रदान किया है कि मैं इस रचना को पूर्ण करने में तन-मन से जुट सका। एतदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

सन्त शिरोमणि पूज्यपाद प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने इस ग्रंथ की सफलता की कामना एक दोहा तथा एक छप्पय लिखकर जिस वात्सल्य स्नेह के साथ की है उसे मैं अपना परम सौभाग्य ही मानता हूँ। उनकी इस कृपा के लिए मै उनके समक्ष श्रद्धावनत हूँ।

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार स्वर्गीय डाक्टर उदय नारायण तिवारी ने शिष्य-वत्सलता के भाव से मेरी रचनाओं के संबंध में जो आशीर्वचन लिपिवद्ध किये हैं उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

भाई मधुवन प्रसाद यादव जो कि साहित्यमर्मज्ञ ही नहीं एक उच्चकोटि के अध्यात्मविद तथा मेरे मार्ग-दर्शक भी है ने जिस स्नेह-सौहार्द्र तथा आत्मीयता से अपनी सम्मति मुझ-जैसे अकिंचन के प्रयास पर दी है उससे मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ।

श्री शिवराम राय जो कि स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी होने के साथ ही साथ अध्यात्म-क्षेत्र में भी अच्छी पहुँच रखने वाले मेरे परम सुहृद हैं ने 'तुलसी के राम' पर अपनी सम्मति लिखकर मुझे जो स्नेह प्रदान किया है उसके लिए मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

सरस्वती के कृपापात्र सिद्धहस्त कवि श्री सत्यदेव मिश्र 'उपेन्द्र' ने

लेखक-परिचय रचकर मुझे जो आत्मीयता प्रदान की है उसके लिए मैं उनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ।

मैं प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के रीडर डॉ० अभिराज गजेन्द्र मिश्र के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने 'तुलसी के राम, पर अपनी सम्मति देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

डॉ० रामलखन पाण्डेय भूतपूर्व जिला विद्यालय निरीक्षक जो कि रामचरितमानस के मर्मज्ञ हैं ने 'तुलसी के राम' पर अपनी विश्लेषणात्मक सम्मति देकर अग्रज की भाँति मेरा उत्साह बढ़ाया है। एतदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

मेरे मित्र एवं सत्संगी श्री प्यारे लाल गुप्त के सुपुत्र श्री कुन्दन लाल ने मुखपृष्ठ को आकार देने का जो कलात्मक कार्य किया है उसके लिए मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

इस रचना में जिन-जिन ग्रन्थों से उद्धरण दिए गए हैं अथवा अन्य विधि जिनका संदर्भ आया है उनके प्रणेताओं के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

अंत में मैं पियरलेस प्रिन्टर्स के स्वामी श्री राजेश्वर नाथ भार्गव के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुद्रण का कार्य ही नहीं सम्पन्न किया अपितु रामचरितमानस से दिए जाने वाले उद्धरणों के संशोधन में भी मूल्यवान सहयोग दिया है।

बैशाख कृष्ण सप्तमी २०४४ **बजरङ्गदत्त मिश्र**

विषय-सूची



श्री रामायनमः

तुलसी के राम

राम-कथा-सरिता अजस्र रूप से प्रवहमान है। भारत ही नहीं विदेशों में भी इस कथा का अक्षुण्ण प्रवाह किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है।

भारत स्वयं अपनी विशालता, विविधता एवं सांस्कृतिक प्राचीनता के कारण विभिन्न राम-काव्यों के माध्यम से राम-कथा के वैभिन्य को बनाए हुए हैं फिर भी इन सभी में राम-कथा के कुछ तत्व समान रूप से विद्यमान है। इनमें से मुख्य हैं—असत् पर सत् की विजय तथा राम का सर्वसुलभ आदर्श जीवन। दानवता क्षण भर के लिए चाहे जितनी प्रबल एवं प्रभावी क्यों न प्रतीत हो रही हो पर अन्ततः उसका पराभव होगा ही क्योंकि सत् ही शाश्वत है असत् तो उसकी अनुभूति का अभाव मात्र ही है।

इन मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन लगभग सभी राम-कथाकारों ने किया है पर इनका पूर्ण निखार तो गोस्वामी तुलसीदास के राम-चरित मानस में ही हो पाया है। महर्षि बाल्मीकि ने राम को एक ऐसे राजकुमार के रूप में चित्रित किया है जो कि दैवी शक्तियों से संपन्न हैं; पर गोस्वामी तुलसीदास के राम तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा ही हैं। वे तो पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही अवतरित हुए हैं और एकमात्र नरलीला के लिए ही मानवोचित व्यवहार करते हुए यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं :—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़इँ असुर अधम अभिमानी॥

बाल० ३-१२१

करहिं अनीति जाहि नहि, बरनी, सींदहिं विप्र-धेनु सुर धरनी
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

बाल० ४-१२१

तुलसी के राम अन्य राम-कथाकारों के राम से सर्वथा विशिष्ट

हैं। वे आदर्श, पुत्र, बन्धु, पति तथा मित्र का अभिनय करते तो हैं पर इस सामान्य सामाजिकता में भी उनका ईश्वरत्व बराबर परिलक्षित होता रहता है। ऐसा नहीं लगता कि गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में कुछ भी सायास लिपिबद्ध किया हो क्योंकि कथा-प्रवाह एवं विचार-सरणि इतनी स्वाभाविक एवं सुष्ठु है कि लगता है कि सभी कुछ उनके अनुभव पटल पर स्वत: ही चित्रित होता चला गया है; फिर भी जिन स्थानों पर पाठकों को राम के ब्रह्मत्व में तनिक भी सन्देह उत्पन्न होने की संभावना हो सकती थी गोस्वामी जी ने वहीं स्पष्ट रूप से उसका परिहार कर दिया है।

गोस्वामी तुलसी के रामचरित मानस के इसी वैशिष्ट्य ने मुझे इस बात के लिए प्रेरित किया कि मैं "तुलसी के राम" पर अपने विचार लिपिबद्ध करूँ। सर्वप्रथम तो राम के ब्रह्मत्व की ओर ही दृष्टि थी पर जब रामचरित मानस के संदर्भ में राम के विभिन्न रूपों में उन्हें देखने का प्रयास किया गया तो उनके पंद्रह विशिष्ट रूप उभर कर सामने आए। इन विभिन्न रूपों का चित्र प्रस्तुत करने के पूर्व यह उचित प्रतीत हुआ कि पहले इस विषय की ही चर्चा कर ली जाय कि तुलसी की राम-कथा किस प्रकार अन्य राम-कथाओं से साम्य अथवा वैभिन्य रखती है। इस प्रकार समूचे ग्रंथ को निम्नांकित सोलह शीर्षकों में विभक्त किया गया है :—

१—रामकथा
२ —परब्रह्म राम
३—स्थितप्रज्ञ राम
४—मर्यादा पुरुषोत्तम राम
५—गुरुजनोनुगामी राम
६—सहज स्वभाव सुशील राम
७—अहैतुक कृपालु राम
८—प्रबोधक राम
९—सीतापति राम
१०—भक्तहितकारी राम
११—जगतोद्धारक राम
१२—अनुज स्नेही राम

१३—सखा स्नेही राम
१४—अमितवीर राम
१५—प्रजापालक राजा राम
१६—उपास्य राम

सामान्यतया गोस्वामी जी ने श्रीराम को जितने रूपों में चित्रित किया है, उसको इस ग्रंथ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि यही सब कुछ है।

इन शीर्षकों में अभिव्यक्त विचारों का मूलाधार रामचरित मानस ही है। संदर्भ की अपेक्षानुसार ही कहीं कोई अन्य आधार लिया गया है जो कि नगण्य है। विभिन्न शीर्षकों की बातों को अधिक स्पष्ट और पुष्ट करने के अभिप्राय से रामचरितमानस से पर्याप्त उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। कुछेक उदाहरण विषय की अपेक्षानुसार एक से अधिक शीर्षकों में स्थान पा गए हैं। प्रस्तुत प्रसंग की अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए पुनरुक्ति के नाम पर उनको बरबस निकाला नहीं गया है।

पहला शीर्षक "राम-कथा" अन्य शीर्षकों की अपेक्षा बहुत बड़ा हो गया है। इसका कारण यह रहा है कि प्रारंभ में राम-कथा के संबंध में उसके अधिकारी विद्वानों की सम्मति का उल्लेख करते हुए राम-कथा का आधार ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है। यह भी प्रयास किया गया है कि विद्वान पाठकों को इस तथ्य से भी परिचित कराया जाय कि गोस्वामी तुलसीदास की राम-कथा अन्य राम-कथाकारों की राम-कथा से किन अर्थों में विशिष्ट है और यह विशिष्टता कथा की उपादेयता और उसके सौंदर्य की साधिका है अथवा बाधिका। अंत में गोस्वामी जी तथा उनके रामचरित मानस की कुछ आलोचनाओं का उल्लेख करते हुए उस पर अपना अभिमत भी व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

राम का ब्रह्मत्व गोस्वामी तुलसीदास की अपनी प्रमुख विशिष्टता है। उन्होंने अपने चरितनायक श्रीराम को सर्वसमर्थ ईश्वर ही नहीं अपितु परब्रह्म रूप में देखा है। जहाँ भी कथा में ऐसे संदर्भ प्रस्तुत हुए हैं जिनसे उन्हें मानव समझने की भूल हो सके वहीं गोस्वामी जी स्पष्ट कर देते हैं कि वे तो साक्षात् परब्रह्म ही हैं; एकमात्र नरलीला के लिए ही ऐसा अभिनय कर रहे हैं।

श्रीराम पूर्णरूपेण स्थितप्रज्ञ हैं। हर्ष-विषाद तथा सुख-दुख का उन पर किंचित् मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। न तो राज्याभिषेक की सूचना से उन्हें हर्ष होता है और न ही बनवास की बात जानकर शोक।

मर्यादा तथा श्रीराम का जीवन चरित दोनों पर्यायवाची हैं। श्रीराम जो कुछ भी करते हैं, सब मर्यादा की सीमा में ही करते हैं। उनका अवतार राक्षसों का विनाश तथा धर्म-मर्यादा की पुनर्स्थापना के लिए ही होता है।

श्रीराम अपने गुरुजनों का सम्मान तथा उनकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं। वे अपनी माताओं तथा पिता महाराज दशरथ के पूर्ण-रूपेण अनुगामी हैं। वे बनवास देने वाली माता कैकेयी के प्रति भी क्रोध या आवेश में कोई भी असम्मान सूचक शब्द मुँह पर नहीं लाते। गुरु वशिष्ठ तथा मुनि विश्वामित्र के प्रति तो वे नितांत विनम्र तथा आज्ञापालक हैं। अन्य गुरुजनों के प्रति भी उनमें सम्मान का भाव स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है।

सहजता एवं सुशीलता श्रीराम के स्वभाव के दो विशेष गुण हैं। वे मन, वचन तथा कर्म तीनों में समान हैं। पुष्प वाटिका में सीता-दर्शन के परिणामस्वरूप उनके मन में जो भी विचार उठते हैं उन्हें यथातथ्य रूप में अनुज लक्ष्मण तथा मुनि वशिष्ठ के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। परशुराम के कटु वचन भी श्रीराम की सुशीलता को भंग करने में समर्थ नहीं होते।

सूक्ष्मावलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संसार में जितने भी नाते-रिश्ते हैं वे सभी स्वार्थ की ही आधार भूमि पर खड़े हैं। एकमात्र श्रीराम ही ऐसे हैं जो कि बिना किसी हेतु के ही कृपा करते हैं। मित्रों और भक्तों की बात कौन कहे वे तो शत्रुओं पर भी अहैतुकी कृपा करते हैं। रावण, कुंभकरणादि प्रमुख राक्षसाधिपों को अपने हाथ से मार कर परम् गति प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं अन्य-विधि मरने वाले राक्षस भी मुक्त हो जाते हैं क्योंकि अन्त में उनके मन रामाकार हो गए थे।

रामचरित मानस में जहाँ भी शाश्वत सत्यों अथवा आध्यात्मिक तथ्यों का वर्णन हुआ है, वह अधिकांशतः श्रीराम के मुख से ही

कराया गया है। ये स्थल इतने गरिमापन्न तथा महत्वपूर्ण हैं कि इन्हें राम-गीता के नाम से जाना जाता है। श्रीराम द्वारा यह प्रबोधन नगर निवासियों से लेकर भाइयों, मित्रों तथा मुनियों आदि तक का किया गया है। इसमें ईश्वर, जीव तथा माया जैसे विषयों पर बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला गया है। संत-असन्तों के लक्षण तथा नवधा भक्ति आदि का भी वर्णन किया गया है।

सीतापति राम, श्रीराम का सर्वसुलभ स्वरूप है। सीता के बिना राम का स्वरूप अपूर्ण है क्योंकि जब तक परम शक्ति न होगी तब तक परमसत्ता सक्रिय न हो सकेगी। इसीलिए तो मनु शतरूपा को वर देते समय भगवान ने यह बात कही थी कि मैं तुम्हारे यहाँ अवतार लूंगा जब तुम अवध के राजा दशरथ होगे। मेरे साथ ही मेरी शक्ति भी अवतरित होगी।

श्रीराम भक्तहितकारी हैं। वे अपने भक्तों का निरन्तर ध्यान रखते हैं। अपने प्रति किए गए अपराध को वे क्षमा कर सकते हैं पर भक्त के प्रति किए गए अपराध को नहीं। वे भक्त के चाहने पर भी उसे लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं होने देते। नारद मुनि भगवान की माया के वशीभूत हो विश्वमोहिनी से विवाह करना चाहते हैं पर भगवान उनका मुख वानर का बना कर उन्हें इससे निवारित कर देते हैं।

जब संसार में पाप और अन्याय अधिक बढ़ जाता है तभी भगवान अवतार लेते हैं। श्रीराम का अवतार भी इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। वे पृथ्वी का भार कम करने के लिए भुजा उठाकर पृथ्वी को राक्षसहीन करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

श्रीराम का अपने अनुजों पर अपार स्नेह है। वे लक्ष्मण की रक्षा इस प्रकार करते हैं जैसे पलकें, नेत्र गोलकों की रक्षा करती हैं। भरत जी श्रीराम के संबंध में कहते हैं कि वे मुझ पर इतना स्नेह रखते हैं कि कभी खेल में भी क्रोध नहीं किया और हारा खेल भी मुझे जिताते रहे।

सखा-स्नेह भी श्रीराम का आदर्श है। वे निषाद को बिना भेद-भाव के गले लगाते हैं तथा उनको विदा करते समय उनसे अयोध्या आते-जाते रहने का आग्रह करते हैं। सुग्रीव की विपत्ति दूर करने के लिए बालि को एक ही बाण से मार देते हैं। विभीषण को लंका का वह राज्य अनायास ही प्रदान कर देते हैं जिसे रावण ने अपने शिरों

की आहुति देकर प्राप्त किया था।

श्रीराम का वीरत्व अमित है। वे मारीच को बिना फर के बाण से मार कर समुद्र पार सौ योजन दूर भेज देते हैं। खरदूषण तथा उसकी सेना का वे अकेले ही संहार कर देते हैं। रावण, कुंभकरण तथा अन्य राक्षस वीरों को, जो कि अपने को अजेय समझते थे मौत के घाट उतार देते हैं।

राजा या शासक का प्रथम एवं सर्वोपरि कर्तव्य यही है कि वह सदैव अपनी प्रजा के कल्याण के लिए चिंतित रहे। श्रीराम प्रजाजनों को बुलाकर कहते हैं कि मेरा सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति वही है जो भय-रहित होकर मुझे टोंक दे, यदि मैं कोई अनुचित कार्य करूँ। उन्हें निरन्तर प्रजाजनों के कल्याण की चिन्ता बनी रहती है। वे उनके धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी की संपन्नता चाहते हैं। वे सभी को बुलाकर यह बात स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से मिलता है। इसका उद्देश्य-विषय भोग न हो कर अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना है। जो सारा समय विषय भोग में ही लगा देता है वह अन्त में पश्चाताप करता है। श्रीराम का राज्य-संचालन कार्य इतना सुन्दर था कि आज भी उसे आदर्श माना जाता है। उनके राज्य में बैर-विग्रह, ईर्ष्या-द्वेष तथा दुख-दैन्य को किंचिन्मात्र भी स्थान न था। सभी नागरिक अपने अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार अपने कर्तव्यों में संलग्न रहते थे। उनमें परस्पर प्रेम था। वे सभी उदार तथा गुणी थे। प्रकृति भी अनुकूल थी। कहते हैं—मनुष्य का दैनिक जीवन जितना ही अप्राकृतिक होता जाता है प्रकृति भी उतनी ही कुंठित तथा प्रतिकूल होती जाती है और उसका कार्य-व्यापार भी तदनुसार ही होने लगता है। श्रीराम एक आदर्श राजा थे उनकी प्रजा धर्म परायण थी अस्तु प्रकृति भी अनायास ही अपने सामायिक कार्यों से उन्हें हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराती रहती थी।

इन्हीं अर्थो में राम-राज्य आदर्श था। आज भी लोग रामराज्य के सुशासन को अपना आदर्श मान कर उसको प्राप्त करने की अभि-लाषा रखते हैं।

तुलसी के राम एक मात्र दशरथ-नन्दन राम ही नहीं हैं वे तो घट-घटवासी परब्रह्म ही हैं। आज उनके नाम का जप, उनके स्वरूप

का ध्यान तथा उनके चरित का गान करने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। कलियुग में आत्म-साक्षात्कार का सर्वसुलभ उपाय नाम जप ही है। जप अनेक नामों का किया जाता है पर सर्वप्रिय एवं सहज नाम "राम" ही है। यही कारण है कि अधिसंख्य साधक इसी का जप करते हैं। गोस्वामी जी ने स्वयं श्रीराम के मुख से कहलवाया है कि पूर्ण समर्पित भक्त ही उन्हें सर्वप्रिय है। वे उसकी हर प्रकार से रक्षा का दायित्व वहन करते हैं। भक्ति स्वतंत्र है उसे किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं होती। ज्ञान और विज्ञान भी उसी के अधीन हैं। आज भी रामभक्तों की एक बहुत बड़ी संख्या है जो कि राम-भक्ति के माध्यम से मुक्ति-पथ पर अग्रसर हैं।

राम नाम भारतीयों के सामाजिक जीवन के साथ समरस है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी पैठ है। जब दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो "राम-राम" अथवा "जयराम" कह कर परस्पर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। यदि किसी के दिवंगत होने अथवा अन्य प्रकार से विपत्ति में पड़ने की बात सुनने को मिलती है तो लोग "राम राम" कह कर दुख एवं सहानुभूति व्यक्त करते हैं। यदि किसी के अनुचित प्रस्ताव को अस्वीकार करना होता है तब भी लोग कहते हैं कि "राम राम" ऐसा कैसे कहते हो ? राम नाम जन-जन के हृदय में बस गया है उसको लोगों ने जीवन के हर क्षेत्र में अंगीकार कर लिया है।

इस प्रकार विभिन्न शीर्षकों में तुलसी के श्रीराम का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है इसके पीछे एक मात्र उद्देश्य यह रहा है कि रामचरित मानस के वे पक्ष भी उजागर हो सकें जिन पर अभी तक लोगों का ध्यान कम गया है।

"तुलसी के राम" से यदि श्री राम के विभिन्न स्वरूपों को समझने में थोड़ी भी सहायता मिली तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूंगा।

बजरंग दत्त मिश्र

चैत्रकृष्ण अमावस्या २०३९

१

राम-कथा

राम-कथा का शृंखलाबद्ध स्वरूप सर्वप्रथम बाल्मीकि रामायण में मिलता है पर इसका यह अर्थ नहीं कि इसके पूर्व उसका सर्वथा अभाव था। वैदिक साहित्य में भी राम-कथा के कुछ पात्रों का नामोल्लेख हुआ है। राम-कथा-साहित्य के मर्मज्ञ स्वर्गीय फादर डाक्टर कामिल बुल्के, वैदिक साहित्य में राम-कथा के अस्तित्व को असंदिग्ध रूप से स्वीकार नहीं करते। उन्होंने डाक्टर बेवर के इस मत को स्वीकार नहीं किया है कि राम-कथा का मूल दशरथ जातक में सुरक्षित है। फादर डाक्टर कामिल बुल्के ने डाक्टर बेवर के इस मत को भी अस्वीकार कर दिया है कि सीताहरण का कथानक राम-कथा में होमर के इलियड से लिया गया है। उन्होंने इसके दो मुख्य कारण दिए है—पहला तो यह कि होमर काव्य में हेलेन पैरिस में अनुरक्त हो कर स्वेच्छापूर्वक उसके साथ भाग जाती है तथा उसकी पत्नी बनकर ट्राय में रहती है जबकि सीता का अपहरण रावण उनकी इच्छा के विरुद्ध करता है। रावण अपने सारे छल-बल का प्रयोग करने पर भी सीता को डिगा नहीं पाता। इस प्रकार दोनों की नैतिकता में बहुत अन्तर है। दूसरा यह कि यदि भारत के कवियों को होमर के काव्य का ज्ञान होता तो वे भी होमर की ही भाँति समुद्र-संतरण हेतु सेतु-बंधन के स्थान पर नौकायन का ही सहारा लेते। अस्तु यह कहना कि राम कथा पर होमर के काव्य का प्रभाव है, तथ्यपूर्ण नहीं।

दशरथ जातक को भी फादर डाक्टर बुल्के ने राम-कथा का मूल स्रोत नहीं माना क्योंकि यह ग्रंथ अपेक्षाकृत अर्वाचीन है तथा उसका मुख्य अंश गद्य में है। वस्तुतः दशरथ जातक-कथा, वास्तविक राम-कथा का विकृत रूप मात्र है क्योंकि जातकट्ठवण्णना में जिस राम-कथा का वर्णन है उससे दशरथ जातक की राम-कथा की पुष्टि नहीं

होती। दशरथ जातक स्वयं ही काल की दृष्टि से उतनी प्राचीन नहीं प्रतीत होती जितना कि उसे बताया जाता है क्योंकि उसके मुख्य अंश जो कि गद्य में हैं अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। इस प्रकार विद्वान फादर डाक्टर बुल्के ने सारे तथ्यों की विस्तृत एवं तर्कपूर्ण समीक्षा करते हुए यह बात सिद्ध की है कि राम विषयक प्राचीन गाथा-साहित्य इतिहासिक घटनाओं पर आधृत है। फिर भी यदा कदा कुछ लोग इस प्रकार का मत व्यक्त करते रहते हैं कि राम कोई इतिहासिक पात्र नहीं थे। यह कथन उनकी कल्पना तथा वैयक्तिक मान्यता के कारण ही है। किसी विश्वसनीय आधार पर ऐसा निष्कर्ष नहीं निकल पाया है। यह सब इसलिए संभव हो पा रहा है कि आज के युग में कुछ लोग सामान्य मान्यताओं अथवा स्वीकृति के विरुद्ध चौंकाने वाली बात कह कर ही प्रसिद्धि प्राप्त करने का यत्न करते हैं।

रामायण काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। राम-कथा विषयक विभिन्न संप्रदायों के ग्रंथों से इतनी बात तो निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि राम-चरित्र अति उज्वल तथा उदात्त था। यही कारण है कि बौद्ध, जैन तथा अन्य अनेक संप्रदायों ने अपने प्रवर्तकों को उनके किसी न किसी पूर्व जन्म में राम के रूप में देखने का प्रयास किया है। यह प्रवत्ति साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर सोचने वाले तथा सम्प्रदाय विशेष की अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु साहित्य-सर्जन करने वालों के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। मुझे स्मरण पड़ता है कि कुछ वर्षों पूर्व जब आनन्द मार्ग के लोगों के संबंध में जन सामान्य को अधिक जानकारी नहीं थी तथा उनके विरुद्ध अभियोग नहीं चले थे उस समय उनके एक अवधूत के संबंध में इस प्रकार की बात प्रचारित की गई थी कि वे स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्द जी के ही अवतार हैं। उन्हें उस पूर्व शरीर में मुक्ति नहीं मिली थी अस्तु वास्तविक मुक्ति हेतु उन्होंने अब इस मार्ग विशेष का आश्रय लिया है। यह सब अंकित करने का मंतव्य किसी मत अथवा संप्रदाय का समर्थन या विरोध न होकर एकमात्र उस प्रवत्ति को परिलक्षित करना है जिसमें प्रेरित होकर सम्प्रदाय विशेष को मान्यता देने वाले अथवा उसके प्रति श्रद्धा रखने वाले सारे तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर अपने सम्प्रदाय विशेष की महत्ता अथवा वैशिष्ट्य को दिखाने हेतु प्रस्तुत करते हैं। राम-कथा तो बहुत पुरानी कथा है अस्तु उस पर तो इस प्रवृत्ति के अनेक रंग

अनेक रूपों तथा आयामों में चढ़े होंगे यह अनुमान करना अनुचित न होगा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राम-कथा का व्यवस्थित रूप सर्वप्रथम बाल्मीकि रामायण में ही मिलता है। इस समय इसके तीन मुख्य पाठ—दक्षिणात्य, गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय मिलते हैं। इनमें श्लोकों की संख्या में अन्तर होते हुए भी कथावस्तु में कोई मौलिक अंतर नहीं है। स्वर्गीय फादर डाक्टर बुल्के ने इनमें से दक्षिणात्य पाठ को अपेक्षाकृत मौलिक माना है। उनके अनुसार कुशीलव एक गायक जाति थी जो कि बाल्मीकीय रामायण का घूम-घूम कर गायन एवं प्रचार करती रही। जन-रुचि को दृष्टिगत रखते हुए कुशीलव अपने गेय रामायण में नए-नए प्रसंग जोड़ते रहे हैं। फलतः रामायण के वास्तविक एवं मूल स्वरूप का निर्धारण कठिन हो गया है। फादर बुल्के बालकाण्ड के अधिकांश भाग तथा समूचे उत्तरकाण्ड को बाद में कुशीलवों द्वारा जोड़ा गया मानते हैं। उन्होंने इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जिन अंतर तथा वाह्य साक्ष्यों का उल्लेख किया है वे असंदिग्ध रूप से विश्वसनीय नहीं है क्योंकि उन्होंने अपनी विवेचना में रामायण का मूल रूप निर्धारित करना असंभव मानते हुए भी इन निष्कर्षों के निकालने का प्रयास किया है। अप्रामाणिक ग्रंथों तथा विवादग्रस्त तथ्यों से ही यह निष्कर्ष निकाले गए हैं। बहुधा होता यह है कि हम अपनी किन्हीं मान्यताओं एवं विचारों के आधार पर एक धारणा बना लेते हैं और फिर उस धारणा की परिपुष्टि करते हैं। प्राप्त तथ्यों एवं विचारों में से जो बिन्दु इस धारणा की पुष्टि करते है उन्हें उभार कर प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है तथा जो पुष्टि नहीं करते उन्हें सामान्य तर्कों के सहारे एक किनारे कर देते हैं। बहुत कम ही लोग तथ्यों के प्रकाश में, अपने व्यक्तित्व को अलग रख कर, वास्तविक निष्कर्ष निकाल पाते हैं क्योंकि उनका स्वयं का व्यक्तित्व ही इसमें बहुत बड़ी बाधा होता है। डाक्टर बुल्के ने यह अवश्य स्वीकार किया है कि राम-कथा तत्कालीन जन-समाज के जन-जीवन में इतनी अधिक परिव्याप्त थी कि तत्समय के विभिन्न धर्मों और उनके आचार्यों ने राम को अपने अवतारों अथवा महापुरुषों की पंक्ति में प्रयास पूर्वक सम्मिलित किया है। डाक्टर बुल्के ने राम के अवतारवाद को अस्वीकार किया है किन्तु अनेक ग्रंथों तथा आचार्यों

की उक्तियों को उद्धृत करते हुए यह कहा है कि राम सद्धर्म, नीति, वीरता तथा मर्यादा के पर्यायवाची हैं। इतना ही नहीं राम का अभिनय करने वाले के मन से भी कलुष-भाव अपने आप तिरोहित हो जाता है। महामहोपाध्याय स्वर्गीय गंगानाथ झा के संदर्भ से उल्लेख किया गया है कि कुंभकरण ने जब रावण से कहा कि आप तो काम-रूपी हैं, राम का रूप बनाकर सीता को क्यों नहीं प्राप्त कर लेते तो रावण कहता है कि मैं अनेक बार प्रयत्न कर चुका हूँ पर इस स्थिति में मेरी बुद्धि की कल्मषता ही जाती रहती है।

विद्वान फादर डाक्टर बुल्के ने भारतीय साहित्य में राम-कथा की व्यापकता की अपेक्षा विदेशों में उसकी व्यापकता को अधिक आश्चर्य-जनक माना है। जातक कथाओं में राम-कथा मिलती है। इसी प्रकार तिब्बत, हिन्दचीन, जावा, मलाया, कंबोडिया, लाओस, थाईलैंड, जापान, बर्मा फिलीपीन्स सभी देशों में राम-कथा किसी न किसी रूप में विद्यमान है। मेरे विचार से इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आश्चर्य एकमात्र इसलिए होता है कि हम आज के भारत और उसकी वर्तमान सामाजिक तथा साहित्यिक स्थिति को दृष्टिगत रख कर विचार करते हैं। यदि हम भारत की पूर्व गौरवमयी परंपरा को दृष्टि गत रख कर सोचें तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होगा क्योंकि उस समय भारत सारे विश्व का नैतिक शिक्षक और आध्यात्मिक गुरु था। उसने अपनी विचारधारा का प्रसार तलवार अथवा अन्य प्रकार के पशु बल के सहारे नहीं किया था अपितु मानवता को उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराने की दृष्टि से 'वसुधैव कुटुंबकं' की भावना से प्रेरित होकर स्नेह एवं सौहार्द के माध्यम से ही किया था। परिणाम सामने है। धर्मातिरेक के उत्साह में दिग्विजय करने वाले धर्म-प्रसारकों द्वारा अनेक देशवासियों को धर्म विशेष में दीक्षित कर देने के बाद भी उनकी विचारधारा के मूल में कुछ शाश्वत सत्य आज भी ज्यों के त्यों पड़े है क्योंकि उन्हें हठात् लादा नहीं गया था। यही वह मूल कारण है जिससे कि आज भी अनेक देशों में राम-कथा के सूत्र अविच्छिन्न रूप में मिलते हैं। इतना ही नहीं एक तथ्य और भी उजागर होता है वह यह कि शक्ति एवं सत्ता के बल पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा का प्रसार संभव नहीं है। यदि किसी प्रकार ऐसा किया भी गया तो वह चिरस्थायी न हो सकेगा।

बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त भी संस्कृत साहित्य में राम-कथा पर आधृत समय समय पर अनेकानेक ग्रंथ विभिन्न रूपों में लिखे जाते रहे हैं। बौद्ध एवं जैन सम्प्रदायों में भी कतिपय ग्रंथों की रचना राम-कथा के आधार पर हुई है। यह अवश्य है कि अपने सांप्रदायिक दृष्टिकोण के कारण इन मतों के रचनाकारों ने राम-कथा के रूप को विकृत करने में तनिक भी संकोच नहीं किया, परिणामस्वरूप आज हम इनके सहारे उसके मूल रूप को ज्ञात नहीं कर सकते।

प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटकं, महावीर चरित, मैथिली कल्याण, अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, मानसरामायण तथा आनन्द रामायण आदि अनेक ग्रंथों में राम-कथा या उसके किसी अंश का दिग्दर्शन किया गया है। इनमें अध्यात्म रामायण बाल्मीकि रामायण के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। गोस्वामी तुलसीदास के राम-चरितमानस पर बाल्मीकि रामायण के बाद इसी ग्रंथ का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश में भी रामचरित का संक्षिप्त वर्णन किया है। भवभूति के उत्तर राम-चरितम् जो कि करुण रस का अप्रतिम काव्य है में एक अति सामान्य व्यक्ति के कथन से प्रभावित हो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के सीता परित्याग की कथा है।

इस प्रकार बाल्मीकि रामायण की रचना के पूर्व राम-कथा का एक अत्यंत साधारण स्वरूप देखने को मिलता है जो कि बाल्मीकि रामायण तक पहुँचते-पहुँचते राम को एक श्रेष्ठ क्षत्रियोचित कार्य करने वाले मनुष्य के रूप में चित्रित करता है। इसके बाद राम-कथा में अवतारवाद का समावेश होता है जो कि और आगे चलकर भगवान के भक्त-हितकारी स्वरूप को भी चित्रित करता है। यह है राम कथा के अनेक मर्मज्ञों तथा विद्वानों का मत पर मुझे तो ऐसा लगता है कि राम-कथा इतनी व्यापक है कि जिसने जब चाहा उसे इच्छित रूप में देखा, रचा तथा सँवारा। आज इस बात का प्रयास करना कि राम-कथा का वह वास्तविक रूप ज्ञात कर लें जिससे कि इसका वर्तमान रूप उद्भूत हुआ है, निरर्थक सा ही प्रतीत होता है और तुलसी की यह उक्ति सर्वथा उचित प्रतीत होती है—"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता"। जब हम यह मानते हैं कि यह सृष्टि अनादि है युगान्तर तथा कल्पान्तर के बाद भी यह किसी न किसी रूप में चलती ही

रहती है तो यह कह देना संभव नहीं कि राम कथा का प्रारंभ कब से हुआ ? संभवतः इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने माना है कि संसार में राम-कथा की कोई सीमा नहीं है। राम के अनेक अवतार हुए हैं तथा शतकोटि अर्थात् अगणित संख्या में रामायण की रचना हुई है। कल्प भेद के अनुसार विभिन्न राम-चरितों की रचना मुनियों ने की है : –

राम-कथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मनमाहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
बाल० ३-३३

कलप भेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
बाल० ४-३३

गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व तथा बाद में भी अनेक ऐसे काव्यों की रचना हुई है जिनका आधार राम-कथा है। आज यह कहना भी सर्वांश में तथ्यपूर्ण न होगा कि इस प्रकार की सभी रचनाओं का पता चला लिया गया है। खोजों में निरन्तर नए ग्रंथों का पता चल रहा है। आधिकारिक रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि जो उपलब्ध हो सका है वही सब कुछ है क्योंकि समय-समय पर होने वाले विदेशी आक्रमणों में यहाँ के साहित्य को नष्ट करने के प्रयास बराबर किए जाते रहे हैं।

राम-कथा का एक व्यापक आधार है जिसको एक शब्द में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि राम मनुष्य की सद्वृत्ति के तथा रावण असद् वृत्ति के परिचायक तथा प्रतीक हैं। बहुत से संत कवियों ने मनुष्य शरीर में ही रामायण की राम-कथा को पूर्णरूपेण घटा दिया है। इनमें हाथरस के तुलसी साहब का घट रामायण उल्लेखनीय है।

कुछ लोग तो सस्ती ख्याति के मोह में श्री राम तथा श्रीकृष्ण को इतिहासिक पुरुष ही नहीं मानते। यह हमारी धार्मिक-सहिष्णुता ही है कि हम धार्मिक क्षेत्र में भी विचार की इतनी अधिक स्वतंत्रता को मान्यता देते हैं। संभवतः यह भी एक प्रमुख कारण है कि हमारा अस्तित्व आज भी विद्यमान है जबकि अनेक धर्म बने और मिट गए।

स्वर्गीय स्वामी करपात्री जी ने अपने विवेचनात्मक ग्रंथ, 'रामायण

मीमांसा' में अनेक भाषाओं तथा काल-खण्डों के भारतीव एवं विदेशी रचनाकारों की राम-कथाओं का विश्लेषण किया है। उन्होंने महर्षि बाल्मीकि की राम-कथा को ही प्रामाणिक माना है। अन्य रचनाकारों द्वारा वर्णित राम-कथा से संबद्ध विभिन्न घटनाओं को इसके आधार पर ही प्रामाणिक अथवा अप्रामाणिक माना है। स्वर्गीय डाक्टर कामिल बुल्के की रामकथा का विशद विवेचन किया है। इतिहास, पुराण तथा अन्यान्य अनेक ग्रंथों के अन्तः तथा बहिर्साक्ष्यों का उल्लेख करते हुए स्वामी जी ने अपने तर्कों से डाक्टर बुल्के के निष्कर्षों को अमान्य कर दिया है।

'रामायण मीमांसा' के अन्तिम अध्याय 'रामायण आदि का रचनाकाल' में स्वामी करपात्री जी ने अत्यन्त विद्वता पूर्वक अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वानों की समीक्षा करते हुए यह सिद्ध किया है कि 'रामायण' की रचना 'महाभारत' से पूर्व हुई है। यह रचना कितनी पुरानी है इसे स्वामी जी के ही शब्दों में देखिए—

"इस तरह महाभारत की प्राचीनता सिद्ध होने से पाश्चात्यों एवं बुल्के का मत सुतरां खंडित हो जाता है। जब महाभारत पाँच हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है तब महाभारत में वर्णित रामायण की अत्यधिक प्राचीनता सुतरां सिद्ध होती है। पुराण वचनों के अनुसार भी २४ वें त्रेता में वशिष्ठ सहित राम का प्रादुर्भाव हुआ था। उसी समय महर्षि बालमीकि का भी आविर्भाव हुआ था। इस दृष्टि से २४वें त्रेता में द्वापर की संधि में अर्थात् इस वर्ष से एक करोड़ सतहत्तर लाख उनचास हजार तिहत्तर (१७७४९०७३) वर्ष पूर्व श्रीराम के शासन काल में रामायण का निर्माण हुआ था। इस तरह रामायण संसार का सर्वाधिक प्राचीन आर्य इतिहास ग्रंथ है।"

राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने राम-कथा को ही आधार बनाकर उर्मिला के त्याग को दृष्टिगत रख साकेत नामक महाकाव्य की रचना की है। इसमें उर्मिला के उस त्याग को उजागर करने का प्रयास किया गया है जो कि उसने लक्ष्मण-पत्नी के रूप में किया है। सीता किसी भी दशा में अपने पति-सान्निध्य को त्यागने के लिए तैयार नहीं। राम की सीख, कौशिल्या की इच्छा और दशरथ की अन्तिम अभिलाषा भी उनको अपने निश्चय से डिगा नहीं पाती पर उर्मिला पति के साथ जाने का विचार भी मन में नहीं लातीं एक-

मात्र इसलिए कि पति के सेवक-धर्म में कहीं व्यवधान न उपस्थित हो जाय। राष्ट्रकवि ने इसी भावना को दृष्टिगत रख कर अपने महाकाव्य की रचना की है।

हिन्दी ही नहीं भारत की अन्य भाषाओं में भी राम-कथा के आधार पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। इसमें बँगला का कृत्तवास तथा तमिल के कम्ब रामायण विशेष उल्लेख्य हैं। वर्तमान युग के मूर्धन्य राजनीतिज्ञ चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य जिनको उनकी दूरदर्शिता तथा सूझ-बूझ के कारण कुछ लोग आधुनिक युग का चाणक्य मानते हैं, ने भी तमिल भाषा में रामायण की रचना की है। लोकप्रियता के कारण अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। इस ग्रंथ की भूमिका में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने इस रचना को ही अपने जीवन की सफलता का आधार माना है।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि श्री बृजनरायण चकबस्त ने उर्दू भाषा में रामायण की रचना की है। क्षेत्रीय भाषाओं में भी राम-कथा को आधार बनाकर समय-समय पर रचनाएँ की जाती रही हैं। गोला गोकर्णनाथ-खीरी निवासी अवधी के कवि श्री धर्मदास जी ने 'अवध विलास' नामक ग्रंथ की रचना की है। यह रचना फारसी लिपि में लिपिबद्ध है। इसका लिप्यन्तर देवनागरी में हो गया है। इस ग्रंथ में राम के विभिन्न संस्कारों को विस्तृत रूप में चित्रित किया गया है।

वर्तमान युग के परम प्रसिद्ध सन्त जिन्हें श्रद्धालु भक्तजन भगवान सत्य साईं के नाम से संबोधित करते हैं, के कंठ से उच्चरित राम-कथा का "रामकथा रस वाहिनी" के नाम से संकलन हुआ है। इसके संपादक एन० कस्तूरी ने राम-कथा पर जो विचार व्यक्त किए है वे सार्थक हैं। "सहस्रों वर्षों से लाखों लोगों के लिए राम-कथा दुख के समय शान्ति का, विषाद में शक्ति का, सन्देह में ज्ञान का, निराशा में एक प्रेरणा का तथा आपत्तियों में एक मार्ग-दर्शन का नित्य-स्रोत रही है।"..........

"राम नाम वेदों का निचोड़ है।
राम कथा शुभ्र और शुद्ध दुग्ध-सागर है।"

सद्विचारों से प्राणियों की सेवा में निरन्तर संलग्न संत-साहित्यकार श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने श्री राम चरित को चार खण्डों में लिपि-

बद्ध किया है। प्रातः स्मरणीय श्री चक्र जी बहुत समय से सत्साहित्य-सृजन में तल्लीन हैं। वे निरन्तर लिख रहे हैं। पहले वे गीता प्रेस में रहकर कल्याण तथा गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित अन्यान्य आध्यात्मिक आयोजनों की सफलता के लिए लिखा करते थे पर अब प्रर्याप्त समय से श्रीकृष्ण जन्म-भूमि में रहकर अपनी लेखनी द्वारा अजस्र रूप में मनुष्य को उसके जन्म एवं जीवन के वास्तविक अर्थबोध एवं सम्यक् अनुभूति हेतु शाश्वत विचार दे रहे हैं।

भगवान सत्यसाईं द्वारा उच्चरित राम-कथा रसवाहिनी तथा संत साहित्यकार श्री सुदर्शन सिंह चक्र द्वारा लिखित श्रीराम चरित में कुछेक स्थलों एवं छोटे-मोटे कथानकों को छोड़कर पर्याप्त साम्य है। ऐसा लगता है कि दोनों महाजनों की राम-कथा का स्रोत एक ही है। यह अवश्य है कि दोनों की वर्णन शैली में पर्याप्त अन्तर है। भगवान सत्यसाईं द्वारा उच्चरित रामकथा में विभिन्न संस्कारों का वर्णन बहुत ही विस्तृत एवं मनोहारी रूप में किया गया है जब कि संत साहित्यकार श्री चक्र ने प्रत्येक मर्मस्पर्शी स्थल की बहुत ही सुन्दर अध्यात्मपरक विवेचना की है। एक की शैली उपदेशात्मक है तो दूसरे की विश्लेषणात्मक एवं भावात्मक है। श्री चक्र कथावस्तु के सहारे शाश्वत सिद्धान्तों का बड़ा ही सुन्दर विवेचन करते दिखाई देते हैं :

"नारी की सफलता माता बनने में अवश्य है किन्तु उसी की सार्थकता पुरुष को मुक्त कर देने में है। नारी अयोग्य सिद्ध होती है पुरुष को अपने मोहपाश में बाँध कर। माया नहीं मुक्ति-पथ का प्रदर्शन करने में मानवी की महानता है।"

× × ×

"अच्छे सद्गुण को भी अभिमान दुर्गुण बनाकर विपत्ति का हेतु बना देता है।"

× × ×

"जिसमें अपना व्यक्तितत्व नाम शेष हो गया है वह सन्त है"

श्री रघुनाथ प्रसाद वर्मा सेवा-निवृत्त न्यायाधीश ने "रामचरित गाथा" नाम से गद्य में राम-कथा के लिखने का प्रयास किया है। परंपरा-प्राप्त आध्यात्मिक विचारों से अनुप्राणित श्री वर्मा जी ने इस

गाथा में तुलसी कृत राम चरित मानस, अध्यात्म रामायण तथा बाल्मीकि रामायण के कथानकों का समाहार एवं समन्वय किया है। उन्हीं के शब्दों में ' राम चरित मानस का पाठ यथासाध्य नित्य किया करता था। इधर बाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण के कुछ अंशों के पाठ करने का भी सुअवसर मिला था। मन में आया कि तीनों काव्यों का समन्वय करके राम के पावन चरित की गाथा को हिन्दी गद्य में लिखना ठीक रहेगा। अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार मैंने तीनों पावन-काव्य-धाराओं से मणि-माणिक चयन कर उन्हें एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है। तीनों काव्यों का समन्वय इस अभिप्राय से किया कि ग्रंथ की रोचकता बढ़ जायगी और पाठकों को तीनों रामायणों का रसास्वादन सुलभ हो सकेगा। इसमें अध्यात्म रामायण के ज्ञानोपदेशों और मानस के रस तथा भावों का प्रचुर मात्रा में समावेश करने का प्रयत्न किया गया है, तथापि बाल्मीकि रामायण ही मुख्यत: इसका आधार रहा है।"

श्री वर्मा जी के उपर्युक्त कथन से यह बात सुस्पष्ट है कि उन्होंने गद्य में राम चरित गाथा प्रस्तुत करने का प्रयास इस उद्देश्य से किया है कि इसमें अध्यात्म रामायण का ज्ञानोपदेश तथा "मानस" का रस एक स्थान पर ही पाठकों को सुलभ हो जाय। गाथा या कथा का आधार मुख्यत: बाल्मीकि रामायण को ही रखा गया है। स्वयं गोस्वामी तुलसी दास के मानस पर बाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण का पर्याप्त प्रभाव है पर गोस्वामी जी ने अपने विवेक एवं कथाकौशल का उपयोग करते हुए कथानक में स्वरुचि के अनुसार फेर बदल निस्संकोच रूप में किया है। बाल्मीकि रामायण में परशुराम का साक्षात्कार एवं संवाद जनकपुर से लौटते समय मार्ग में राम की बारात से होता है पर गोस्वामी जी ने धनुर्भंग होने के पश्चात् जनक की स्वयंवर सभा में परशुराम का आगमन तथा संवाद दिखाया है। श्री वर्मा ने भी अपनी रामचरित गाथा में ऐसा ही दिखाया है यद्यपि उन्होंने कहा यह है कि उनकी गाथा का मुख्य आधार बाल्मीकि रामायण है। श्री वर्मा जी ने अपने राम चरित गाथा-ग्रंथ को रामचरित मानस की ही भाँति सात खण्डों में सीमित किया है तथा खण्डों का नामकरण भी मानस के ही आधार पर

"काण्ड" ही किया है। इन सातों काण्डों के नाम भी रामचरित मानस के ही रखे गए हैं। उत्तरकाण्ड की कथा में कुछ अन्तर है। रावण-बध के बाद मानस के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा होती है पर रामचरित गाथा में इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया गया है। मानस का काकभुशुण्डि एवं गरुड़ संवाद भी राम चरित गाथा में स्थान नहीं पा सका है और भक्ति तथा ज्ञान का मानस जैसा व्यापक एवं प्रभावी वर्णन भी नहीं किया गया है। इस गाथा में प्रसंगों का वर्णन अधिक व्यापक रूप में किया गया है संभवतः इसलिए कि लेखक ने रामकथा संबंधी तीनों प्रमुख ग्रंथों की प्रयुर सामग्री को समन्वित करने का प्रयास किया है।

राम कथा को आधार मानकर संस्कृत साहित्य में महाकाव्य, खण्ड काव्य तथा अनेक नाटकों की रचना हुई है। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में गद्य एवं पद्य में अनेक ग्रंथों का प्रणयन हुआ है पर मेरी जानकारी में आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अतिरिक्त अभी तक किसी भी साहित्यकार ने आज की सर्वाधिक आकर्षक एवं प्रचलित विधा उपन्यास का प्रयोग राम-कथा में नहीं किया था। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने उपन्यास "वयंरक्षामः" में राम के उस शौर्य एवं मनस्विता का चित्रण किया है जो कि पूर्ण रुपेण राक्षसी संस्कृति एवं शक्ति को पराभूत करके ही दम लेती है। श्री नरेन्द्र कोहली ने राम चरित को उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करने का साहस पूर्ण प्रयास किया है। यह प्रयास जहाँ एक ओर उनके साहित्यिक सत्साहस का परिचायक है वहीं दूसरी ओर इस बात का भी उद्घोषक है कि रामचरित भारतीय जनमानस के कितना निकट है। श्री नरेन्द्र कोहली ने भी यह प्रयास बड़े रूप में किया है, लगभग डेढ़ हजार पृष्ठों में विशाल उपन्यास की रचना करके। इसमें उन्होंने समूची राम-कथा को वैज्ञानिक रूप से पाँच खण्डों में विभक्त किया है। "दीक्षा" "अवसर" और "संघर्ष" के एक-एक खण्ड हैं जब कि "युद्ध" को दो खण्डों में सीमित किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिस राम-कथा का वर्णन किया वह राम जन्म से प्रारंभ होकर बन-वास के बाद रावण-बध तथा राम के राज्याभिषेक के बाद तक चलती है जिसमें उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में काक भुशुण्डि के संवाद के माध्यम

से ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य का निरूपण हुआ है।

राम-कथा के अनेक समालोचक बालकाण्ड के प्रारंभिक तथा उत्तरकाण्ड के अन्तिम भाग को बाद में जोड़ा गया मानते हैं। उनके विचार से रामचरितमानस तीन प्रयासों में अपना वर्तमान रूप ग्रहण कर पाया है। प्रथम प्रयास रामचरित तथा द्वितीय प्रयास शिव रामायण के रूप में इसके पूर्व किए गए थे। राम-कथा-विशेषज्ञ डाक्टर कामिल बुल्के ने पं० राम नरेश त्रिपाठी, डाक्टर माता प्रसाद गुप्त तथा डाक्टर वोदवील के मतों की समीक्षा करते हुए इस बात से सहमति व्यक्त की है कि प्रारंभ में गोस्वामी जी स्वान्तःसुखाय राम-चरित का सरल पद्य में वर्णन करना चाहते थे। अपने इस कथन के प्रमाण में उन्होंने अयोध्या काण्य की छन्द-योजना का उल्लेख किया है। डाक्टर बुल्के ने छन्द योजना के साम्य को ही बहुत कुछ इस बात का आधार माना है कि रामचरित मानस के कौन-कौन से अंश एक साथ रचे गए। उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध को उन्होंने भुशुण्डि रामायण का तुलसी पर प्रभाव माना है और माना है कि कोई प्रति भुशुण्डि रामायण की उनके हाथ में रही होगी। अस्तु उन्होंने उसके भावों से युक्त अंश को उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध में जोड़ दिया होगा। उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध, जिसमें काकभुशुण्डि संवाद के माध्यम से भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का विशद वर्णन किया गया है के लिए कवि के हाथ में भुशुण्डि रामायण की प्रति का होना आवश्यक नहीं है। तुलसी जो कि मूलतः भक्त थे के लिए यह बहुत ही संभव है कि राम-कथा कहते-कहते अन्त में उसके मूलोद्देश्य स्वान्तः सुखाय सर्वजनहिताय से प्रेरित हो उन्होंने पाठकों को एक मात्र कथा में उलझाए रखना ही इष्टकर न मान कर उन्हें ईश्वर-प्राप्ति के सुमार्ग पर ला खड़ा करने के उद्देश्य से काक-भुशुण्डि संवाद का सृजन किया हो।

राम कथाकार संत श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने अपने श्री रामचरित में वास्तविक राम-कथा के प्रारंभ के पूर्ण साकेतधाम अयोध्या, लंका, रावण, सूर्यवंश, महर्षि वशिष्ट-इक्ष्वाकु वंश के कुलगुरु, रावण की अयोध्या से शत्रुता, दशरथ विवाह में रावण द्वारा बाधा, अयोध्या के विरुद्ध रावण का व्यूह, सुमित्रा और कैकेयी के विवाह, अंधतापस शाप, जटायु मैत्री, दशरथ कन्याशान्ता, भू-भार के उपचार का यत्न तथा परम पुरुष नामक अनेक विषय दिए हैं इनके आधार पर यह

नहीं कहा जा सकता कि ये विषय राम-कथा में अलग से जोड़े गए हैं। रचनाकार की विचारधारा के अनुसार राम-कथा की सुस्पष्टता के लिए यह सभी आवश्यक हैं। इसी प्रकार तुलसी के रामचरित मानस में राम जन्म के पूर्व-प्रसंगों को लेना चाहिए।

गोस्वामी तुलसीदास ·राम कथाकार कवि के रूप में इतने समर्थ हैं कि यह मान लेना बुद्धिगम्य नहीं प्रतीत होता कि समय-समय पर की गई रचनाओं को उन्होंने ऐसे ही जोड़कर रख दिया होगा कि वे आज भी अलग-अलग दिखाई पड़ें। गोस्वामी जी की मान्यता थी कि इस अनादि सृष्टि में राम का अवतार बराबर होता रहा है। उनके अवतार के अनेक हेतुओं में से एक सामान्य हेतु है कि असुरों को मार कर सुरों की स्थापना तथा वेद मर्यादा की रक्षा द्वारा अपने निर्मल यश का विस्तार :—

असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विसद जस राम जन्म कर हेतु।। बाल० १२१

रामावतार के इस सामान्य हेतु के होते हुए भी कल्प-भेद से राम-कथा में अन्तर होता रहा है। इसलिए गोस्वामी जी ने बहुत स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि अनेक निगमों, आगमों तथा कुछ अन्य स्थानों से भी अपनी रचना-सामग्री संग्रहीत की है।

'नाना पुराण निगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितंक्वचिदन्यतोऽपि।'

इस प्रकार राम जन्म के पूर्व राम-कथा में जो भी प्रसंग आए हैं वे मुख्यतः उसके हेतु को ही स्पष्ट करने के लिए हैं। यह अवश्य है कि उनमें से कुछ का वर्णन इतनी व्यापकता लिए हुए है कि वे स्वयं में एक स्वतंत्र कथानक प्रतीत होने लगते हैं जैसे 'शिव पार्वती विवाह' तथा 'नारद मोह' पर यदि तनिक ध्यान से देखें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि सती को राम के ब्रह्मत्व में जो शंका होती है उसके निराकरण में ही उनके शरीर-त्याग पुनर्जन्म तथा विवाह के आगामी प्रसंग प्रस्तुत होते हैं। इसी प्रकार "नारद-मोह" जहाँ एक ओर इस बात को स्पष्ट करता है कि अहंकार बड़े बड़ों को गिरा देता है तथा स्वयं प्रभु की कृपा के बिना प्रभु की प्राप्ति संभव नहीं है वहीं यह भी

स्पष्ट करता है कि नारद का शाप वस्तुतः बरदान था क्योंकि वही राम-जन्म का हेतु हुआ।

राम जन्म के हेतुओं को अनेक मानते हुए गोस्वामी जी ने उनमें से कुछ का वर्णन किया है :—

राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक से एका ॥बाल०१-१२२
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुन सुमति भवानी ॥
बाल० २-१२२

एक हेतु में भगवान के द्वारपाल जय एवं विजय विप्र शापवश हिरण्याक्ष तथा हिरणाकश्यप हुए जिनका उद्धार भगवान ने बाराह तथा नरहरि रूप धारण कर किया। ये ही आगे चल कर कुंभकरण तथा रावण के रूप में उत्पन्न हुए।

विप्र श्राप ते दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कसिपु अरु हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति मदमोचन !
बाल० ३-१२२

विजई समर वीर विख्याता। धरि वराह वपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस विस्तारा ॥
बाल० ४-१२२

भए निसाचर जाइ तेइ-महावीर बलवान।
कुंभकरण रावन सुभट सुर विजई जगजान ॥ बाल० १२२

रावण एवं कुंभकरण श्री राम द्वारा मारे जाने पर भी मुक्त नहीं हो सके क्योंकि जय विजय को सनकादि ने तीन जन्म तक पृथ्वी पर आने का शाप दिया था :—

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना ॥
बाल० १-१२३

एक कल्प में राक्षस जलंधर अपनी पत्नी बृन्दा के सतीत्व-बल से सुरक्षित होने के कारण जब भगवान शंकर के घोर संग्राम तथा प्रयत्न के बाद भी मारा नहीं जा सका तब भगवान ने उसके सुरक्षा-कवच उसकी पत्नी के सतीत्व-व्रत को छल द्वारा खण्डित करा दिया। इसका ज्ञान होने पर जलंधर की क्रुद्ध पत्नी ने भगवान को श्राप दिया। भगवान ने इस शाप को अंगीकार किया। जलंधर ही रावण

हुआ जिसे श्री राम ने मारकर मुक्त किया :—

तहाँ जलंधर रावन भवऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥
बाल० २-१२४ (क)

एक बार ईश्वरेच्छा से माया के वशीभूत नारद जी ने राजा शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी को पत्नी रूप में प्राप्त करने की इच्छा से भगवान विष्णु से उनके सुन्दर स्वरूप की याचना की। उन्हें भगवान का सारा शारीरिक सौन्दर्य मिल गया पर मुख बन्दर का बन गया, जिसे वे स्वयं नहीं जान सके। उनकी इस कुरूपता के कारण विश्वमोहिनी ने उनका वरण नहीं किया। नारद के स्वरूप को देखकर हँसने वाले दो रुद्रगण को उन्होंने निश्चर होने का श्राप दिया :—

होहु निसाचर जाइ तुम कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥ बाल० १३५॥

नारद इतने उद्विग्न एवं क्रुद्ध थे कि उन्होंने भगवान को भी नहीं छोड़ा और उन्हें भी मनुष्य शरीर धारण करने का शाप दे डाला और यह भी कह डाला कि आप ने हमारा जो स्वरूप बनाया था उसी स्वरूप वाले कपि आपकी सहायता करेंगे। आप ने मेरा भारी अनिष्ट किया है आस्तु आप भी पत्नी-वियोग से दुखी हों :—

बंचेहु मोहि जवन धारि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥
बाल० ३-१३७

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरहं तुम्ह होब दुखारी॥
बला० ४-१३७

अन्य हेतुओं में से एक हेतु यह है कि महाराज मनु ने चौथेपन में भी विराग की स्वाभाविक उत्पत्ति न होने के कारण, क्षुब्ध होकर राज्यभार लड़के को सौप दिया और सपत्नीक बन में जाकर कठोर तपस्या में संलग्न हुए। तपस्या से संतुष्ट भगवान ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा। मनु ने भगवान के समान ही सुत की याचना की। आश्वस्त करते हुए भगवान ने कहा जब आप राजा दशरथ के रूप में जन्म लेंगे तब मैं आप का पुत्र हूँगा :—

तहँ करि भोग विलास तात गए कुछ काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥ बाल० १५१ ॥

एक अन्य हेतु कैकयदेश के राजा प्रतापभानु, उनके अनुज अरिमर्दन तथा सचिव धर्मरुचि को ब्राह्मणों का शाप है :—

बोले विप्र सकोप तब नहिं कुछ कीन्ह विचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार ॥ बाल० १७३ ॥

कुछ काल खण्ड के व्यतीत हो जाने पर राजा प्रतापभानु रावण, उनके भाई अरिमर्दन कुंभकरण तथा मंत्री धर्मरुचि विभीषण के रूप में उत्पन्न हुए :—

काल पाइ मुनि सुन सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दस सिर ताहि बीस भुजदण्डा। रावन नाम वीर बरिखंडा ॥
बाल० १-१७६

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा ॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ विमात्र बंधु लघु तासू ॥
बाल० २-१७६

इस प्रकार राम चरित मानस में राम जन्म के पूर्व जितनी भी कथाएँ आई हैं वे मूलतः कवि की इस इस विचार धारा की ही पोषिका हैं कि जब पृथ्वी पर होने वाली अनीति अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब भगवान को अधर्म के नाश तथा भक्तों की रक्षा हेतु पृथ्वी पर अवतरित होना ही पड़ता है। श्री राम का अवतार भी इसी परंपरा में हुआ।

पवित्र पुलस्त्य कुल में जन्म लेने पर भी पूर्व शाप के कारण रावण तथा उसके सगे संबंधी पाप की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। रावण, कुंभकरण तथा विभीषण तीनों भाइयों ने विभिन्न प्रकार के कठोर तप किए। ब्रह्मा के प्रकट होने पर तीनों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वरदान माँगें। रावण ने मनुष्य तथा बानर दो, जिनको वह नगण्य मानता था, के अतिरिक्त अन्य किसी के हाथ न मारे जा सकने का वरदान माँगा। इस वरदान ने रक्षसों के गर्व एवं उन्मत्तता को इतना अधिक बढ़ा दिया कि उनका अत्याचार अपनी चरम सीमा को छूने लगा :—

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ।।
बाल० १८३

पाप-भार से त्रस्त गोरूपा पृथ्वी मुनियों तथा देवताओं के पास गई जो कि उसे लेकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने अपनी सामर्थ्य की सीमा को समझते हुए उसे यह कह कर आश्वस्त किया कि भगवान अपने भक्तों की पीड़ा को भली भाँति समझते हैं। वे ही इस घोर विपत्ति से उद्धार करेंगे। सभी लोगों ने मिलकर भगवान की प्रार्थना की और वे प्रकट हुए। भगवान ने चारों भाइयों के रूप में रघुकुल में अवतीर्ण होकर पृथ्वी भार-हरण का आश्वासन दिया :—

तिन्ह के गृह अबतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चरिउ भाई ।।
बाल० ३-१८७

भगवान सत्य साईं द्वारा उच्चरित "राम कथा रस वाहिनी" में भी रावण द्वारा ब्रह्मा से यह वरदान माँगे जाने का विवरण दिया गया है कि दशरथ के संतान ही न हो। वह इतने से ही संतुष्ट न हुआ अपितु उसने यह प्रयास प्रारंभ किया कि दशरथ का प्रस्तावित विवाह कोशल नरेश की कन्या कौशल्या से हो ही न पावे। इसके लिए उसने कौशल्या का अपहरण किया और एक लकड़ी के बक्स में बन्द कर समुद्र में फेंक दिया। यह मंजूषा छुट्टी बिताने गए हुए दशरथ के मंत्री को दीख पड़ी जिसने कौशल्या को कोशल पहुँचाया। श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने इस प्रसंग को और अधिक विस्तार पूर्वक वर्णित किया है। श्री चक्र ने अपने श्रीरामचरित में रावण की अयोध्या से शत्रुता का एक स्वतंत्र विषय ही जोड़ दिया है।

अयोध्या से रावण की यह शत्रुता बहुत दिनों तक चलती है तब तक चलती है जब तक कि रावण का संहार नहीं हो जाता। महाराज मानधाता से पराजित रावण ने उन्हें बचन दिया था कि वह अयोध्या पर आक्रमण नहीं करेगा फिर भी उसने स्वर्ग जाते हुए 'अनरण्य' को रोक कर उनसे हठात् युद्ध कर घायल कर दिया। शरीर त्याग करते समय अनरण्य ने रावण को शाप दिया कि मेरा बंशधर ही तेरा नाश करेगा। यह शाप ही रावण की अयोध्या से निरन्तर चलने वाली शत्रुता का कारण हुआ। रावण सदैव सतर्क रहा और प्रयास करता

रहा कि दशरथ के भावी पुत्र राम का जन्म ही न हो पावे। इस उद्देश्य की सिद्धि हेतु उसने यथासमय रघु, अज तथा दशरथ सभी के बल की परीक्षा ली। उसने मल्लयुद्ध के लिए दशरथ का आह्वान किया। दशरथ ने कहा कि तुम जैसे वृद्धों से लड़ना मेरा अपमान है। मैं समबल के योद्धा से ही लड़ सकता हूँ। रावण ने कहा कि राक्षस कभी वृद्ध नहीं होते फिर भी तुम जिस प्रकार की परीक्षा करना चाहो मुझे स्वीकार्य है। दशरथ ने कहा कि मैं नगर द्वार को हाथ से बन्द कर रोके रखता हूँ शृंखला तथा अर्गला का प्रयोग नहीं करूँगा, यदि तुम उसे खोल दोगे तो मैं तुम्हारा मल्लयुद्ध का प्रस्ताव स्वीकार कर लूँगा। बहुत प्रयत्न करने पर भी रावण द्वार नहीं खोल पाया। लज्जित हो दशरथ से बिना मिले ही वह लंका लौट गया। उसी दिन से उसका दशरथ-विरोध और भी सक्रिय हो उठा।

ब्रह्मा द्वारा अपनी मृत्यु दशरथ पुत्र श्रीराम द्वारा जानकर रावण ने माया से बवण्डर उठा कर सरयू में नौका बिहार कर रहे दशरथ को उनके मंत्री सुमंत्र सहित डुबो दिया पर उन्हें एक भग्न नौका का सहारा मिल गया जिससे वे डूबे नहीं तथा बहते हुए एक द्वीप में पहुँचे। सुमंत्र भोजन की खोज में निकल गये। महाराज दशरथ भी इधर उधर टहलने लगे तो जहाँ द्वीप समुद्र से मिलता था वहाँ महाराज ने मंजूषा देखी, उसे खोलने में असफल होने पर सुमंत्र को आवाज़ दी। दोनों ने सप्रयास मंजूषा खोल ली तो उसमें से सलज्जा एवं भयभीता राजकुमारी को निकलते देख, आश्चर्य-चकित हुए। परिचय मिलने पर सुमंत्र ने अग्नि की साक्षी में महाराज दशरथ एवं कौशल्या का विवाह कराया क्योंकि परकन्या के साथ मंजूषा में बैठना उचित न था। इसके बाद तीनों मंजूषा में बैठ गए। रावण ने कौशल्या का हरण कर उसे मंजूषा में अपने मित्र तिमिंगल के पास सुरक्षित रख दिया था इस भय से कि सीधे लंका ले जाने पर रहस्य खुल न जाय। रावण पुनः ब्रह्मा के पास गया, कौशल्याहरण का सारा वृत्तांत सुनाया और कहा कि मैंने आप का विधान मिटा दिया है। ब्रह्मा ने कहा कि यदि कुछ दिन और जीवित रहना चाहते हो तो दशरथ-कौशल्या को अयोध्या पहुँचा दो। रावण ने आकाश मार्ग से मंजूषा सरयू में फेंक दी। निद्रामुक्त हो सुमंत्र अयोध्या गए, रथ लाकर दशरथ-कौशल्या

को राजधानी ले गए। कोशल नरेश को बुलाकर अयोध्या में ही विवाह की विधि संपन्न की गई।

इस प्रकार थोड़े बहुत अन्तर से भगवान सत्यसाईं तथा संत श्री सुदर्शन सिंह चक्र दोनों ने आयोध्या से रावण की शत्रुता दिखाई है पर कुशल कथाकार श्री गोस्वामी तुलसीदास ने राम के अवतार का मुख्य हेतु राक्षसों का उद्धार तथा उनके पापभार को पृथ्वी से हटाना ही माना है। यही वह बिन्दु है जो कि उनकी रामकथा को सामाजिक तथा आध्यात्मिक रूप से अधिक उपादेय बना देता है।

गोस्वामी जी ने गुरु वशिष्ठ के निर्देशन में कराए गये पुत्रकाम यज्ञ का भी अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया है—

सृंगी रिसिहि बसिष्ट बुलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरुकर लीन्हें।।
बाल० ३-१८६

जो बसिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा।।
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई।।
बाल० ४-१८६

राम कथा रसवाहिनी तथा श्री 'चक्र' कृत रामचरित दोनों में पुत्रेष्टि यज्ञ तथा उससे प्राप्त पायस के वितरण का एक सा वर्णन किया गया है। दोनों में यह दिखाया गया है कि पायस तीनों रानियाँ में बराबर-बराबर बाँट दिया गया पर सुमित्रा के भाग का पावस चील, झपट्टा मार कर ले उड़ी। अन्तर एक-मात्र यह है कि रामकथा रसवाहिनी के अनुसार पायस का वितरण स्वर्ण-कटोरों में तथा श्री चक्र के राम-चरित के अनुसार पत्रपुटकों (दोनों) में हुआ। श्री चक्र के अनुसार चील द्वारा झपट्टे में ली गई पायस देवि अंजना को मिली और उसी से श्री हनुमान का जन्म हुआ। दोनों ग्रंथों में बाललीला तथा बाल्य-काल के विभिन्न संस्कारों का रोचक एवं विस्तृत वर्णन किया गया है पर गोस्वामी जी ने इन सारे कृत्यों का वर्णन कथा प्रसंग को शृङ्खलाबद्ध बनाए रखने तक ही सीमित रखा है। हाँ उस वर्णन को तनिक विस्तार से किया है जिससे राम की परब्रह्मता प्रकट होती है।

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड।। बाल० २०१

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सहित सिंधु महिकानन।।
काल कर्म गुन ग्याम सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ।।
बाल० १-२०२

रामादि की शिक्षा तथा कुमार-क्रीड़ा का भी वर्णन गोस्वामी जी ने अधिक विस्तार से नहीं किया है —

गुरु गृह पढ़न गए रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई।।
बाल० २-२०४

महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा हेतु राम-लक्ष्मण को माँगने आते हैं उस समय दशरथ का पुत्र-मोह नितांत स्वाभाविक रूप से चित्रित किया गया है। दशरथ का यह मोह कुलगुरु वशिष्ट के आश्वासन एवं उद्बोधन पर ही भंग होता है—

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आज सहरोसा।।
देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं।।
बाल २-२०८ (क)

× × ×

तब वसिष्ठ बहु विधि समझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा।।
बाल० ४-२०८ (क)

इस कथानक को गोस्वामी जी ने जितने सुन्दर एवं परिष्कृत रूप में रखा है अन्य लोग अपनी रचनाओं में नहीं रख सके हैं। अन्य लोगों ने दशरथ के मोह तथा वशिष्ठ के उद्बोधन के बीच विश्वामित्र के क्रोध तथा महाराज दशरथ के भय की भी सृष्टि की है।

गोस्वामी जी की राम कथा बहुत ही सरल तथा स्वच्छ है उसमें अजस्र प्रवाह है। वह अप्रयास ही आगे चलती चली जाती है, एक मात्र उन स्थलों पर तनिक विराम अथवा ठहराव आता है जहाँ उन्हें राम के ब्रह्मत्व अथवा महत्व को प्रकट करना होता है। ठहराव भी कथा-प्रवाह में व्यवधान जैसा नहीं प्रतीत होता। मार्ग में जाते ही जाते मुनि विश्वामित्र ताड़का की ओर इंगित कर देते हैं फिर क्या एक ही बाण से श्री राम उसका प्राण ले लेते हैं। मुनि विश्वामित्र श्री राम को अनेक विद्या तथा शस्त्र प्रदान करते हैं—

चले जात मुनि दीन्हि दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध कर धाई।।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।
बाल० ३-२०९

तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्हीं। विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हीं ॥
जाते लाग न छुधा पिपासा । अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥
बाल० ४-२०९

आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि ।
कन्द मूल भोजन दीन्ह भगति हित जानि ॥ बाल० २०९

अहल्योद्धार की कथा का वर्णन अधिकांश रामकथाओं में किया गया है। गोस्वामी जी ने इसका वर्णन संक्षिप्त किन्तु आकर्षक रूप में किया है। मार्ग में दीख पड़ने वाली एक शिला के प्रति जिज्ञासा करने पर महर्षि विश्वामित्र सारी कथा अति संक्षेप में बता देते हैं। कथा ही नहीं बताते आपितु श्री राम को उसके उद्धार के लिए भी प्रेरित करते हैं :—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहत कृपा करहु रघुबीर ॥ बाल० २१०

चरण रज का स्पर्श पाते ही अहल्या अपने पूर्व रूप में आकर श्री राम की बन्दना कर अपने पति लोक को चली जाती है। गोस्वामी जी ने इसका वर्णन चार ललित छन्दों में किया है।

इसके बाद-गंगा-दर्शन, उनके अवतरित होने की गाथा तथा गंगा स्नान की बात करते-करते कवि विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण को जनक पुर पहुँचा देता है। राजा जनक द्वारा मुनि तथा राम-लक्ष्मण का स्वागत एवं उनके द्वारा नगर-दर्शन का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। श्रीराम इस नगर-दर्शन में ही लक्ष्मण को धनुष-यज्ञ शाला भी दिखाते हैं। इस सब में अधिक समय लग जाने के कारण श्री राम के गुरु-भय का बहुत ही स्वाभाविक पुट कथा में दिया गया है :—

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मान माहीं ॥
बाल० ३-२२५

गोस्वामी जी का रामचरित मानस मर्यादा-स्थापन के लिए प्रसिद्ध है। अस्तु गोस्वामी जी ने साधारण बातों में भी मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। अन्य रामायणों में दिया गया है कि श्रमश्लथ राम को प्रातः श्री विश्वामित्र ने जगाया तत्पश्चात् श्री लक्ष्मण को

श्री राम ने जगाया पर गोस्वामी ने सर्व प्रथम लक्ष्मण का जगना दिखाया है फिर राम का अन्त में श्री विश्वामित्र का :—

उठे लखन निसि विगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिलेहिं जगतपति जागे राम सुजान ॥ बाल० २२६ ॥

इसी प्रकार जनक की बाटिका में गुरु-पूजाहेतु पुष्प के लिए गए हुए श्री राम लक्ष्मण तथा सखियों सहित गौरी पूजनार्थ सीता के पहुँचने एवं परस्पर दर्शन के प्रसंग को बहुत ही मनोहारी किन्तु मर्यादित रूप में प्रस्तुत करते हैं :—

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ॥
बाल० २-२३१

× × ×

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥
बाल० ४-२३२

श्री चक्र ने धनुध-यज्ञ के पूर्व "जनकपुर पर संकट" नामक शीर्षक में विस्तृत वर्णन उन असफल राजाओं के प्रयास का किया है जो शिव धनुष तो नहीं उठा पाते फिर भी परस्पर मिल कर जनकपुर पर घेरा डाल देते हैं इस उद्देश्य से कि राजा जनक हार कर धनुष उठाने का प्रतिबन्ध समाप्त कर दें तथा स्वयंवर की सामान्य परंपरा को अपनानें इन लोगों का नेतृत्व सांकाश्य नरेश सुधन्वा करते हैं जो कि महाराज जनक के अनुज श्री कुशध्वज द्वारा मारे जाते हैं। सुधन्वा के संतान हीन होने के कारण कुशध्वज को सांकाश्य का राज्य-भार सँभालना पड़ता है। रामचरित मानस में इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि इससे मानस की राम कथा को कोई अतिरिक्त बल नहीं मिलता। राम द्वारा शिव-धनुष-भंग का प्रसंग भी बड़े नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब सभी राजाओं के असफल हो जाने पर महाराज जनक "वीर विहीन मही मैं जानी" का क्षोभमय घोष करते हैं तो वीरवर लक्ष्मण क्रुद्ध हो राजा जनक की बात को अनुचित मानते हुए विरोध प्रकट करते हैं तथा धनुष को कमल नाल की तरह चढ़ाने, कच्चे घड़े की तरह फोड़ देने, सौ योजन तक लेकर दौड़ने एवं कुकुरमुत्ते के दण्ड की तरह तोड़ने की बात करते हैं। श्री राम

संकेत से लक्ष्मण को बिठा देते हैं। उसी समय महर्षि विश्वामित्र राम को धनुष तोड़ने की आज्ञा देते हैं। श्री राम सहज भाव से खड़े होते है। श्री राम को धनुर्भंग के लिए उद्यत देख सुनयना का मन आशंका से भर उठता है। श्री राम लवनिमेष में धनुष उठा ज्यासज्ज कर तोड़ देते हैं जिसे लोग देख भी नहीं पाते :—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहुँ न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥
बाल० ४-२६१

पहले भी संकेत किया जा चुका है कि राम चरित मानस में धनुभंग के बाद ही परशुराम जनक की राज सभा में पधारते हैं और अंततः श्री राम के महत्व एवं शौर्य को स्वीकार कर अपना धनुष उन्हें सौंप कर तप करने हिमालय चले जाते हैं। बाल्मीकि रामायण तथा उसके आधार पर रचित अन्य अनेक रामायणों में यह घटना जनकपुर से अयोध्या लौटती हुई श्री राम की बारात के साथ मार्ग में दिखाई गई है। गोस्वामी जी ने इसमें बहुत ही सूझ-बूझ तथा कथाकौशल से काम लिया है। मार्ग की घटना उतनी प्रभावोत्पादक नहीं रहती जितनी कि जनक के दरबार की, क्योंकि वहाँ देश-विदेश के सभी राजे-महराजे उपस्थित थे। वहाँ श्री परशुराम की अहमन्यता के निरसन तथा राम के शौर्य का उत्कर्ष और ऊँचा उठ जाता है।

महर्षि विश्वामित्र की अनुज्ञा पा महाराज जनक अयोध्या सूचना भेजते हैं, महाराज दशरथ को बारात लाने की। दशरथ के आने पर श्री राम का ही विवाह नहीं होता अपितु जानकी की अनुजा उर्मिला से लक्ष्मण का भी विवाह कर दिया जाता है। इसी प्रकार महाराज कुशध्वज जो कि जनकराज के अनुज तथा साकाश्य के राजा हैं की कन्या माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति से भरत तथा शत्रुघ्न ब्याहे जाते हैं। अत्यधिक प्रसन्नता एवं आमोद-प्रमोद के बाद बारात अयोध्या लौटती है। वहाँ भी आमोद-प्रमोद मनाया जाता है।

अयोध्या में महराज दशरथ अपनी रानियों तथा पुत्रों और पुत्र बधुओं सहित सुख का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इसी समय सहसा उनका ध्यान अपने कानों के निकटस्थ श्वेतकेशों की ओर आकृष्ट होता है और वे अपने वार्द्धक्य को अतिनिकट जान कर श्री राम को

युवराज पद देने का विचार मन में लाते हैं। गुरु वशिष्ठ की अनुमति पाकर श्री राम के राज्याभिषेक की त्वरापूर्ण तैयारी होती है। मंथरा को इस का ज्ञान होता है और यह कैकेयी के पास पहुँच उसे सारा वृत्तान्त इस रूप में बताती है कि मानो वह सब कैकेयी एवं भरत के प्रति कोई षडयंत्र हो रहा हो। कैकेयी सहसा विश्वास नहीं करती क्योंकि उसका राम पर अधिक स्नेह है। वह मंथरा को डाँटती तथा भला-बुरा कहती है। पर मंथरा कहाँ हार मानने वाली है। वह अपने स्वार्थ को अलग बताकर जब कैकेयी से बात करती है तो उसे उसकी बात का विश्वास हो जाता है और वह उसकी मंत्रणा के अनुसार कार्य करने को उद्यत हो जाती है—

परउँ कूप तुअ वचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़ कस न करब हित लागि॥
अयो० २१

कैकेयी के कोप भवन में जाने का समाचार पा दशरथ सशंकित हृदय से उसे मनाने जाते हैं। वह भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए चौदह वर्षों का बनवास अपने पूर्व सुरक्षित दो वरदानों के रूप में माँगती है। दशरथ का अनुनय विनय तथा अन्य हितैषियों की सुसम्मतियाँ भी उसे अपने निश्चय से डिगा नहीं पातीं। गोस्वामी जी ने इस प्रसंग को बड़े ही सुन्दर एवं स्वच्छ ढंग से प्रस्तुत किया है। श्री राम के मन में कोई अमर्ष नहीं, वे तो पहले ही से चिन्ता-मग्न थे कि रघुवंश की यह परंपरा अच्छी नहीं है कि अन्य सभी भाइयों को छोड़ कर एकमात्र बड़े भाई का ही अभिषेक किया जाता है :—

विमल बंस बहु अनुचित एकू। वंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
अयो० ४-१०

माता कौशल्या के मन में राम के वियोग की कल्पना का दुख होते हुए भी किसी के प्रति तनिक भी ईर्ष्या-द्वेष अथवा अमर्ष का भाव नहीं। वे कहती हैं कि यदि एकमात्र पिता ने बनवास दिया है तो माता को बड़ी मानकर मेरे आदेश से बन मत जाओ पर यदि माता पिता दोनों का आदेश हो तो बन सैकड़ों अवध के समान होगा :—

जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ।'
अयो० १-५६

बाल्मीकि रामायण तथा अन्य रामकथाओं में श्री लक्ष्मण के क्रोध का विस्तार से वर्णन है । लक्ष्मण, राम को बलात् राज्य पर अधिकार कर लेने तथा दशरथ को बन्दी तक बना लेने की बात करते हैं पर गोस्वामी जी ने लक्ष्मण को इस रूप में चित्रित न कर एक भ्रातृ-सेवक अनुज के रूप में ही प्रस्तुत किया है जो कि पूर्ण रुपेण अग्रज के प्रति समर्पित है और उसका सान्निध्य पाने के लिए माता-पिता तथा पत्नी सभी का त्याग करने को उद्यत है । श्री राम के अनेक प्रकार प्रबोध करने पर भी लक्ष्मण राम का साथ छोड़ कर अयोध्या में रहने को तैयार नहीं होते तथा अन्ततः ऐसी बात कहते हैं कि श्री राम को साथ चलने की अनुमति देनी ही पड़ती है :—

धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ।।
मन क्रम वचन चरन रत होई । कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई ।।
अयो० ४-७२

जानकी की पहले ही श्री राम को अनुज्ञा तथा कौशल्या का आशीर्वाद श्री राम के साथ बन जाने हेतु मिल जाता है । एवं यह तीनों महाराज दशरथ से अंतिम विदा लेने पहुँचते हैं । श्री राम को वन जाने से रोकने में असफल महाराज दशरथ सीता को रोकने का प्रयास करते हैं, अन्य पुरजन तथा परिजन भी इसी प्रकार का आग्रह करते हैं । संकोच वश सीता उत्तर नहीं देतीं । इससे कैकेयी का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच जाता है और वह बल्कल वस्त्र तथा अन्य पात्र आगे लाकर रख देती है कि लोग इन्हें धारण कर शीघ्रता से अयोध्या छोड़ दें :—

सीय सकुच बस उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेयी ।।
मुनि पट भूषन भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदु बानी ।।
अयो० १-७६

इसी प्रसंग को श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने अत्यंत विस्तार से प्रस्तुत किया है विशेष कर राम लक्ष्मण द्वारा अपने राजवस्त्राभरणों को उतार कर बल्कल धारण कर लेने के बाद सीता की बल्कल धारण

करने की द्विविधा। स्त्री-सुलभ संकोच एवं लज्जा के कारण वे यह निर्णय नहीं कर पातीं कि अपने वस्त्राभरणों को उतार कर गुरुजनों की उपस्थिति में बल्कल, जिसे कैकेयी ने उनके सम्मुख सुलभ कर रखा है कैसे धारण करे ? इस असमंजस की स्थिति में वे कभी तो बल्कल वस्त्र की ओर देखती हैं और कभी श्री राम की ओर। वहाँ बैठे कुलगुरु वशिष्ठ इसको ताड़ लेते हैं और कैकेयी की भर्त्सना प्रारंभ कर देते हैं। वे कहते है कि श्री राम को वनवास दिया गया है। उनके स्थान पर सीता लक्ष्मण की सहायता से राज्य भार सँभालेंगी। उनकी क्रोधाग्नि निरन्तर बढ़ती जाती है और वे कहते हैं कि अयोध्या-राज्य के प्रजा प्रधानों ने महाराज दशरथ के आदेश को न मानने का निर्णय किया है। महासेनापति ने भी इसी प्रकार का निर्णय किया है। सारी सेना उनके अधीन है। महर्षि वशिष्ठ के मुख से कहलवाई गई यह उक्ति बहुत ही महत्वपूर्ण है कि "तू क्या समझती है कि अयोध्या का सिंहासन महाराज का अंगाभरण है जो वे इच्छा होते ही किसी को उतार कर दे देंगे"।

यह सब सुन कर कैकेयी को प्रथमबार यह लगता है कि उसकी सारी योजना ध्वस्त हो गई। भय और निराशा से वह मूर्च्छित हो जाती है। श्री राम उसे सँभालते हैं तथा एक बार पुनः वे इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं जैसे कि उन्होंने दशरथ के उस पूर्व प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था कि राजकोष तथा सेना श्री राम के साथ वन में जायगी तथा माताएँ जो जाना चाहें और वे भी श्री राम के साथ ही साथ जायँगे। रिक्त अयोध्या में कैकेयी और भरत ही रहेंगे। श्री राम ने महासेनापति से आग्रह किया कि वे भरत के प्रति उसी तरह से निष्ठावान रहें जिस तरह राम के प्रति हैं। महासेनापति द्वारा इसमें असमर्थता प्रकट करने पर श्री राम ने स्वतः राजमार्ग पर ही खड़े-खड़े प्रजा-प्रधानों तथा सेना का संबोधन किया और कहा कि भरत की अवज्ञा राम की अवज्ञा होगी। इस पर सभी नत-मस्तक हो गए। महर्षि वशिष्ठ ने सीता को बल्कल न धारण करने तथा राजवस्त्रों में ही श्री राम के साथ जाने को कहा और कहा कि उनके साथ राजसेवक भी जायेंगे पर राजसेवकों की बात को श्री राम ने स्वीकार नहीं किया और कहा कि इसके लिए लक्ष्मण ही पर्याप्त हैं।

गोस्वामी जी ने राम एवं सीता के साथ अपनी धर्म-पत्नी उर्मिला को छोड़कर जाने वाले लक्ष्मण की जाते समय उर्मिला से भेंट भी नहीं कराई पर अन्य लोगों ने इस प्रसंग पर विस्तार से प्रकाश डाला है। राष्ट्र कवि बाबू मैथिली शरण गुप्त ने तो इस बात को ही लक्ष्य कर "साकेत" महाकाव्य की रचना कर डाली है। श्री 'चक्र' ने इस टीस की अभिव्यक्ति सुमित्रा द्वारा उर्मिला के कक्ष में जाकर उर्मिला को सान्त्वना देने के प्रयास द्वारा कराई है। इस अवसर पर उर्मिला जो उत्तर देती है, वह उसके त्याग और सहनशीलता में चार चाँद लगा देता है :—

"आप के पुत्र यदि आज मुझसे मिलने आते तो मैं मानती कि मैं उनकी पाद-सेविका होने के योग्य सिद्ध नहीं हुई। मैं आज के उनके व्यवहार से गौरवान्वित हुई"। संभवतः गोस्वामी जी ने भी लक्ष्मण एवं उर्मिला के इस चरम-त्याग तथा श्री राम के प्रति लक्ष्मण की अटूट निष्ठा एवं आत्म-समर्पण के भाव से ही लक्ष्मण द्वारा उर्मिला से अनुमति माँगने का उल्लेख नहीं किया है।

श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता के साथ नगर निवासी हो लेते हैं। वे राम के स्नेहवश, समझाने पर भी वापस नहीं लौटते। तमसा तीर पर प्रथम रात्रि को निवास होता है। श्री राम रात्रि में ही सुमंत्र से खोजहीन विधि से रथ चलाने को कहकर लक्ष्मण एवं सीता के साथ नगर निवासियों को सोता हुआ छोड़ आगे चले जाते हैं। शृंगवेरपुर में गंगा के किनारे निषादराज से भेंट होती है। गोस्वामी जी ने निषादराज से पूर्व परिचय का कोई विवरण नहीं दिया है पर अन्य राम कथाकारों ने विशेष रूप से श्री 'चक्र' ने निषादराज के अयोध्या से पूर्व परिचय का विवरण दिया है। वे रामादि चारों भाइयों को अहेर में सहायता करते थे। गोस्वामी जी ने निषादराज के मिलन तथा राम के प्रति उनके दृढ़ भक्ति-भाव का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। निषाद के प्रश्न करने पर उग्रता के लिए प्रख्यात श्री लक्ष्मण जी द्वारा जो समाधान प्रस्तुत कराया है वह भक्ति एवं वैराग्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्री राम गंगा पार होने के पूर्व सुमंत्र को साग्रह वापस अयोध्या भेजते हुए प्रत्येक दशा में पिता दशरथ का विशेष ध्यान रखने की

प्रार्थना करते हैं। सुमंत्र एक बार पुनः महाराज दशरथ का संदेश सुनाकर राम लक्ष्मण तथा सीता से अयोध्या वापस चलने का अनुरोध करते हैं। इस प्रकरण में सीता के द्वारा सुमंत्र से अयोध्या वापसी के प्रस्ताव की अस्वीकृति का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। सीता जी सुमंत्र को संबोधित कर कहती हैं कि हे तात! आर्तता में ही मैं आप के सम्मुख हुई हूँ इसको अन्यथा न मानिएगा। स्वामी के चरण कमल के बिना जगत के सभी संबंध निरर्थक हैं :—

आरति बस सनमुख भइउँ विलग न मानब तात।
आरज सुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात ॥ अयो० ९७॥

केवट बिना चरण धोए गंगा पार करने को तैयार नहीं। श्री राम को चरण धुलवाने ही पड़ते हैं। पार उतर कर किनारे खड़े होने पर उन्हें संकोच होता है कि इसे उतराई तो कुछ दी ही नहीं। पति के इस भाव को जानकर जनक-नन्दिनी मणि जटित मुँदरी प्रसन्न मन से उतार कर श्री राम के हाथों में रख देती हैं पर बहुत प्रयास करने पर भी केवट उसे नहीं लेता :—

पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेहु कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥
अयो० २-१०२

□ □ □

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहि कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल वरु देइ ॥ अयो० १०२

आगे चलकर श्री राम प्रयाग भरद्वाज आश्रम में पहुँचते हैं। एक रात्रि निवास कर अगले दिन गंगास्नान कर मार्ग-दर्शक भरद्वाज के शिष्यों के साथ श्री राम आगे चलते हैं। मार्ग में ग्रामवासी इन लोगों को दौड़ कर देखते हैं। यमुना के किनारे पहुँच, श्री राम भरद्वाज के शिष्यों को वापस लौटा देते हैं और यमुना को पार कर स्नान करते हैं। नगर निवासी इन लोगों का वृत्तान्त जानने को आतुर हैं। वृद्धगण उपाय से सारी बात जानकर लोगों को बताते हैं। उसी समय एक तेजपुंज तरुण तपस्वी आया जिसने श्री राम को अपने इष्ट देव के रूप में पहचान कर दण्डवत् की। तत्पश्चात् लक्ष्मण तथा सीता के भी चरणों से लगा। निषादराज ने उसे दण्डवत् की।

इस प्रसंग का वर्णन अन्य रामकथाओं में नहीं आया है। कथानक की दृष्टि से रामकथा में इसका अपना कोई महत्व नहीं है। इसीलिए अनेक समालोचक इसे अनावश्यक तथा प्रक्षिप्त मानते हैं किन्तु गीता प्रेस से प्रकाशित राम चरितमानस जिसका प्राक्कथन स्वर्गीय हनुमान प्रसाद जैसे भक्त तथा अध्यात्म-साहित्य के विद्वान ने लिखा है, की टीका में इसे प्रक्षिप्त नहीं माना गया और यह संभावना व्यक्त की गई है कि यह तरुण तपस्वी या तो श्री हनुमान जी अथवा स्वयं गोस्वामी जी ही हैं। यह अधिक शोध तथा चिन्तन का विषय है।

मार्ग में जाते हुए रामसीता तथा लक्ष्मण के सौन्दर्य एवं उनके प्रति ग्राम्य वासियों के मनोभावों का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन गोस्वामी जी ने स्थान-स्थान पर किया है। ग्रामवधूटियाँ सीता से राम के संबंध में पूछती है। सीता का उत्तर भी बहुत ही मार्मिक है :—

सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नामु लखन लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँपी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
अयो० ३-११७
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥
भईं मुदित सब ग्राम बधूटी। रंकन्ह राय रासि जनु लूटी ॥
अयो० ४-११७

इस प्रकार मार्ग में चलते हुए राम लक्ष्मण तथा सीता बाल्मीकि जी के आश्रम में पहुँचते हैं। श्री राम, मुनि से अपने निवास का स्थान पूछते है। पहले तो वे आध्यात्मिक उत्तर देते हैं पर अन्त में चित्रकूट में रहने का सुझाव प्रस्तुत करते हैं।

श्री राम, अनुज एवं पत्नी सहित चित्रकूट पहुँचकर पर्णकुटी बनाते हैं श्री राम के आगमन से मुनिगण ही नहीं पशुपक्षी भी आश्वस्त एवं प्रसन्न दीख रहे हैं। वहाँ श्री राम लक्ष्मण एवं सीता की सुरक्षा तथा वे दोनों श्री राम की सेवा में कितनी तत्परता से संलग्न हैं इसका वर्णन देखते ही बनता है :—

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे।
सेवहिं लखन सीय रघुवीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ॥
अयो० १-१४२

इधर सुमंत्र नितांत असमंजस एवं किंकर्तव्य विमूढ़ता की स्थिति में अयोध्या लौटते हैं। राम लक्ष्मण तथा सीता में से किसी के भी वापस न लौटने की बात से दशरथ व्याकुल तथा मूर्छित हो जाते हैं। अन्ततः प्राण ही त्याग देते हैं। गुरु-वशिष्ठ की आज्ञा से भरत तथा शत्रुघ्न को ननिहाल से तुरन्त वापस बुलाया जाता है। कैकेयी भरत के आन्तरिक मनोभावों को न जानती हुई प्रसन्नवदना उनका स्वागत करती हैं, यह मानते हुए कि भरत राज्य की प्राप्ति से प्रसन्न होंगे, पर होता सर्वथा इसके विपरीत है। महाराज दशरथ का देह-त्याग तथा राम लक्ष्मण एवं सीता का वनगमन विशेष रूप से इनका हेतु अपने को जानकर वे अत्यंत विह्वल तथा अवसन्न हो उठे :—

भरतहि विसरेउ पितु मरन। सुनत राम बन गौनु ॥

हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौनु ॥ अयो०-१६०

भरत के कष्ट एवं राम के वियोग की पीड़ा का वर्णन कवि ने अनेक प्रकार बहुत ही विचित्र ढंग से किया है। कुल-गुरु वशिष्ठ द्वारा बताई गई विधि से भरत महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि सम्पन्न करते हैं। कौशल्या तथा कुल-गुरु वशिष्ठ के समझाने पर भी भरत अयोध्या के सिंहासन पर बैठने को तैयार नहीं होते और सभी को लेकर चित्रकूट जहाँ वनवासी राम, सीता तथा लक्ष्मण के साथ रह रहे हैं, पहुंचने की योजना बनाते है। मार्ग में निषाद को भ्रम होता है, भरत की चतुरंगिनी सेना को देख कर कि कहीं वे राम से युद्ध करने तो नहीं जा रहे हैं पर आशंका निर्मूल सिद्ध होने पर वे भी भरत के दल के साथ हो लेते हैं। वे भरत को श्री राम के पास पहुँचने में सहायता करते हैं। भरद्वाज अपने आश्रम में भरत का स्वागत करते हैं।

एक रात्रि भरद्वाज आश्रम में निवास कर भरत दलबल सहित चित्रकूट के लिए प्रस्थान करते हैं। चित्रकूट में सीता दुःस्वप्न देखती हैं तथा श्री राम से कहती हैं। श्री राम इस पर चर्चा कर ही रहे थे कि वनवासी भरत की चतुरंगिणी सेना के आगमन की सूचना देते हैं। श्री राम को चिन्ता-मग्न देख लक्ष्मण अत्यंत क्रुद्ध हो भरत के आगमन के उद्देश्य में शंका करते हैं, पर श्री राम तुरन्त उनकी शंका का निवारण यह कह कर देते हैं कि भरत जैसा भला भाई न तो कहीं सुना है और न देखा है :—

सहित समाज भरत जनु आए। नाथ वियोग ताप तन ताए ।।
अयो० २-२२३

\+ + +

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।।
अयो० ४-२३१

भरत की राममनावन बन-यात्रा का गोस्वामी जी ने अति मार्मिक वर्णन किया है। उनकी मानसिक दशा, कैकेयी के प्रति रोष, अपने प्रति ग्लानि तथा सभी लोगों द्वारा सान्त्वना एवं उनकी निश्च्छलता का भी विशद रूप में वर्णन किया गया है।

चित्रकूट में पहुँचने पर राम एवं भरत का मिलन अद्भुत रूप में होता है। भरत शत्रुघ्न एवं निषाद, राम को देखते ही इस प्रकार मग्न हो जाते हैं कि उनको अपनी सुधि नहीं रह जाती। उधर भरत को आया जान उनसे मिलने का राम का अधैर्य भी दर्शनीय है। अन्य लोग जो इस मिलन को देख रहे हैं वे भी अपनी सुधि भूल गए हैं :—

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक दुख गन ।।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं ।।
अयो० १-२४०

\+ + +

उठे राम सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।।
अयो० ४-२४०

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपा निधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ।। अयो० २४०

श्री राम, पिता के देहावसान की बात जान कर उनकी क्रिया संपन्न कर शुद्ध हुए। भरत इसी चिन्ता में पड़े हैं कि श्री राम से अयोध्या लौटने का आग्रह कैसे किया जाय ? वे गुरु वशिष्ठ से विचार-विमर्श कर रहे हैं। वशिष्ठ जी सुझाव देते है कि भरत एवं शत्रुघ्न दोनों वन चले जाँय तथा राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या वापस हो लें। इससे भरत तो बहुत ही प्रसन्न होते हैं किन्तु रानियाँ रोती हैं क्योंकि उनके लिए तो दुख की स्थिति समान ही रहेगी। भरत विविध प्रकार से अनुनय विनय कर राम को अयोध्या लौटाने का प्रयास कर

रहे हैं। उन्होंने कहा कि मुझे तथा शत्रुघ्न को बन भेज कर आप अयोध्या लौट जायें या लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को अयोध्या भेज दें तथा मुझे साथ ले चलें अथवा हम तीनों बन चले जायँ और आप अयोध्या लौट जायें :—

सानुज पठइअ मोंहि बन कीजिअ सबहिं सनाथ।

नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥ अयो० २६८

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥

जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई ॥

अयो० १-२६६

यह चर्चा चल रही थी कि राजा जनक भी आ जाते हैं। भगवान सत्यसाई द्वारा उच्चरित रामकथा रसवाहिनी में राजा जनक का भरत के साथ ही चित्रकूट जाना दिखाया गया है। अयोध्या एवं मिथिला के लोगों का इस प्रकार बन में समागम हो जाता है। रानियाँ भी परस्पर मिलती हैं। कौशल्या सुनयना से कहती हैं कि मुझे तो भरत की ही चिन्ता अधिक है। आप जनकराज से कहें कि वे उनका ध्यान रखें। महाराज जनक ने कहा कि भरत राम की इच्छा के प्रतिकूल कुछ भी नहीं करेंगे अस्तु चिन्ता का कोई भी कारण नहीं हैं।

गोस्वामी जी ने यह भी दिखाया है कि देवराज इन्द्र सरस्वती से भरत की बुद्धि फेरने की बात कहते हैं जैसे कि मंथरा की बुद्धि प्रभावित की गई थी, पर सरस्वती इसमें असमर्थता प्रकट करती हैं।

भाई राम के प्रति पूर्ण समर्पण एवं आज्ञाकारिता का भाव रखने वाले भरत तथा अनुज के प्रति अपने अपार स्नेह का परिचय देते हुए स्वर्गीय पिता के वचनों की मर्यादा को सुरक्षित रखने वाले राम के पारस्परिक विचार-विमर्श का जो सुन्दर एवं अत्यन्त मर्शस्पर्शी स्वरूप श्री गोस्वामी जी के रामचरित मानस में देखने को मिलता है वह अन्यत्र अत्यन्त दुर्लभ है—

अस कहि प्रेम विवस भए भारी। पुलक शरीर विलोचन वारी ॥

प्रभु पदकमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई ॥

अयो० ३-३०१

कृपा सिन्धु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी।।
भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ।।
अयो० ४-३०७

राम का रुख़ जानकर भरत स्वयं चौदह वर्षों तक श्रीराम की खड़ाऊँ के सहारे उनके वियोग के सहन का प्रस्ताव करते हैं। राज्याभिषेक के लिए ले जाए गये जल को एक कूप में डाल दिया जाता है जो कि बाद में भरत कूप के नाम से प्रसिद्ध होता है। भरत तथा राजा जनक के साथियों के दल, श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता से बिदा होकर अयोध्या तथा जनकपुर लौट जाते हैं।

अयोध्या वापस आकर भरत भी श्रीराम की ही भाँति नगर से दूर नन्दि ग्राम में सन्यासी की तरह रहते हैं। वहीं से अयोध्या के राज्य का संचालन करते हैं। वे भोग एवं ऐश्वर्य से अनासक्त होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं—

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन वड़ भागी।।
अयो० ४-३२४

राम चरित मानस का भरत-चरित अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इतना सुन्दर मार्मिक तथा सामाजिक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। भरत के चित्रण में गोस्वामी तुलसी दास का कवि एवं भक्ति-भाव दोनों अपनी चरम सीमा पर दृष्टिगोचर होते हैं। इनका पारस्परिक सम्मिश्रण एवं परिपाक भी इतना सुन्दर एवं कलात्मक रूप से हुआ है कि सब कुछ आश्चर्यजनक सा लगता है। श्री 'चक्र' जी ने अपने श्री राम चरित में अधिकांशतः श्री गोस्वामी जी के आधार पर ही वर्णन किया है पर "कैकेयी-क्रंदन" के एक स्वतंत्र विषय का समावेश कर, विस्तार से कैकेयी के पश्चाताप का वर्णन किया है। भगवान सत्य साईं द्वारा उच्चरित रामकथा रसवाहिनी में भी कैकेयी द्वारा राम से क्षमा माँगने का उल्लेख किया गया है और श्री राम के मुँह से प्रत्युत्तर में कहलाया गया है कि आप ने मेरे अवतार-प्रयोजन में मेरी सहायता की है, पर गोस्वामी जी ने कैकेयी के संकोच की अभिव्यक्ति करके बिना कुछ कहे ही सब कुछ कह दिया है। अन्य लोगों के साथ श्री राम को अयोध्या लौटा ले जाने के

लिए कैकेयी का चित्रकूट जाना ही इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली है। श्री राम को कैकेयी का विशेष ध्यान है । वे किसी प्रकार उन्हें ऐसा अवसर नहीं देना चाहते कि उनके मन में यह भाव उठे कि श्री राम पर उनके लिए बनवास माँगने का कोई प्रभाव है। श्री राम भरत से कहते हैं कि माँ कैकेयी को दोष वही देगा जो कि अज्ञानी होगा। चित्रकूट से लौटते समय भी वे कैकेयी के चरणों की वन्दना करके उनके संकोच और क्षोभ को मिटाकर के ही उन्हें बिदा करते हैं :—

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ।।
दोस देहिं जननहिं जड़ तेई । जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई ।।

अयो० ४-२६३

भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेह मिलि भेंटि ।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि ।। अयो० ३१९

इन्द्र-पुत्र जयन्त अहंकारवश श्री राम के बल की परीक्षा लेने के उद्देश्य से काक बन, सीता जी के चरणों को घायल करके भागता है । श्री राम उसकी घृष्ठता का दण्ड देने हेतु एक सींक का बाण छोड़ देते हैं। उस बाण से त्रस्त वह सभी लोगों के पास रक्षार्थ दौड़ता भागता है पर कहीं भी आश्रय नहीं पाता। अन्ततः महर्षि नारद के उपदेश से पुनः राम की शरण में आता है। वे एक आँख फोड़ कर उसे क्षमा कर देते हैं। इस कथानक में बहुत से राम कथा-कारों ने जयन्त द्वारा सीता जी के स्तन में चोंच मारने का उल्लेख किया है पर गोस्वामी जी को मर्यादापूर्ण चरित्र ही अभीष्ट है अस्तु उन्होंने चरणों पर चोंच के प्रहार का वर्णन किया है :—

सीता चरन चोंच हति भागा । मूढ़ मन्द मति कारन कागा ।।
चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक धनुष सायक संधाना ।।

अर० ४-१

श्री राम ने यह जानकर कि चित्रकूट में भीड़ हो रही है उसे छोड़ने का निर्णय किया। वे अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे, जहाँ उन्होंने श्री राम का स्वागत, पूजा तथा उनकी वन्दना की। उनकी धर्म-पत्नी, माता अनुसुइया से सीता जी मिलीं उन्हें अनुसुइया जी ने

दिव्य वसन तथा आभूषण पहनाए। कवि ने सीता के प्रति कहे गए अनुसुइया के बचनों में पातिव्रत-धर्म का वर्णन किया है।

श्रीं राम, अनुज तथा पत्नी सीता के साथ बन में भ्रमण-शील हैं मुनियों के आश्रमों में जाकर उन्हें संतोष एवं सान्त्वना दे रहे हैं। मार्ग में दैत्य विराध मिलता है जिसे श्रीराम मार देते हैं। अन्य राम कथाओं में विराध-बध्र का अच्छा-खासा वर्णन किया गया है पर गोस्वामी जी ने मात्र इतना कहना ही पर्याप्त माना कि असुर विराध रास्ते में जाते हुए मिला जिसे श्री राम ने मार दिया :—

मिला असुर विराध मग जाता। आवत ही रघुवीर निपाता ॥

अर० ३-७

श्री राम के बनागमन को जानकर शरभंग-मुनि ब्रह्म लोक न जाकर उनकी प्रतीक्षा करते हुए उनसे मिले। उन्होंने श्री राम के दर्शन कर उनकी स्तुति की तथा निवेदन किया कि जब तक मैं शरीरत्याग, आप में न आ मिलूँ तब तक आप यहीं विश्राम करें। ऐसा कह सरभंग मुनि योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर देते हैं :—

तब लग रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलों तुम्हहि तनु त्यागी ॥

अर० ३-८

× × ×

अस कहि जोग अगिनि तन जारा। राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥

अर० १-६

श्रीराम इस प्रकार बन में भ्रमण कर रहे हैं। उनके साथ मुनिगण भी चल पड़े। मार्ग में अस्थि समूह को देख कर श्रीराम की जिज्ञासा पर मुनिवृन्द ने बताया कि यह ढेर राक्षसों द्वारा भक्षण किए गये मुनियों की अस्थियों का है। यह जानकर श्रीराम के नेत्र करुणा से अश्रुपूरित हो गए उन्होंने हाथ उठाकर पृथ्वी को राक्षस-विहीन करने की प्रतिज्ञा की—

निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन जल छाए ॥

अर० ४-६

निसिचर हीन करहुँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ अर० ६ ॥

आगे चलकर श्रीराम की भेंट अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण से होती है। उनके साथ वे अगस्त्य के आश्रम पर पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं कि आप से क्या छिपाना आप तो मेरे आने का कारण जानते ही हैं। अब आप मुझे ऐसा मंत्र दें कि मैं मुनि द्रोही राक्षसों का नाश कर सकूँ। और आगे चलने पर गृध्रराज जटायु से भेंट होती है। गोस्वामी जी ने जटायु से श्रीराम के किसी पूर्व परिचय का उल्लेख नहीं किया है पर अन्य राम कथाकारों ने ऐसा किया है। श्री चक्र जी ने जटायु से अयोध्या की मित्रता का विस्तृत विवरण दिया है। महा-राज दशरथ अयोध्या पर शनि की दृष्टि की बात ज्ञात कर जब शनि को दण्ड देने हेतु स्वर्ग जाते हैं तो लौटते समय शनि की दृष्टि उनके रथ पर पड़ जाती है परिणाम स्वरूप उनका रथ भस्म हो जाता है और वे भी संज्ञाहीन हो कर पृथ्वी पर गिरने लगते हैं। जटायु जो कि सूर्य की ओर से लौट रहे थे दशरथ के गिरते हुए शरीर को अपनी पीठ पर ले, धीरे से पृथ्वी पर लाकर रख देते हैं। जटायु द्वारा अपने पंखों को गीलाकर वायु करने से महाराज दशरथ पुनः चेतना में आ जाते हैं। सारा वृत्तान्त जटायु से सुनकर उन्हें परम मित्र मानकर अयोध्या चलने का आग्रह करते हैं, पर गृध्र के रहने को अपशकुन बताकर जटायु महाराज दशरथ का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करते।

श्रीराम गोदावरी के निकट कुटी बनाकर रह रहे हैं। एक दिन लक्ष्मण ने श्रीराम को प्रसन्न जानकर निश्छल भाव से श्रीराम से ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति एवं जीव तथा ईश्वर के संबंध में प्रश्न किए। श्रीराम ने संक्षेप में सभी का वर्णन कर अन्त में बताया कि वचन, कर्म और मन से जो मुझे ही समर्पित हैं तथा निष्काम भाव से मेरा ही चिन्तन करते हैं उन्हीं के हृदय-कमल में, मैं निवास करता हूँ।

वचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निष्काम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ अर० १६

रावण की बहिन शूर्पणखा ने पंचवटी में राम के सौंदर्य को देख काम वासना से पीड़ित हो उन्हें पाने की चेष्टा की। इस प्रयास में उसने सीता को भयभीत किया। परिणाम स्वरूप श्रीराम के संकेत पर लक्ष्मण ने उसको नाक-कान विहीन कर दिया और मानो इस कृत्य द्वारा ही रावण को युद्ध के लिए चुनौती दे दी। गोस्वामी जी ने

शूर्पणखा का चित्रण एक मात्र काम वासनामयी राक्षसी के रूप में किया है जब कि अन्य रामकथाकारों के अनुसार रावण ने उसे दण्ड-कारण्य की अधिस्वामिनी के रूप में नियुक्त कर रखा था।

शूर्पणखा की इस दुर्दशा का बदला लेने के लिए आए हुए खरदूषण को श्रीराम सेनासहित मार गिराते हैं। शूर्पणखा रावण के पास पहुँच कर उसकी भर्त्सना करते हुए अपनी दुर्दशा का विवरण देती है तथा सीता के रूप लावण्य की भी चर्चा करती है। प्रकट में तो रावण अपने बाहुबल की डींग मारता है पर वास्तविकता में उसे रात भर नींद नहीं आती और वह निर्णय लेता है कि यदि भगवान ने अवतार ले लिया है तो मैं हठ पूर्वक उनसे बैर करूँगा जिससे कि उनके द्वारा मारे जाने से मेरा उद्धार हो जाय और यदि कोई राजा ऐसा कर रहा है तो उसकी पत्नी का अपहरण कर लूँगा—

सुररंजन भंजनि महि मारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा।।
तो मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।
अर० २-२३

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा।।
जौं नर रूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।
अर० ३-२३

इस प्रकार विचार कर इधर रावण मारीच से सहायता की प्राप्ति के लिए उसके पास जाता है। उधर श्री राम, लक्ष्मण को पुष्प लेने के लिए भेज कर एकान्त पा सीता जी को निर्देश देते हैं कि जब तक मैं निशाचरों का नाश करूँ तब तक तुम अग्नि में निवास करो। श्रीराम की इस योजना को लक्ष्मण जी भी नहीं जान सके—

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला।।
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।
अर० १-२४

\+ \+ \+

लछिमन हूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।
अर० ३-२४

गोस्वामी तुलसी दास की यह विशिष्ट सृष्टि है। वह यह विचार अपने

मनमें नहीं ला सकते कि उनके आराध्य श्री राम की शक्ति सीता का एक प्राकृत नारी की भाँति रावण जैसे अधम राक्षस द्वारा अपहरण हो जाय। उनकी मान्यता एवं मर्यादा की रक्षा इसी में है कि वास्तविक सीता अग्नि में समाहित हो जायँ तथा उनके प्रतिबिंब का ही हरण हो। गोस्वामी जी ने रावण-बध के बाद राम द्वारा दुर्वाद कहला कर सीता के प्रतिबिंब को अग्नि में जल जाने की प्रेरणा दी। वास्तविक सीता जो कि अग्नि में प्रविष्ट हो गई थीं अग्नि से पुनः प्रकट होती हैं।

मारीच के समझाने पर भी रावण अपने निश्चय से डिगता नहीं। फलतः मारीच स्वर्ण-मृग बन सीता की कुटी के पास आता है। सीता उसके स्वर्णमय चर्म की इच्छा करती हैं। श्री राम धनुष बाण ले मृग के पीछे जाते हैं। श्री राम के बाण से आहत मारीच प्राण छोड़ते समय श्री राम की जैसी आवाज में लक्ष्मण को पुकारता है। सीता लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए जाने को कहती हैं। लक्ष्मण के उनको अरक्षित छोड़ कर न जाने पर सीता लक्ष्मण से कुछ मर्म की बात कहती हैं। बाध्य होकर लक्ष्मण जिधर से आवाज आती है उसी ओर चले जाते हैं। इधर रावण, सीता को अकेला पाकर भिक्षा माँगने के बहाने उनकी कुटी पर जाता है और सीता को बलात् अपने रथ पर बैठा कर लंका की ओर चल पड़ता है। सीता का विलाप सुन जटायु रावण को रोकते हैं। चोचों से मार कर घायल कर उसे मूच्छित कर सीता को मुक्त करा लेते है। पर अन्ततः रावण जटायु का पंख काट देता है वे धरती पर गिर पड़ते हैं। रावण, सीता को रथ पर बिठा कर लंका की ओर चल पड़ता है। मार्ग में पर्वत पर कपियों को देख कर सीता ने हरि का नाम लेकर वस्त्र गिरा दिए।

रावण सीता को अनेक विधि समझा-बुझा तथा भयभीत करके भी जब अपनी पत्नी बनने की बात नहीं स्वीकार करा सका तो उसने उन्हें अशोक वाटिका में रख दिया। इधर लक्ष्मण को अपनी ओर आता देख श्री राम सशंकित हो उठते हैं, सीता की सुरक्षा के प्रति। कुटी पहुँचने पर कुटी खाली मिलती है। श्री राम सामान्य व्यक्ति की भाँति सीता के वियोग में विलाप करते और उन्हें स्थान-स्थान पर

ढूँढ़ते हैं। आगे जाने पर क्षत-विक्षत जटायु मिलते हैं और वे सारा बृत्तांत बताते हैं। श्री राम उन्हें मोक्ष प्रदान करते हैं और अनुरोध करते हैं कि स्वर्ग में पहुँच कर मेरे पिता दशरथ को सीता-हरण की बात न बताइएगा। यदि मैं वस्तुतः राम हूँ तो रावण सपरिवार स्वर्ग जाकर बतावेगा।

आगे चलने पर श्री राम ने कबंध को मार कर उसे मोक्ष प्रदान किया। इसके बाद जाति-पाँति के भेद-भाव को तिलांजलि दे प्रेम के वशीभूत हो श्रीराम शबरी के आश्रम पर पहुँचे। श्रीराम ने शबरी के दिए हुए कन्दमूल फल को खाया। श्री चक्र ने शबरी की कथा को विस्तार से अपने राम चरित में स्थान दिया है। शबरी मतंग ऋषि की शिष्या है। वह उनके इस आश्वासन से आश्वस्त है कि श्री राम कभी न कभी उसके आश्रम में स्वयं पधारेंगे। उसने श्री राम के स्वागत के लिए चख चख कर मधुर फल संग्रह कर रखे हैं। सानुज श्री राम के पहुँचने पर इन्हीं फलों से वह इनका स्वागत करती है। अन्य ऋषि शबरी को अस्पृश्या मानते हैं। वे जब अपने-अपने आश्रमों को लौटते हैं तो देखते है कि हवन कुण्ड की अग्नि शान्त हो गई है तथा चूहों ने उनके बल्कल वस्त्रों को कुतुर डाला है। वे श्री राम से इसके निराकरण की याचना करते हैं। श्री राम अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए स्पष्ट करते हैं कि शवरी के अपमान का ही यह फल है। आप लोग उससे क्षमा याचना करें। क्षमा याचना करने पर सब कुछ पूर्ववत् हो जाता है। भगवान सात्यसई द्वारा उच्चरित रामकथा रसवाहिनी में शबरी के योगाग्नि में प्राण-त्याग देने का वर्णन किया गया है।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने श्री राम के द्वारा शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश कराया है। श्री राम द्वारा सीता के संबंध में पूँछने पर शबरी उन्हें पंपासर जाने को कहती है और बताती है कि वहाँ आप की सुग्रीव से मित्रता होगी।

आगे चलने पर श्री राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचते हैं जहाँ सुग्रीव अपने सचिवों सहित रहते हैं। सुग्रीव राम-लक्ष्मण को आता देख भयभीत हो, हनुमान जी को भेजते हैं यह पता लगाने

के लिए कि कहीं ये लोग बालि के भेजे हुए तो नहीं आ रहे हैं। श्री हनुमान विप्र रूप धारण कर श्री राम तथा लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करके अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं और श्री राम की सुग्रीव से अग्नि की साक्षी में मित्रता करा देते हैं।

सुग्रीव अपने बन में रहने का कारण श्री राम की जिज्ञासा पर बताते हैं और श्रीराम बालि को एक ही बाण से मार डालने की प्रतिज्ञा करते हैं। सुग्रीव ने श्री राम को दुंदुभिराक्षस की अस्थियों का ढेर तथा ताल के वृक्ष दिखाए, जिन्हें श्री राम ने अप्रयास ही ढहा दिया। ज्ञान होने पर सुग्रीव सुख-संपत्ति की प्राप्ति के प्रति उदासीनता प्रकट करते हैं पर श्रीराम कहते हैं कि मेरी बात मिथ्या नहीं हो सकती है। श्रीराम के के कहने पर सुग्रीव बालि को ललकारता है। तारा के समझाने पर भी बालि नहीं मानता तथा सुग्रीव से आ भिड़ता है। सुग्रीव बालि के वज्रवत् मुष्टिप्रहार से विकल हो कर भागते हैं। श्रीराम उसके शरीर का स्पर्श कर पीड़ा हर लेते हैं तथा पहचान के लिए उन्हें एक माला पहिना देते हैं। सुग्रीव पुनः बालि से भिड़ते हैं। श्रीराम को जब यह आभास होता है कि सुग्रीव थक कर हार चुके हैं तभी वे बाण चला कर बालि को मार देते हैं। बालि, अंगद को श्रीराम को सौंप कर प्राण छोड़ता है। लक्ष्मण सुग्रीव का राज तिलक किष्किंधा जा कर करते हैं। श्रीराम वर्षा ऋतु में प्रवर्षण गिरि पर रहते हैं। गोस्वामी जी ने वर्षा तथा शरद ऋतुओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है और इनके माध्यम से भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य का निरूपण किया है। ऐश्वर्य पाकर सुग्रीव राम-काज भूल जाते हैं। हनुमान जी उन्हें स्मरण कराते हैं। उसी समय क्रुद्ध लक्ष्मण नगर में प्रवेश करते हैं। तारा तथा हनुमान उनका क्रोध शान्त करते हैं। सुग्रीव वानरों को बुलाने की सूचना चारों दिशाओं में भेज कर श्रीराम के पास उपस्थित होते हैं।

सीतान्वेषण हेतु सभी दिशाओं में बानर-दल भेजे जाते हैं। दक्षिण दिशा के अन्वेषक-दल का नेतृत्व अंगद करते हैं। हनुमान तथा जाम्बवन्त भी उनकी सहायता के लिए जाते हैं। इस दल के प्रस्थान—समय श्रीराम हनुमान जी को अभिज्ञान हेतु अपनी अँगूठी देते हैं। अन्वेषण में असफल तथा भूख-प्यास से व्याकुल इस दल के लोग एक विवर में प्रवेश करते हैं जहाँ तपस्विनी की आज्ञा से सुन्दर फल खाते तथा

जल पीते हैं। तपस्विनी के निर्देश पर सभी आँख बन्द कर लेते हैं और पुनः आँख खोलने पर अपने को समुद्र तट पर पाते हैं। सभी लोग चिन्तित हैं। सीतान्वेषण के संबंध में विशेष कर अंगद। इनके पारस्परिक वार्तालाप को सुनकर संपाती गिरिगुहा से निकल कर बानरों के भक्षण करने की बात करता है। इन लोगों से जटायु का समाचार ज्ञात कर संपाती उसे तिलांजलि देता है। श्रीराम-कृपा से संपाती के पंख जम गए। उसने कहा कि त्रिकूट गिरि पर लंका है वहाँ अशोक वाटिका में सीता चिन्तामग्न बैठी हैं। जो सौ योजन समुद्र पार कर सकेगा वही सीता की सुधि लायेगा। सब ने अपनी-अपनी सामर्थ्य का वर्णन किया। अंगद ने पार जाने की सामर्थ्य बताई पर लौटाने में कुछ संदेह व्यक्त किया। जाम्बवन्त ने हनुमान जी को उनके विपुल बल का स्मरण कराया और वे भूधराकार हो गए।

जाम्बवन्त की सलाह पर हनुमान ने समुद्र के ऊपर छलाँग लगाई। सुरसा ने उनके बुद्धिबल की परीक्षा ली और उन्हें सुयोग्य पाकर आशीर्वाद देकर चली गई। समुद्र के गर्भ में रहने वाले मैनाक पर्वत ने हनुमान जी को विश्राम देने का यत्न किया पर हनुमान जी ने रामकार्य की पूर्ति के पूर्व विश्राम करना उचित नहीं माना। छाया को पकड़ कर जीवों को खींच कर खा जाने वाली राक्षसी का बध कर हनुमान जी लंका पहुँचते हैं। वहाँ की व्यवस्था तथा वैभव को देख कर लघु रूप धारण कर लंका में प्रवेश का प्रयास करते हैं। सिंह द्वार पर लंकिनी नामक राक्षसी मिलती है जो हनुमान जी के एक मुक्के से ही चोट खाकर रक्त वमन करती हुई लुढ़क जाती है। सँभल कर खड़ी होती है और बताती है कि जब ब्रह्मा ने रावण को वर दिया था तभी मुझसे कहा था कि जब तुम कपि के मारने से व्याकुल होगी तभी यह समझ लेना कि अब सभी राक्षस मारे जायेंगे। उसने राम के दूत को देख कर अपने भाग्य की सराहना की।

पवनपुत्र ने रावण के प्रत्येक कक्ष में खोज की किन्तु कहीं भी सीता नहीं दिखाई पड़ीं। इसी क्रम में वे विभीषण के गृह में गए वहाँ उन्होंने उनसे परिचय किया और सारा वृत्तांत जान कर सीता जी से भेंट करने अशोक बाटिका पहुँच गए। उसी समय रावण भी अनेक निशाचरियों के साथ सीता को अपने प्रस्ताव को स्वीकार कराने

के लिए पहुँचता है। बहुविधि प्रयास करने पर भी सीता अडिग रहती हैं। यहाँ गोस्वामी जी ने हनुमान जी को प्रत्यक्षतः सीता की स्थिति का दिग्दर्शन अपने कथा-क्रम में ही करा दिया है अलग से सीता द्वारा जानकारी देने की अपेक्षा नहीं रह जाती। यह भी पता चल जाता है कि सीता विपत्ति की चरमावस्था में भी श्री राम के प्रति कितनी समर्पित तथा पतिपरायणा हैं। श्री चक्र के अनुसार सीता द्वारा किए गए अपमान से रावण क्रुद्ध हो कर सीता के बध के लिए खंग खींच लेता है पर मन्दोदरी उसे ऐसा न करने को राजी कर लेती है। रावण के लौट जाने पर त्रिजटा अपने स्वप्न का विवरण प्रस्तुत करती है। सीता, शरीर को समाप्त कर देने के लिए त्रिजटा से अग्नि की याचना करती हैं। रात्रि में अग्नि न मिलने की बात कह कर त्रिजटा घर चली जाती है। हनुमान जी श्री राम की अँगूठी को गिरा कर उनका गुणगान करते हैं। सीता जी सुनकर प्रसन्न होती हैं तथा कहती हैं कि जिसने इन गुणों का वर्णन किया वह प्रकट क्यों नहीं होता? हनुमान जी के पास पहुँचने पर सीता मुँह फेर कर बैठ जाती हैं पर हनुमान के विश्वास दिलाने पर उन्हें विश्वास होता है। वे श्री राम का सरा वृत्तांत सुनाते हैं।

सीता जी की आज्ञा से हनुमान जी अशोक बाटिका में फल खाते तथा बृक्ष तोड़ते हैं। मना करने पर रखवाले राक्षसों को मारते हैं। रावण के पास जब समाचार पहुँचता है तो वह अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजता है जिसे हनुमान जी मार देते है। पुनः रावण मेघनाद को भेजता है जो किसी तरह भी उन्हें जीत न पाने के कारण ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर उन्हें बाँध लेता है तथा रावण के समक्ष प्रस्तुत करता है। रावण तथा हनुमान का बहुत अधिक वाद-विवाद होता है। उनकी पूँछ में आग लगादी जाती है। वे पूरी लंका में भाग-दौड़ कर उसे जला देते हैं। पूंछ समुद्र में बुझाकर पुनः सीता जी के सम्मुख उपस्थित होते हैं तथा चूड़ामणि लेकर वापस आ जाते हैं। बाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमान जी सीता को अपने साथ पीठ पर चढ़ा कर श्रीराम के पास ले जाने का प्रस्ताव करते हैं पर सीता जी इसे स्वीकार नहीं करतीं। भगवान सत्यसाईं ने भी इसी प्रकार की बात कही है पर श्री चक्र जी ने गोस्वामी जी के वर्णन के अनुसार ही वर्णन

किया है। केवल इतना अतिरिक्त है कि सीता जी हनुमान जी से एक दिन विश्राम कर, जाने की बात कहती हैं पर हनुमान जी श्रीराम की व्यग्रता को लक्ष्य कर तुरन्त ही जाने को उद्यत होते हैं। सभी को लेकर हनुमान किष्किधा पहुँचते हैं जहाँ अंगद की सम्मति से लोग मधुबन में फल खाते हैं तथा रोकने पर रक्षकों को मारते हैं। सुग्रीव के पास जब यह समाचार पहुँचता है तो वह समझ लेते हैं कि लोग सीता का पता लगा लाए अन्यथा फल खाने का दुस्साहस न करते। वे स्वयं जाकर उनसे मिलते हैं। हनुमान जी ने पता लगाया है यह जान कर उनसे पुनः मिलते हैं। सभी को लेकर श्रीराम के पास पहुँचते हैं। श्रीजाम्बवन्त पवन सुत के सारे कृत्यों से भी श्रीराम को अवगत कराते हैं। श्रीराम हनुमान के उपकार की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। श्री हनुमान अहंकार से त्राण पाने हेतु प्रेम-मग्न हो श्रीराम के चरणों में प्रणत हो जाते हैं और उनके उठाने पर भी जल्दी नहीं उठते हैं :—

सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवन्त ॥ सुन्दर० ३२
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठव न भावा ॥
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमरि सो दसा मगन गौरीसा ॥
सु० १-३३

हनुमान जी अपनी सारी उपलब्धि को श्रीराम की कृपा का फल ही मानते हैं और उनसे अनपायनी भक्ति की ही याचना करते हैं।

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोर प्रभुताई ॥
सु० ५-३३

× × ×

नाथ भगति अति सुखदायिनी। देहु कृपा कर अनपायनी ॥
सु० १-३४

× × ×

गोस्वामी तुलसी दास का भक्त हृदय इस प्रसंग में प्रबल हो गया है।

इधर श्रीराम लंका पर आक्रमण की तैयारी के लिए सेना सहित समुद्र तट पर पहुँच जाते हैं उधर लंका में मंदोदरी लंकादहन को लक्ष्य कर सीता के वापस लौटा देने की बात रावण से कहती है। रावण उसकी बात, बात बनाकर टाल जाता है। वह दरबार में

सचिवों से सम्मति माँगता है। वे सब भी ठकुर सोहाती करते हैं पर विभीषण राम से शत्रुता न करने का परामर्श देते हैं। माल्यवान् सचिव इसकी पुष्टि करता है। रावण क्रुद्ध होकर दोनों को दरबार से निकलने की बात कहता है। माल्यवान् अपने घर चला जाता है। विभीषण पुनः करबद्ध हो, रावण को समझाने का यत्न करते हैं और ज्यों ही वे सीता को लौटा देने की बात कहते हैं रावण उन्हें श्रीराम के पास जाने को कह उन पर चरण-प्रहार करता है।

विभीषण रावण को प्रणाम कर अपने सचिवों सहित श्रीराम की शरण लेते हैं। गोस्वामी जी की सशक्त लेखनी से यहाँ श्रीराम की शरणागत-वत्सलता तथा शौर्य दोनों का अच्छा चित्रण हुआ है। वे सुग्रीव के कूटनीतिक प्रस्ताव को स्वीकार न कर विभीषण को अभय शरण ही नहीं देते अपितु उसे लंकापति के पद पर अभिषिक्त भी कर देते हैं। जिस पद को रावण ने भगवान शंकर को शिरों की आहुति देकर प्राप्त किया था उसे श्रीराम ने शरणागत विभीषण को अनायास ही सौंप दिया :—

जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा विभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

सुन्दर ४९ (ख)

श्री विभीषण श्री सुग्रीव की ही भाँति श्रीराम के मंत्री बन जाते हैं। उनको सम्मति से श्री राम समुद्र-तट पर आसन लगाकर समुद्र से मार्ग की याचना करते हैं। यह कार्य श्री लक्ष्मण को ठीक नहीं लगता, वे समुद्र सुखा डालने की बात कहते हैं। श्री राम वैसा ही करने की बात कह उन्हें सान्त्वना देते हैं। इसी बीच रावण द्वारा भेजे गए गुप्तचर जो कि अपने वास्तविक रूप को छिपाये हुए हैं श्री राम की हृदय से प्रशंसा के कारण अपने कपट रूप को छोड़ वास्तविक रूप में आ जाते हैं। बानर उन्हें पकड़ लेते हैं। सुग्रीव अंग-भंग करने का आदेश देते हैं पर राम की दुहाई करने पर श्री लक्ष्मण छुड़ा देते हैं और उनके हाथ रावण को पत्र भेज कर विभीषण की ही भाँति श्री राम की शरण में आने अथवा सपरिवार राम के हाथों मारे जाने को उद्यत होने को कहते हैं। रावण ने गुप्तचर शुक से पूछा कि श्री राम की सेना का सारा समाचार कहो, कहीं वे मेरे तेज, तथा बल का ज्ञान कर

वापस तो नहीं चले गए ? शुक ने विस्तृत वर्णन किया श्री राम की सेना का। विभीषण की सम्मति पर श्री राम द्वारा समुद्र से मार्ग माँगने की बात सुनकर रावण हँसा और उसने कहा कि जिसका मंत्री कायर विभीषण हो उसे विजय-विभूति कहाँ मिलने वाली है। इस पर शुक ने लक्ष्मण जी का पत्र दिया जिसे रावण ने अपने मंत्री से पढ़वाया। जब शुक ने सीता के वापस करने की बात कही तब रावण ने उस पर चरण-प्रहार किया। शुक श्री राम के पास वापस लौट गया तथा अपनी जीवन-गाथा सुनाकर मुक्त हो गया।

तीन दिनों के व्यतीत हो जाने पर भी जब समुद्र ने मार्ग न दिया तब श्री राम ने लक्ष्मण से धनुष बाण माँगे और कराल-बाण का संधान समुद्र पर कर दिया। फिर क्या था समुद्री जीव व्याकुल हो गए और समुद्र अपनी अकड़ छोड़ ब्राह्मण-रूप धारण कर स्वर्ण थाल में नाना रत्नों को सजा कर श्री राम के सम्मुख आया और उनके चरणों को पकड़ कर क्षमा याचना की। अनेक विधि अनुनय-विनय की तब श्री राम ने सेना के उतरने का उपाय पूछा। समुद्र ने नल, नील के लड़कपन की ऋषि के वरदान की बात बताकर सेतुबंधन की सम्मति दी। बानरों द्वारा लाए गए पत्थरों से सेतु निर्माण हो जाता है।

सेतु निर्माण के पश्चात् श्री राम, शिव की स्थापना मुनियों को बुलाकर करते हैं। इस प्रसंग को अन्य राम कथाकारों ने विस्तृत रूप से वर्णित किया है और यह दिखाया है कि शिव-लिंग की स्थापना के लिए श्री राम को रावण के अतिरिक्त कोई उपयुक्त शैव आचार्य मिला ही नहीं। रावण से आचार्यत्व स्वीकार करने की प्रार्थना श्री राम, जाम्बवन्त को भेज कर करते हैं। प्रहस्त के विरोध पर भी रावण इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। वह सीता को लेकर राम के पास पहुँचता तथा सविधि शिव-लिंग की स्थापना करवाता है। वह राम को विजयी होने का आशीर्वाद भी देता है और समरांगण में मृत्यु के समय श्री राम की उपस्थिति की अपेक्षा दक्षिणा के रूप में करता है। शिव-स्थापना के पश्चात् सीता को पुनः अशोक बाटिका ले जाता है। गोस्वामी जी ने यह सब नहीं दिखाया है क्यों कि उनके स्वाभाविक कथा-प्रवाह से इस प्रसंग की संगति नही बैठती है और

न ही यह सब उनके द्वारा निर्धारित मर्यादा के अनुकूल ही बैठता है। उन्होंने श्री राम के द्वारा शंकर की स्थापना तथा पूजा के बाद श्री राम के मुख से विष्णु और शिव के ऐक्य की बात कहलवाई है। संभवतः कवि ने यह सब इसलिए कहलवाया कि ग्रंथरचना के समय वैष्णवों तथा शैवों में वैचारिक मतभेद बहुत अधिक था।

समुद्र पार कर श्री राम विभीषण की मंत्रणानुसार सुवेल पर्वत पर अपना शिविर स्थापित करते हैं। बानर एवं भालु फल खाते तथा मिलने वाले राक्षसों को परेशान कर दाँतों से उनके नाक-कान काट लेते हैं। ऐसे ही राक्षसों ने लंकाधिराज रावण को श्रीराम के सेना सहित समुद्र पार करने की सूचना दी। मन्दोदरी ने रावण को अनेक विधि समझा कर सीता को लौटाने का आग्रह किया पर रावण ने अपने बल का वर्णन कर उसकी बातों को अनसुनी कर दिया। सभा में जब मंत्रियों से पूछा गया तो उन्होंने भी रावण की इच्छा की ही पुष्टि की। प्रहस्त ने कहा कि ये मंत्री अल्पज्ञ हैं और उचित राय नहीं दे रहे हैं। दूत भेज कर श्री राम से संधि कर लीजिए और सीता को वापस लौटा दीजिए। इस पर भी यदि श्री राम युद्ध चाहें तो युद्ध करें। यह सुन रावण ने क्रुद्ध होकर उसकी भर्त्सना की।

सुबेल पर्वत से श्री राम दक्षिण की ओर देखते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि मानों घुमड़ते हुए बादलों में विजली चमक रही हो। विभीषण वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि यह न तो विद्युत है और न मेघमाला। रावण लंका की चोटी पर बने हुए महल पर बैठा हुआ है। उसके सिर के छत्र मेघ, तथा मंदोदरी के हिलते हुए कर्णफूल विद्युत से प्रतीत हो रहे हैं। मृदंग के ताल ही मेघ की मधुर गर्जना से प्रतीत हो रहे हैं। श्री राम ने रावण के इस अभिमान का अनुमान कर एक ही बाण से उसके छत्र, मुकुट तथा मंदोदरी के कर्णफूल को काटकर गिरा दिया। किसी को इस रहस्य का पता नहीं चल पाया। लोगों ने इस रसभंग को अपशकुन माना तब रावण ने बात बना कर सान्त्वना दी यह कह कर कि शिर गिरने से जिसे शुभ होता है उसका इसमें कैसा अशुभ ?

सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे :कस असगुन ताही॥
लंका २-१४

मन्दोदरी रावण को पुनः श्री राम से बैर न ठानने को कहती है पर रावण उसके भावों को स्त्रियोचित सहज अवगुण बता कर इसे भी ब्याज रूप से अपनी प्रभुता का वर्णन ही मानता है। मन्दोदरी हृदय में विचार करती है कि उसके प्रियतम रावण अब काल के वशीभूत हो गए हैं।

श्री राम ने अगले दिन प्रातः उठ कर मंत्रियों से आगामी कर्तव्य के संबंध में सलाह ली। जाम्बवंत ने अंगद को रावण के पास दूत के रूप में भेजने की सम्मति दी। सभी ने इस सुझाव की पुष्टि की। अंगद लंका को चल पड़े। मार्ग में रावण के पुत्र से भेंट हो गई जिसने अंगद को मारने हेतु पैर उठाया। अंगद ने पैर पकड़ कर उसे पटक कर मार डाला। अंगद को लोग लंका जलाने वाला मानकर स्वतः ही मार्ग देते जा रहे हैं। अन्ततः अंगद रावण के दरबार में पहुँच जाते हैं और उससे अपने पिता की मित्रता की चर्चा करते हैं। अंगद और रावण में नोक-झोंक होती है। रावण द्वारा अपनी वीरता का बारंबार वर्णन करने पर क्रुद्ध अंगद ने अपनी दोनों भुजाएँ पृथ्वी पर दे मारीं। परिणाम स्वरूप रावण के सभासद अपने आसनों से गिर गए और उठ कर भागने लगे। रावण के मुकुट स्खलित हो गए। कुछ को तो रावण ने उठाकर अपने शिर पर धारण कर लिया और कुछ को अंगद ने उठा कर श्री राम की ओर फेंक दिया, जिनको हनुमान जी ने पकड़ कर श्री राम के पास रख दिए। रावण ने क्रुद्ध होकर अंगद को पकड़ कर मारने को कहा। अंगद ने रावण की निन्दा की। वे अपना पैर पृथ्वी पर जमा देते हैं और रावण से कहते हैं कि यदि तू मेरा पैर हटा दे तो मैं सीता को हार कर चला जाऊँगा तथा राम वापस लौट जायेंगे। रावण अपने वीरों का आह्वान करता है पर उनमें से कोई भी अंगद का पैर टस से मस भी नहीं कर पाता। अन्ततः अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उनका पैर पकड़ कर हटाने के लिए उठा तब अंगद ने कहा कि मेरा पैर पकड़ने से तेरा कल्याण नहीं होगा तू जाकर श्री राम के चरण पकड़। अंगद, सभी को धमका कर वापस लौट आए। रावण उदास मन से संध्या समय घर गया। मन्दोदरी ने रावण को पुनः उसकी असफलताओं का स्मरण कराते हुए समझाया, पर रावण प्रातः होते ही भय को भुलाकर अभिमान पूर्वक सभा में जा बैठा।

श्रीराम ने अंगद से सारा समाचार जान कर मंत्रियों से मंत्रणा की और लंका के चारों द्वारों को घेर कर युद्ध करने की योजना बनाई। दोनों सेनाएँ राम एवं रावण की दुहाई देकर युद्ध में तत्पर होती हैं। गोस्वामी जी ने युद्ध का पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया है। अन्य राम-कथाकारों ने युद्धारंभ के साथ ही यह दिखाया है कि रावण ने विद्युज्जिह्वा से श्रीराम का मायामय शिर तथा धनुष बनवाया जिन्हें सीता को दिखाया गया। सीता उस शिर के साथ सती होने की बात सोच ही रही थीं कि प्रहस्त तुरन्त मंत्रणा के लिए रावण को बुलाने आता है। रावण के लौटते ही शिर तथा धनुष गायब हो जाते हैं। विभीषण-पत्नी सरमा, सीता जी को बताती है कि श्रीराम स्वस्थ हैं। उन्होंने जो कुछ देखा, वह सब माया का प्रभाव था।

रावण की सेना निरन्तर घटती जा रही है। मंत्रणा के अवसर पर रावण के नाना माल्यवन्त सीता को लौटा देने की सलाह देते हैं। रावण उनको बुरा भला कहता है। रावण का वीर बेटा मेघनाद अगले दिन अपना शौर्य दिखाने की बात करता है। अगले दिन लक्ष्मण तथा मेघमाद में घोर संग्राम होता है। मेघनाद ने अपने प्राणों को संकट में जान, वीर घातिनी शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया जिससे वे मूर्च्छित हो गए। मेघनाद जैसे अगणित योद्धा लक्ष्मण को उठाने का प्रयास करते हैं पर उठा नहीं पाते। हनुमान जी उन्हें उठा कर श्रीराम के पास ले जाते हैं। श्रीराम सामान्य व्यक्ति की भाँति लक्ष्मण के लिए विलाप करते हैं। हनुमान जी सुषेण वैद्य को ले आते हैं और पुनः उनके निर्देश पर संजीवनी लेने जाते हैं। मार्ग में विलंब करने के लिए रावण की प्रेरणा से कालनेमि मुनि बनकर बैठ जाता है। हनुमान जी उससे कमण्डलु ले पानी पीने के लिए तालाब में प्रवेश करते हैं तो एक मगरी उनका पैर पकड़ लेती है जिसे हनुमान जी ने मार डाला। मुक्त हो कर वह यान पर चढ़कर स्वर्ग की ओर चली और उसने कहा कि वह मुनि कपटी राक्षस कालनेमि है। हनुमान जी ने कालनेमि को लाँगूल में लपेट, पटक कर मार डाला। मरते समय उसने अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया।

औषधि न पहचान पाने के कारण हनुमान जी पर्वत ही उखाड़

कर ले चले। जब अयोध्या के ऊपर आए तो भरत ने राक्षस का अनुमान कर, बाण चला, उन्हें गिरा दिया। हनुमान जी राम राम कहते हुए मूर्च्छित हो गए। अपनी भूल जानकर भरत को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने कहा कि यदि मन, वचन तथा कर्म से मेरे मन में श्रीराम के चरणों में प्रेम हो तो कपि तुरन्त ही पीड़ा-मुक्त हो जायँ। भरत के यह कहते ही हनुमान जी कोशलाधीश की जय करते उठ बैठें। भरत ने उनको हृदय से लगा लिया और श्रीराम का सारा वृतांत ज्ञात किया। भरत को अत्यधिक ग्लानि हुई कि वे श्रीराम के किसी काम नहीं आए। शीघ्रता के लिए उन्होंने हनुमान जी से कहा कि आप पर्वत सहित मेरे बाण पर बैठ जायँ मैं आपको तुरन्त लंका भेजता हूँ। पहले तो हनुमान जी के मन में ऐसा भाव आया कि मेरे भार से भला बाण कैसे चलेगा? पर पुनः श्रीराम के प्रताप का अनुमान कर कहा कि मैं तुरन्त ही पहुँचूगा। इधर श्रीराम अत्यधिक व्यग्र हो विलाप कर रहे हैं। उसी समय हनुमान जी पहुँच जाते हैं। सुषेण तुरन्त ही उपाय करते हैं और लक्ष्मण उठ बैठते हैं। हनुमान जी सुषेण को उनके घर पहुँचा देते हैं।

रावण को जब लक्ष्मण के जीवित होने का समाचार ज्ञात होता है तो वह बहुत ही दुखी होता है तथा कुंभकरण को प्रयास पूर्वक जगाता है। कुंभकरण जगने पर पहले तो रावण की भर्त्सना करता है सीताहरण के लिए और कहता है कि मुझे पहले क्यों नहीं जगाया? पर जब रावण उसे मांस-मदिरा का सेवन कराता है तब वह मदमत्त हो युद्ध भूमि में आ जाता है। सर्व प्रथम विभीषण उसके सम्मुख आते हैं और प्रणत हो अपना नाम बताते हैं। कुंभकरण, विभीषण की प्रशंसा कर उन्हें साधुवाद देता है। विभीषण श्रीराम को कुंभकरण के युद्ध भूमि में आने की बात बताते हैं। यह सुनते ही कपिगण अगणित पर्वतों से उस पर प्रहार करते हैं पर उस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। तब हनुमान जी उसे एक मुक्का मार कर गिरा देते हैं। वह भी उठ कर हनुमान जी को एक मुक्का मार कर मूर्च्छित कर देता है। नल, नील तथा अंगदादि प्रमुख योद्धाओं को मूर्च्छित कर सुग्रीव को काँख में दबा कर चल पड़ता है। यह सब वर्णित कर गोस्वामी जी ने कुंभकरण के शौर्य तथा उसकी दुर्धर्षता का परिचय दिया है। श्री

राम यह सब जान कर स्वयं कुंभकरण के सम्मुख आ जाते हैं। विकट युद्ध में श्रीराम कुंभकरण की भुजाओं तथा सिर को काट कर उसे मुक्त कर देते हैं।

कुंभकरण की मृत्यु से दुखी पिता को, मेघनाद अगले दिन अपने इष्ट देव से प्राप्त रथ तथा बल द्वारा पुरुषार्थ दिखाने की बात से ढाढस बाँधाता है। अगले दिन वह मायाबी युद्ध में जाकर सभी को ललकारता तथा बाण प्रहार करता है। इसके बाद सभी को नाग-पाश में बाँध कर अचेत कर देता है। जाम्बवन्त उसे ललकारते हैं जिन पर वह त्रिशूल चला देता है। उस त्रिशूल को ही हस्तगतकर जाम्बवन्त मेघनाद की छाती पर प्रहार करते हैं। वह मूर्च्छित हो हो जाता है, पर वर के प्रभाव के से मरता नहीं, तब उसे पैर पकड़ कर घुमाते तथा लंका पर डाल देते हैं। नारद जी द्वारा भेजे गए गरुड़ सभी नागों का भक्षण कर राम तथा अन्य वीरों को नागपाश-मुक्त कर देते हैं।

उधर मूर्च्छा से जाग कर मेघनाद अजेय यज्ञ प्रारंभ कर देता है। विभीषण श्री राम को इसकी जानकारी देते हैं। उनके निर्देश पर लक्ष्मण, सहायकों के साथ जाकर यज्ञ विध्वंस कर देते हैं और मेघनाद को युद्ध के लिए बाध्य करते हैं। मेघनाद युद्ध में लक्ष्मण के द्वारा मारा जाता है। अनायास ही हनुमान जी उसे उठा कर लंका में रख आते हैं। पुत्र के निधन की बात सुन रावण मूर्च्छित हो जाता है तथा मन्दोदरी भी भारी विलाप करती है। अन्ततः रावण शरीर की नश्वरता की बात कर सभी को सान्त्वना देता है :—

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन आपुन मंद कथा सुभ पावन ।।
पर उपदेश कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे।

लंका २-७८

गोस्वामी जी ने अपनी राम-कथा में लंका काण्ड में प्रमुख रूप से युद्ध का ही वर्णन किया है। विभिन्न युद्धों में भी कुंभकरण, मेघ-नाद तथा रावण के युद्ध विशिष्ट हैं। रामचरित मानस में यह नहीं दिखाया गया है कि मेघनाद माया निर्मित सीता को युद्ध भूमि में लाकर तलवार से उनके दो टुकड़े कर देता है। इससे श्री राम तथा उनके साथी अति व्याकुल होते हैं। विभीषण इस रहस्य का भेद

बताते हैं। अन्य राम कथाकारों ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने इसे उधर अयोध्या में पति की विजय के लिए साधनारता उर्मिला तथा इधर कठोर साधना में निमग्ना मेघनाद-प्रिया प्रमिला की साधनाओं का संघर्ष बताया है, जिसमें अन्ततः उर्मिला की विजय होती है। लक्ष्मण अपने बारह वर्षों के निराहार व्रत से ही नहीं अपितु उर्मिला की अटूट साधना के समन्वित बल से ही मेघनाद का बध कर पाते हैं।

पुत्र शोक से विह्वल दशग्रीव सीता की हत्या के लिए उद्यत हो अशोक बाटिका में पहुँचता है पर मंत्री सुपार्श्व के समझाने पर इस कुचेष्ठा से विरत होता। इतने ही में उसे समाचार मिलता है कि उसकी पुत्रवधू उसका दर्शन करना चाहती है। पूर्ण रूपेण सुसज्जित प्रमिला ने भूमि पर शिर रख कर प्रणाम किया और कहा कि वह पति के शिर के लिए आई है। रावण शोकातुर हो कहता है कि मैंने राम के आचार्य का पदभार वहन किया था। यदि मैं शस्त्रहीन हो कर जाऊँ और पुत्र के शिर की याचना करूँ तो संभवतः वे मेरी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेगें। प्रमिला सहसा तेजोद्दीप्त हो जाती है और कहती है कि नहीं आप नहीं जायेंगे। मैं स्वयं अपने पति का शिर माँग लाऊंगी। यहाँ श्री चक्र ने रावण को एक विचारवान व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है वह कहता है कि मैंने श्री राम की पत्नी का अपहरण किया है पर वे धर्मज्ञ हैं तथा सती का सम्मान करना जानते हैं। वहाँ तुम्हारे श्वसुर विभीषण भी तो हैं वे भी तुम्हारी सहायता करेंगे और श्री राम भी तुम्हारे लिए श्वसुर के ही समान हैं।

प्रमिला सशस्त्रा सहायिकाओं के साथ श्री राम के सैन्य-शिविर में प्रवेश करती है। विभिषण, श्री राम को उसके मन्तव्य से अवगत कराते हैं। श्री राम उठकर अंजलि बाँध, उस सती को प्रणाम करते हैं और कहते हैं कि यदि तुम चाहो तो तुम्हारे स्वामी को सजीव कर दिया जाय। प्रमिला इस प्रस्ताव को इस आधार पर स्वीकार नहीं करती कि उसके पति ने वीर गति प्राप्त कर ली है। अब उन्हें वापस लौटना उचित नहीं है। राम की आज्ञा से उसने अपने पति-शिर को प्रणाम कर हृदय से लगा लिया और लौट पड़ी। श्री राम के निर्देशा-

नुसार विभीषण लंका-द्वार तक प्रमिला के पीछे गए। रावण द्वारा तैयार कराई गई चिता पर चढ़ प्रमिला अपने पति के शव के साथ सती हो जाती है। श्री चक्र जी ने समग्र वर्णन बहुत ही मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। गोस्वामी जी ने अपने राम चरित मानस में इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया है क्यों कि उनकी रामकथा-धारा के प्रवाह से इसकी संगति नहीं बैठती है।

मेघनाद-बध के बाद रावण अपने योद्धाओं को एकत्र और प्रोत्साहित कर युद्ध भूमि में आ जाता है। रावण को रथी तथा श्रीराम को विरथ देख कर विभीषण के मन में चिंता तथा शंका होती है कि वे रावण पर विजय किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगे ? विभीषण की इस शंका का समाधान श्रीराम ने जिस प्रकार किया है वह बड़ा ही ज्ञान-पूर्ण तथा उद्बोधक है। उसका सार यह है कि भौतिक रथ का उतना महत्व नहीं जितना कि धर्म-रथ का। जिसने धर्म के मूल तत्व को समझ लिया हो उसको फिर किसी को जीतने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥
लंका ६-८० (क)

यह वर्णन गोस्वामी जी के उत्कट ज्ञान एवं चरम सीमा की धार्मिकता का परिचायक है।

रामचरित मानस के अतिरिक्त अन्य अनेक रामकथाओं में रावण के एक अन्य पुत्र अहिरावण के भी मारे जाने का विवरण है पर श्री गोस्वामी जी ने इसे अपने मानस में स्थान नहीं दिया है।

उधर से रावण तथा इधर से अंगद-हनुमान एक दूसरे को प्रचारित कर युद्ध में संलग्न हैं। देवगण अपने विमानों पर इस युद्ध को देख रहे हैं। दोनों ओर से पूरी शक्ति से प्रहार किया जा रहा है। क्रुद्ध रावण के प्रहार से बानरी सेना विचलित हो श्रीराम से रक्षा की गुहार करती है। अपने दल को विचलित देख श्री लक्ष्मण सम्मुख आ गए। घोर युद्ध में लक्ष्मण के बाणों से रावण मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छा से जागने पर वह ब्रह्मा से प्राप्त शक्ति का लक्ष्मण पर प्रहार करता है। परिणाम स्वरूप श्री लक्ष्मण विकल हो कर पृथ्वी पर गिर जाते हैं। रावण उन्हें उठाने का प्रयास करता है पर सफल नहीं होता।

हनुमान जी दौड़ कर आए जिन पर रावण ने मुष्टि प्रहार किया। वे घुटने टेक कर रह गए तथा रावण पर मुष्टि प्रहार किया जिससे वह पर्वत की भाँति गिर पड़ा। मूर्च्छा से जागकर उसने हनुमान जी के बल की प्रशंसा की पर हनुमान जी ने अपने को धिक्कारा कि रावण जीवित रह गया। हनुमान जी लक्ष्मण जी को श्रीराम के पास ले गए। श्रीराम ने लक्ष्मण जी को उनके स्वरूप का स्मरण कराया, शक्ति आकाश को चली गई तथा श्री लक्ष्मण उठ बैठे। वे पुनः धनुष बाण ले रावण के समीप आ गए। रावण को बाण मार कर मूर्च्छित कर दिया। सारथी उसे रथ में लंका ले गया। मुर्च्छामुक्त हो, रावण यज्ञ प्रारंभ करता है। विभीषण से जानकारी प्राप्त होने पर श्रीराम बानर योद्धाओं को भेज कर, उसे यज्ञ को बीच में ही छोड़ युद्ध भूमि में आने को बाध्य कर देते हैं। चलते समय अपशकुन होते हैं। देवगण श्री राम से रावण को अविलंब मार देने की प्रार्थना करते हैं। श्री राम भी तैयार होकर युद्ध भूमि में आ जाते हैं। इन्द्र अपना रथ श्री राम के लिए भेजते हैं। भयंकर युद्ध होता है। रावण माया का विस्तार करता है और अनेक राम-लक्ष्मण दिखाई देते हैं। श्री राम तुरन्त ही माया का नाश कर देते हैं। वे वीरों से कहते है कि तुम लोग बहुत थक गए हो अब लड़ना बन्द कर द्वन्द्व युद्ध देखो। श्री राम तथा रावण युद्ध भूमि में आमने सामने हैं। दोनों में घोर युद्ध होता है। रावण ने श्री राम के सारथी को सौ बाण मार कर गिरा दिया। श्री राम ने उसे उठाया और क्रुद्ध हो कर बाण चला कर रावण के रथ सारथी घोड़ों, सभी को नष्ट कर दिया। रावण तुरन्त ही दूसरे रथ पर चढ़ कर आ गया।

श्री राम, रावण का शिर काट देते है पर पुनः उसके नए शिर हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों वे रावण के शिर काटते जा रहे हैं त्यों-त्यों उसके शिर उत्पन्न होते जा रहे हैं। कुपित हो बाणों की झड़ी लगा रावण ने राम के रथ को ढँक दिया जिससे देवगण हाहाकार करने लगे। तब क्रुद्ध हो श्री राम ने हाथ में धनुष ले, शत्रु के बाणों को हटाकर उसके शिर को काट, दिशाओं, पृथ्वी तथा आकाश सभी को शिरों से पाट दिया।

रावण ने विभीषण पर शक्ति का प्रहार किया। श्री राम ने

विभीषण को अपने पीछे कर लिया। विभीषण रावण से भिड़ गए। उन्हें थका हुआ देख श्री हनुमान जी आ गए। उन्होंने रथ घोड़ों तथा सारथी का संहार कर रावण के हृदय में लातमारी। रावण ने माया से अपनी तरह के अनेक रावण बना लिए। बानर भालुओं ने भय-भीत हो रक्षा के लिए राम को पुकारा। राम ने माया का हरण कर लिया अब रावण एक ही रह गया। राम ने रावण के शिर काट दिए पर वे पूर्ववत् हो गए। घोर युद्ध कर रावण ने पुनः सभी योद्धाओं को मूर्छित कर दिया तब क्रुद्ध हो कर जाम्बवन्त ने रावण के हृदय में लात मार कर उसे मूर्च्छित कर दिया। उसका सारथी उसे लंका ले गया।

सीता जी को जब इस बात का पता चलता है कि शिर काटने पर पर भी रावण नहीं मरता तो वे बहुत अधिक चिन्तित होती हैं। इधर त्रिजटा सीता को तथा उधर विभीषण श्री राम को बताते हैं कि रावण के हृदय में जानकी तथा उनके हृदय में श्री राम का निवास है और राम के हृदय में अनेक भुवनों का निवास है। रावण के हृदय में बाण लगते ही सब का नाश हो जायगा। शिर काटते ही विकल होने से जब सीता का ध्यान छूट जायगा तभी रावण मारा जा सकेगा। श्री राम इसी विधि से रावण का अन्त कर देते हैं। श्री गोस्वामी जी ने राम तथा रावण के युद्ध का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

श्री चक्र जी ने रावणोपदेश नामक एक स्वतंत्र विषय को अपने श्री राम चरित में स्थान दिया है। राम के आदेश से लक्ष्मण महा-प्राण रावण से नीति-शास्त्र का उपदेश लेने जाते हैं पर रावण बोलता ही नहीं। लक्ष्मण लौट आए तो श्री राम ने उन्हें मर्यादा का ध्यान दिलाकर पुनः भेजा। लक्ष्मण ने पैरों के समीप खड़े होकर प्रणाम किया तथा दशग्रीव के नेत्र खोल देने पर करबद्ध हो अपने आने का मन्तव्य बताया। रावण ने बताना प्रारंभ किया कि एकमात्र आतंक से काम नहीं चलता। सेवक एवं स्वजनों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने से ही, वे प्रत्येक परिस्थितियों में साथ देने को कटिबद्ध रहते हैं। यदि कोई सेवाशील विनम्र विरोध करे तो उसकी बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विभीषण का उदाहरण देकर उन्होंने अपनी

बात को और स्पष्ट किया, "मैं जानता था कि यदि विभीषण निर्वासित न किया गया तो लंका का उद्धार न होगा।" रावण आगे कहता गया कि शत्रु को सामान्य मानकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए पर अपने को सचिन्त दिखाकर अनुयायियों को भयभीत भी नहीं होने देना चाहिए। रावण ने अपने मन्तव्य को और स्पष्ट करते हुए कहा कि मेरे स्वजन तथा अनुचर कहाँ गए यह तुम्हें ज्ञात है। मैं अब भी जीवित हूँ। मेरे जीते जी तुम लंका में प्रविष्ट नहीं हो सके। अब बताओ विजय किसकी हुई। लक्ष्मण का मस्तक सच्ची श्रद्धा से रावण के प्रति झुक गया।

रावण फिर बोला कि जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों को तुरन्त, पूर्ण कर डालो सामान्य कार्यों को छोड़कर भी। यदि उसे कल पर टालते रहोगे तो वह कभी पूर्ण नहीं होगा। लक्ष्मण की जिज्ञासा पर बताया कि मैं स्वर्ग तक सीढ़ी लगा देना चाहता था और चाहता था कि बार्द्धक्य तथा रोग संसार में न रहें। इसी समय श्रीराम दिए वचन के अनुसार अपने आचार्य को दक्षिणा देने के अभिप्राय से उसके दाहिने आकर खड़े हो गए। तुम आ गए राम कहते ही उसके शरीर से एक अद्भुत ज्योति निकली और श्रीराम की प्रदक्षिणा कर उन्हीं में लीन हो गई।

रामशर ने रावण का भाल काट कर मंदोदरी के समक्ष रख दिया था। मंदोदरी रावण के बल, शौर्य तथा वैभव का स्मरण कर घोर विलाप करते समय जो कुछ कहती है वह कुछ अस्वाभाविक सा लगता है :—

अब तब सिर भुज जंबुक खाहीं। राम विमुख यह अनुचित नाहीं॥
लंका ६-१०४

पर तनिक ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि इस कथन में अस्वाभाविकता नहीं है क्यों कि मंदोदरी निरन्तर अपने पति को यह बात समझाती रही है कि वह सीता को वापस लौटा श्रीराम से मित्रता कर उसके अहिवात की रक्षा करें। वह जानती थी कि श्रीराम साधारण मनुष्य नहीं अपितु वे त्रिभुवन-स्वामी हैं :—

काल विवस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज कर जाना॥
लंका ७-१०४

दुखी विभीषण को श्रीराम, रावण की अन्त्येष्टि करने को कहते हैं। देशकाल के अनुसार विभीषण ने रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया विधिवत की। मंदोदरी आदि रानियाँ रावण को तिलांजलि देकर लंका वापस चली जाती हैं। विभीषण पुनः आकर श्रीराम के चरणों में शीश झुकाते हैं। लक्ष्मण को बुलाकर श्रीराम उन्हें सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त तथा हनुमानादि के साथ लंका जाकर विभीषण का राज-तिलक करने का निर्देश देते हैं। विभीषण का राज्याभिषेक कर सभी लौट आते हैं।

श्रीराम बानरों को बुलाकर कहते हैं कि तुम लोगों के बल से शत्रु का नाश हुआ और विभीषण को राज्य मिला। सुनकर सभी प्रसन्न होते हैं। श्रीराम हनुमान जी को बुला, उन्हें लंका जाकर, सीता का समाचार लाने को कहते हैं। सीता अति शीघ्र श्रीराम के दर्शनों की इच्छा प्रकट करती हैं। हनुमान से सीता का कुशल समाचार पाकर श्रीराम ने विभीषण एवं अंगद को बुलाकर पवनपुत्र के साथ जाने तथा सीता की लिवा लाने को कहा। विभीषण ने अनेक वस्त्राभरण पहनवा कर पालकी पर सीता को बिठाया और श्रीराम के पास ले चले। सीता को देखने के लिए बानर आ गए जिन्हें रक्षकों ने हटा दिया। श्रीराम ने कहा कि सीता को पैदल ही ले आओ और हँस कर कहा कि बानरों! सीता को माता के भाव से देखो।

अग्नि में समाहित वास्तविक सीता को प्रकट करने हेतु श्रीराम ने उन्हें कटु शब्द कहे जिससे सभी दुखी हुए। सीता, अग्नि-परीक्षा के लिए प्रस्तुत हुईं तथा उन्होंने लक्ष्मण दारा प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर लिया। अग्नि ने शरीर धारण कर वास्तविक सीता, श्री राम को समर्पित कर दी।

देवता, ऋषि, मुनि तथा लोकपाल सभी ने श्रीराम की स्तुति की। श्रीराम के पिता दशरथ भी आए जिन्हें श्रीराम ने दृढ़ ज्ञान प्रदान किया क्योंकि पूर्व में भक्ति-भाव के कारण उन्होंने मोक्ष नहीं लिया था। इन्द्र की जिज्ञासा पर, श्रीराम ने अपने सहायकों को जिन्होंने उनके लिए समर-भूमि में प्राण त्याग दिए थे, को पुनः जीवित करने का निर्देश दिया। दोनों दलों के ऊपर अमृत-वर्षा हुई,

भालु तथा कवि तो जीवित हो गए पर राक्षस नहीं क्योंकि रामाकार हो जाने के कारण वे मुक्त हो गए थे। कवि एवं भालु सभी देवताओं के अंश थे। वे श्रीराम की इच्छानुसार जीवित हो गए :—

सुधा बरषि कवि भालु जिआए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥
सुधा वृष्टि भइ दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर॥
लंका ३-११४ (क)

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की ईछा॥
लंका ४-११४ (क)

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हें मुकुत निसाचर झारी॥
खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिवर पाव न॥
लंका ५-११४ (क)

भगवान शंकर के स्तुति कर चले जाने पर, विभीषण श्रीराम के पास आते हैं तथा लंका चलकर उसे पवित्र करने की उनसे प्रार्थना करते हैं। विभीषण की सारी संपत्ति तथा वैभव को अपना मानते हुए भी श्रीराम भरत की चिन्ता बताकर तुरन्त उनके पास पहुँचाने का यत्न करने को कहते हैं। विभीषण पुनः लंका जाकर वस्त्राभूषण तथा मणियाँ लाते हैं। श्रीराम के सुझाव के अनुसार विभीषण इन सबको आकाश से गिरा देते हैं। जिस जिसको जो अच्छा लगता है वह वही ले लेता है। कपिगण मणियों को मुख में डालकर फेंक देते हैं। सब अपने-अपने वस्त्राभूषण पहनकर श्रीराम के पास आते हैं। श्रीराम सभी पर दृष्टि डालकर उन पर दया करते हैं तथा कहते हैं कि तुम्हारे बल से हमने रावण को मारा, अब तुम लोग अपने घरों को जाकर मुझे स्मरण करते रहना, डरना नहीं। बानरों का अत्यधिक प्रेम देख, श्रीराम ने उन्हें पुष्पक विमान पर चढ़ा लिया। मार्ग में, श्रीराम, सीता को घटना विशेष के स्थान दिखाते हैं और बताते हैं कहाँ कौन-कौन बीर किसके द्वारा मारे गये तथा कहाँ कौन सी विशेष घटना घटी। सेतु-बंधन तथा शिवलिंग-स्थापना दिखाते हुए दण्डकवन के सभी प्रमुख स्थानों को जहाँ श्रीराम ने सीता हरण के बाद 'विश्राम' किया था दिखाया।

अयोध्या के निकट पहुँच कर श्रीराम ने हनुमान जी को अयोध्या जाकर भरत का समाचार लाने को कहा। श्रीराम भरद्वाज के आश्रम गए। विमान पर पुनः चढ़कर श्रीराम निषाद राज के पास पहुँचे। विमान से पार उतरने पर सीता ने गंगा जी की पूजा की निषाद ने सीता सहित राम को देखकर प्रणाम किया। श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया :—

प्रभुहि सहित विलोकि वैदेही। परेऊ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम विलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥
लंका ६-१२१ (क)

जिस समय भरत जी श्रीराम के विरह-सागर में डूब उतरा रहे थे उसी समय पोतस्वरूप हनुमान जी उनके सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं। निरन्तर राम राम रटने वाले भरत को देख कर हनुमान जी अत्यंत प्रसन्न होते हैं और सीता तथा लक्ष्मण सहित सकुशल श्रीराम के आगमन की सूचना देते हैं। भरत अति प्रसन्न हो, उठ कर हनुमान जी को भेंटते हैं और कहते हैं कि मैं आप को क्या दूँ ? इस शुभ संदेश के समान मेरे लिए विश्व में कुछ भी नहीं है। भरत की जिज्ञासा पर हनुमान जी भरत के प्रति श्रीराम के स्नेह का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् हनुमान जी श्रीराम के पास जाकर सारा समाचार बताते हैं। इधर प्रसन्न वदन भरत अयोध्या आकर सभी को समाचार देते हैं। माताएँ, नगर निवासी तथा महिलाएँ सभी उठकर दौड़ पड़ते हैं आरती तथा मंगलकलश सजाकर। स्त्रियाँ श्री रामादि की आगमन-शोभा देखने के लिए अटारियों पर चढ़ गई हैं। इधर श्रीराम अपने साथियों को नगर-दर्शन कराते और उसका महत्व बताते हुए आ रहे हैं। श्रीराम कहते हैं कि अयोध्या मुझे बैकुंठ से भी अधिक प्रिय है। अयोध्या पहुंच विमान से उतर कर श्रीराम ने पुष्पक से कहा कि तुम कुवेर के पास चले जाओ। पुष्पक को अपने स्वामी कुवेर से मिलने की संभावना से हर्ष तथा श्रीराम का साथ छूटने का शोक था।

उतर कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु॥ उत्तर ४ (ख)

श्रीराम और लक्ष्मण ने सर्व प्रथम गुरु वशिष्ठ के चरणों को दौड़ कर पकड़ लिया। गुरु ने हृदय से लगा लिया तथा कुशल पूँछी। इसके

बाद श्रीराम ने सभी ब्राह्मणों से भेंट कर उन्हें प्रणति दी। फिर भरत ने श्रीराम के चरणों को पकड़ लिया। भरत पृथ्वी पर पड़े हुए हैं उठाने पर भी नहीं उठते। श्रीराम ने उन्हें बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया। श्रीराम भरत से कुशल क्षेम पूँछते हैं, पर हर्षातिरेक से भरत के मुँह से शब्द ही नहीं निकलते। श्रीराम शत्रुघ्न से मिले। भरत तथा शत्रुघ्न ने सीता के चरणों में शीश झुका कर परम सुख की प्राप्ति की।

श्रीराम को देख कर नगर निवासी प्रसन्न हुए जिनसे श्रीराम ने अनेक रूप धारण कर भेंट की और सभी को शोकहीन कर दिया। कौशल्यादि माताएँ दौड़ कर आ गईं। श्रीराम माताओं से मिले। कैकेयी को, मिलते हुए संकोच हुआ। सुमित्रा, लक्ष्मण को रामपदानुरागी जानकर मिलीं। लक्ष्मण जी ने भी सभी माताओं से मिलकर आशीर्वाद प्राप्त किया। वे कैकेयी से बारंबार मिलते हैं पर उनके मन का क्षोभ नहीं जा रहा है संभवतः इसलिए कि उन्होंने क्रोधावेश में कुछ कटुबचन कह दिए थे। सीता जी सभी सासुओं से मिलीं और आशीर्वाद प्राप्त किया।

श्रीराम ने अपने सभी साथियों को बुलाकर गुरु के चरणों में प्रणाम करने को कहा और बताया कि इनकी ही कृपा से राक्षसों को मारना संभव हुआ। गुरु वशिष्ठ से अपने साथियों के संबंध में कहा कि समुद्र में पोत की तरह ये सब मेरे सहायक हुए। पुनः इन लोगों ने कौशल्या के चरणों में शीश झुकाए, जिन्होंने हर्ष पूर्वक आशीर्वाद दिया तथा कहा कि तुम सब मुझे राम की ही भाँति प्रिय हो। सारा नगर सुसज्जित है। स्थान-स्थान पर स्त्रियाँ निछावर तथा आरती कर रही हैं।

श्रीराम कैकेयी के संकोच को जानकर सर्वप्रथम उनके घर जाते हैं, तब अपने घर। अच्छा समय देख कर गुरु वशिष्ठ श्रीराम का राज्याभिषेक करा देते हैं। पहला तिलक गुरु वशिष्ठ करते हैं फिर अन्य विप्रवृन्द। पुत्र श्रीराम को सिंहासनासीन देख कर माताएँ अति प्रसन्न होती हैं तथा बारंबार उनकी आरती उतारती हैं। गोस्वामी जी ने इस अवसर पर यह दिखाया है कि सीता सहित सिंहासनारूढ़ राम की शोभा का वर्णन संभव नहीं है। इसके आनन्द की अनुभूति तो भगवान शंकर ही कर सकते हैं। देवता गण अलग-अलग स्तुतिकर

अपने-अपने लोकों को चले गए तब वेद, भाँटों का रूप धारण कर श्रीराम की स्तुति करने आए। तत्पश्चात् भगवान शंकर ने आकर हर्ष विह्वल-भाव से श्रीराम की स्तुति की।

श्री शंकर के स्तुति कर चले जाने पर श्रीराम ने अपने साथियों को निवास स्थान दिए। वे सब इतने प्रसन्न हैं कि छः मास का व्यतीत हो जाना भी उन्हें जान नहीं पड़ा। उन सभी को बुलाकर श्रीराम ने कहा कि आप लोगों ने मेरे लिए गृहत्याग कर मेरी बड़ी सेवा की। सुख, संपत्ति, भाई, पत्नी तथा राज्य भी मुझे उतने प्रिय नहीं जितने कि आप लोग। सब लोग सेवक पर प्रेम रखते हैं, पर मैं उस पर अधिक प्रेम रखता हूँ, जो पूर्णतया मुझे ही समर्पित है। अब आप सब अपने-अपने घरों को जायँ नित्य दृढ़ नियम से मेरा स्मरण करते रहें। श्रीराम ने इनके प्रेम को देखकर इन्हें ज्ञान प्रदान किया। फिर श्रीराम ने वस्त्राभरण मँगवाए। भरत ने सुग्रीव को पहनाया फिर लक्ष्मण ने विभीषण को। नील आदि को स्वयं श्रीराम ने। अंगद चुप बैठे रहे और बाद में हाथ जोड़ कर कहा कि पिता जी मुझे आप ही को सौंप गए थे, आप को छोड़ कर घर पर मेरा क्या काम है? मैं आप की सेवा करूँगा मुझे अब घर जाने को न कहें। श्रीराम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया तथा अपनी माला और वस्त्र पहना दिया और अनेक विधि समझा कर विदा किया। भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न, बानरों को पहुँचाने गए। पहुँचा कर लौटे तब हनुमान जी ने सुग्रीव से विनय की कि मैं दस दिन श्रीराम की सेवा कर तब आप के पास आऊँगा। सुग्रीव ने कहा कि हनुमान तुम पुण्यात्मा हो, तुम श्रीराम की सेवा करो। अंगद ने हनुमान से कहा कि मेरा स्मरण कराकर श्रीराम से मेरी दण्डवत् कहना। श्री हनुमान ने लौट कर श्रीराम से कहा तो वे प्रेम-मग्न हो गए। अंत में श्रीराम ने निषाद को विदा करते हुए कहा कि आप नगर में आते जाते रहिएगा।

इसके बाद तुलसीदास ने राम राज्य का वर्णन किया है। धर्म-निरपेक्ष राज्य में भी यह राम राज्य आज भी आदर्श माना जाता है और प्रजातांत्रिक प्रणाली के माध्यम से इस स्थिति की प्राप्ति का ही प्रयास किया जाता है। स्वतः स्पष्ट है कि राम-राज्य की व्यवस्था का औचित्य कितनी शाश्वतता लिए है कि आज भी वह उतना ही उपादेय है जितना कि तत्समय था और संभवतः आने वाले कल को

भी वह उतना ही उपयोगी रहेगा जितना कि श्री राम के समय में था। राम राज्य में कुछ भी अनपेक्षित नहीं था। चरम सीमा यह थी कि सारी सुविधाएँ यथेष्ठ रूप में उपलब्ध थीं :—

विधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज॥ उत्तर २३

रामराज्य तो आदर्श है ही उसमें भी श्री राम तथा सीता का चरित्र परमादर्श है। सीता जी सेवक एवं सेविकाओं के होते हुए भी सारा कार्य स्वयं श्री राम के प्रीत्यर्थ ही करती हैं। वे निराभिमानिनी हो अपनी सासुओं की भी सेवा करती हैं :—

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥
निजकर गृह परिचरजा करई। राम चन्द्र आयसु अनुसरई॥
उत्तर ३-२४

जेहि बिधि कृपा सिन्धु सुखमानइ। सो कर श्री सेवा बिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृहमाहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥
उत्तर ४-२४

श्री राम भी भाइयों पर प्रेम रखते हैं। वे सब भी आदेश की प्रतीक्षा करते रहते हैं। सभी के घरों में पुराण तथा श्री राम के पवित्र चरित्र का वर्णन होता है। सभी स्त्री-पुरुष राम का गुणगान करते हैं।

सीता के दो पुत्र लव तथा कुश उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार शेष तीनों भाइयों के भी दो दो पुत्र उत्पन्न होते हैं :—

दुइ सुत सुन्दर सीताँ जाए। लवकुस बेद पुरानन्ह गाए॥
उत्तर ३-२५

दोउ बिजई विनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहु अति सुन्दर।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुनसील घनेरे॥
उत्तर ४-२५

अन्य राम कथाकारों ने लवकुश का जन्म सीता जी की बनवासावस्था में बाल्मीकि आश्रम में दिखाया है। एक धोबी के सीता के संबंध में कुछ लांछनयुक्त बात कहने पर श्री राम सीता-त्याग का निर्णय लेते हैं। लक्ष्मण जी उन्हें गर्भवती होने की दशा में बाल्मीकि आश्रम में छोड़ आते हैं। बाल्मीकि जी उनकी सार-सँभाल करते हैं।

वहीं आश्रम में ही लवकुश का जन्म होता है। ये सब किशोर होते हैं तब श्री राम के अश्वमेघ-यज्ञ का घोड़ा बाँध लेते हैं तथा एक एक करके अयोध्या के सभी वीरों को पराजित कर उनका मानमर्दन कर देते हैं। अन्त में श्री राम स्वतः युद्ध के लिए पहुँचते हैं। श्री राम रथ में सो गए। अंगद तथा हनुमान लवकुश के बाणों से विह्वल हो गए। अंततः लवकुश की विजय हुई। वे आंजनेय को बाँध कर अपने साथ कुटी पर ले गए। सीता जी हनुमान को देख कर स्तब्ध रह गईं। हनुमान ने प्रणाम किया। लवकुश ने अयोध्या की सेना के पराभव का सारा वृत्तांत कह सुनाया। महर्षि बाल्मीकि आए उन्होंने सीता से कहा कि अभी बालकों से परिचय का समय नहीं आया। महर्षि के अनुग्रह से यज्ञाश्व अयोध्या की सेना को वापस मिल गया तथा इन्द्र ने सभी को जिला दिया। अयोध्या की सेना लौट पड़ी सभी प्रसन्न थे पर हनुमान खिन्न थे कि आखिर लवकुश को अयोध्या क्यों नहीं ले चला जा रहा है ?

लवकुश अयोध्या पहुँच कर रामायण-गान के लिए बहुचर्चित हो जाते हैं। श्री राम के द्वारा पिता का नाम पूँछने पर वे अपनी माता सीता का नाम बताते हैं। सभा में सन्नाटा छा जाता है। सभी को ज्ञात हो जाता है कि वे अयोध्या ही के युवराज हैं। अगले दिन महर्षि बाल्मीकि सीता के साथ आए। भरी सभा में उन्होंने जानकी के सतीत्व के संबंध में शपथ ली पर जनता में से किसी ने भी उसकी पुष्टि नहीं की। राम ने सीता को आगे आकर शपथ लेने को कहा। सीता ने शपथ ली कि यदि मेरा मन राम के अतिरिक्त कभी किसी अन्य व्यक्ति में न लगा हो तो पृथ्वी मुझे स्थान दे। यह बात उन्होंने तीन बार दुहराई। भू-देवी ने दोनों हाथ उठा कर सीता को अंक में ले लिया और पृथ्वी पुनः पूर्ववत् हो गई मानो यह फटी ही न हो। श्री राम ने धनुष उठा लिया सीता को पृथ्वी से वापस लाने हेतु पर कुल-गुरु वशिष्ट की गर्जना ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। उन्होंने कहा कि अयोध्या के लोग सीता का नाम भी अपने मुँह पर लाने के योग्य नहीं हैं। उन्होंने कहा कि यदि महर्षि बाल्मीकि अनुमति दें तो तुम लोग सीता के पुत्रों के पालक हो सकते हो। महर्षि बाल्मीकि लवकुश को श्री राम को सौंप कर चले गए।

श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने अपने श्री रामचरित के चतुर्थ खण्ड में

राम की अयोध्या वापसी तथा राज्याभिषेक के बाद विस्तार से इन सभी विषयों का वर्णन किया। काल पुरुष पधारे, लक्ष्मण-त्याग, आंजनेय को उपदेश, कुश का पुनरागमन, नित्य अयोध्या तथा उपसंहार विषयों का भी उन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस को एक सफल महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। सामान्यतया महाकाव्य की यह मान्यता है कि उसमें नायक तथा नायिका का एक ही बार वियोग होता है। रावण द्वारा सीता के अपहरण के साथ ही सीता का श्री राम से वियोग होता है। यदि सीता का राम द्वारा पुनः परित्याग दिखाया जाय तो यह दूसरा वियोग होगा जो कि महाकाव्य के कथानककी मान्यता की दृष्टि से उचित नहीं है। रावण-बध तथा अयोध्या लौट कर श्री राम के राज्याभिषेक के साथ साथ राम-कथा लगभग पूर्ण हो जाती है। श्री रामचरित मानस के कुछ प्रकाशकों ने मानस में भी आठवाँ काण्ड "लवकुश" के नाम से जोड़ दिया है पर यह प्रक्षिप्त है। महाकाव्य की मान्यताओं तथा स्वयं रामचरित मानस के अन्तर्साक्ष्य से इसके प्रक्षिप्त होने में कोई संदेह नहीं रहता :—

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।
उत्तर २-१२९

एक बार श्री राम, सीता, बन्धुओं तथा पवनसुत सहित उपवन में गए। सनकादिक आए और उन्होंने श्री राम की अनेक प्रकार से स्तुति की। उनके ब्रह्मलोक चले जाने पर सभी अनुजों ने श्री राम के चरणों में शीश झुकाया। हनुमान जी ने श्री राम से कहा कि हे प्रभु! भरत जी कुछ पूछना चाहते हैं पर संकोचवश पूंछ नहीं पा रहे हैं। अनुमति पा, भरत जी कहते हैं कि हे नाथ! आपकी कृपा से मुझे न तो मोह है और न सन्देह है, मैं आप के श्री मुख से संतों और असन्तों के लक्षण सुनना चाहता हूँ। श्री राम संक्षेप, पर बहुत ही स्पष्ट रूप से संतों तथा असंतों के लक्षणों का निरूपण करते हैं :—

निन्दा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥ उत्तर ३८

× × ×

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद॥ उत्तर ३९

श्री राम संत और असंतों का लक्षण बता कर यह भी बताते हैं कि परोपकार के समान अन्य कोई धर्म नहीं है तथा पर पीड़ा के समान कोई अधर्म नहीं है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेऊँ तात जानहिं कोबिद नर॥
उत्तर १-४१

गोस्वामी जी ने अपनी मान्यता के अनुसार श्री राम के मुख से संतों असंतों का लक्षण तथा मनुष्य का कर्तव्य ही नहीं कहलवाया अपितु अन्त में यह भी कहलवाया है कि ए गुण-दोष सभी माया के सीमान्तर्गत ही हैं। उचित यही है कि इन दोनों में से किसी की भी सत्ता को स्वीकार न किया जाय क्यों कि इनकी स्वीकृति अविवेक का ही परिचायक है :—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥ उत्तर ४१

इसी प्रकार गोस्वामी जी ने श्री राम के मुख से नगर निवासियों को मनुष्य शरीर धारण करने का उद्देश्य तथा उसका फल बताया है। वे कहते हैं कि बड़े भाग्य से ही मनुष्य तन मिलता है। यह साधन का धाम तथा मोक्ष का द्वार है। इसका फल विषय नहीं। भगवान कभी बहुत करुणा करके मनुष्य शरीर प्रदान कर देते हैं अस्तु इसका उपयोग भवसागर पार कर लेने में ही करना चाहिए।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सदग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं पर लोक सँवारा॥
उत्तर ४-४३

सो परम दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥ उत्तर ४३
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउस्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥
उत्तर १-४४

× × ×

कबहुँक कर करुना नर देही देत ईस बिनु हेतु सनेही।
नर तनु भव बारिधि कहँ बेरो। सम्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

करनधार सद्गुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।।
उत्तर ४-४४

जो न तरै भवसागर नर समाज असपाइ।
सो कृत निन्दक मंद मति आत्माहन गति जाइ ।। उत्तर ४४

कुल गुरु मुनि वशिष्ठ भी श्री राम के समक्ष प्रस्तुत हो, ब्रह्मा के द्वारा कहने पर अपने पौरोहित्य कर्म स्वीकार करने का रहस्य बताते हैं। वे श्री राम के कमल चरणों में बने रहने वाले स्नेह की याचना कर लौट जाते हैं :—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ।। उत्तर ४६

श्रम-विगत होने के लिए श्रीराम भाइयों तथा पवन-पुत्र सहित आम्र-वाटिका में पहुँचते हैं। नारद मुनि हाथों में वीणा लेकर आते तथा श्रीराम की स्तुति कर लौट जाते हैं।

गोस्वामी जी ने काक भुशुण्डि की जीवन-गाथा तथा उनके एवं गरुड़ के बीच संवाद के माध्यम से भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का निरूपण कराया है। गरुड़ के सात प्रश्नों का उत्तर भी काक भुशुण्डि से दिलवा कर गोस्वामी जी ने दुर्लभ शरीर, बड़े दुख, बड़े सुख, संत-असंत विशाल पुण्य, घोर पाप, तथा मानसिक रोगों की व्याख्या की है। श्रीराम के द्वारा वे पहले भी संतों-असंतों के लक्षणों का स्पष्टीकरण करा चुके हैं तथा नगर निवासियों को, मानव-शरीर का उपयोग क्यों कर किया जाय इस पर भी प्रकाश डाल चुके हैं पर भक्त हृदय राम-कथाकार इतने से संतुष्ट नहीं होता क्यों कि उसका हृदय स्वान्तः सुखाय परजनहिताय के लिए व्यग्र है और उस परम तत्व की पुनरावृत्ति में उसे कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत होता :—

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही ।।
उत्तर ५-१२१ (क)

× × ×

नहि दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ।।
उत्तर ७-१२१ (क)

× × ×

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजइ बहु सूला ।।
उत्तर १५-१२१ (क)

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा ॥
उत्तर ३-१२२ (क)

श्री गोस्वामी जी भजन-महिमा, रामायण-माहात्म्य तथा आत्म-निवेदन सहित रामायण के अनुशीलन का फल बताकर राम-कथा की परिसमाप्ति करते हैं —

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जो यह कथा निरन्तर सुनहि मान बिस्वास ॥ उत्तर १२६

× × ×

सोइ कवि कोबिद सोइ रन धीरा। जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा ॥
उत्तर २-१२७

× × ×

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥ उत्तर १२८

मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर।
अस विचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥
उत्तर १३० (क)

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम ॥
उत्तर १३० (ख)

गोस्वामी जी की राम-कथा को किसी भी सिद्धान्त पर परखें, वह उत्तम कोटि में आती है। प्रारम्भ से अन्त तक कथा में प्रवाह तथा नाटकीयता है। कथा-क्रम में कहीं कृत्रिमता अथवा अन्य किसी प्रकार का अवरोध नहीं आता। सारे दृश्य सजीव एवं मनोहारी हैं। तुलसी की भावुकता और बहुज्ञता समूची कथा में दृष्टिगोचर होती है। उनकी संत-प्रवणता स्थान-स्थान पर दिखाई देती है। लंका काण्ड जैसे युद्ध प्रधान अंश को भी उन्होंने यों ही नहीं जाने दिया। शुष्क एवं रुक्ष युद्ध-व्यापारों को भी उन्होंने आध्यात्मिक तथ्यों से सजाकर मनोरम बना दिया है :—

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँति ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहि सकहिं उखारी ॥
लंका ७-३४ (क)

भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि विघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ।।
लंका ३४ (ख)

× × ×

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहिं भाँती ।।
निफल होंहि रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे ।।
लंका ३-९१

जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होंहि अपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार ।। लंका ९२

× × ×

तब रघुपति रावन के सीस भुजा सरचाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ।। लंका ९७

× × ×

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।।
लंका १-१०२

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस को सात काण्डों में विभक्त किया है। काण्ड का सामान्य अर्थ है घटना जिस काण्ड में जिस घटना अथवा स्थान की प्रधानता रही है उसी के नाम पर उस काण्ड का नामकरण कर दिया गया प्रतीत होता है। एकमात्र सुन्दर काण्ड इसका अपवाद है। प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में मंगलाचरण तथा अंत में फलश्रुति दी गई है। सभी काण्डों का प्रारंभिक मंगलाचरण संस्कृत श्लोकों में ही लिपिबद्ध किया गया है किन्तु उत्तर काण्ड को छोड़ कर अन्य सभी काण्डों के अंत में भाषा का ही प्रयोग हुआ है।

तत्समय प्रचलित परिपाटी के अनुसार ही गोस्वामी जी ने भी मंगलाचरण के बाद गुरु वन्दना की है। राम चरित मानस की गुरु वन्दना अनूठी है। गोस्वामी जी ने वन्दना के प्रसंग को बहुत व्यापक रूप दिया है। उन्होंने दुष्टों और असंतों की भी वन्दना की है। यह उनके हृदय की विशालता और सभी में ब्रह्म की अभिव्यक्ति को व्यवहार रूप में स्वीकार करने के कारण ही संभव हो पाया है :—

बहुरि बंदि खल गन सति भाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।।
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष विषाद बसेरे।।
बाल-४

× × ×

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।।
बाल २-५

गोस्वामी जी ने राम-कथा की महिमा का भी विशद वर्णन किया है। उन्होंने अपनी बुद्धि तथा विवेक बल के अनुसार ही राम-कथा के वर्णन की बात करते हुए यह कहा है कि यह राम-कथा सन्देह, मोह तथा भ्रम को दूर करनेवाली है। इस प्रकार उन्होंने राम-कथा के माहात्म्य का बड़ा ही व्यापक वर्णन किया है :—

राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।। बाल-३१

× × ×

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु।। बाल० ३२ (ख)

गोस्वामी जी की इस राम-कथा के वाचक और श्रोता चार-चार हैं शिव-पर्वती, भरद्वाज-याज्ञवल्कय, काकभुशुण्डि-गरुड़ तथा तुलसी दास एवं संत गण। उनके अनुसार भगवान शंकर ने राम-कथा की रचना कर उसे अपने मन में रखा था जिसे यथासमय पार्वती से कहा :—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा।।
ताते रामचरित मानस वर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर।।
बाल० ६-३५

एक बार मकरस्नान के पश्चात् जब मुनि याज्ञवल्कय अपने आश्रम को वापस लौटने लगे तो भारद्वाज ने उनके चरण पकड़ उन्हें रोक लिया। चरणों को धोकर उन्हें आसन पर बिठाया तथा उनके यश का वर्णन कर अपनी बात कही कि यदि गुरु से दुराव किया जाय तो विमल विवेक की प्राप्ति न होगी। अपने संशय को प्रकट करते

हुए कहा कि राजा दशरथ के पुत्र श्री राम हुए हैं जिनकी पत्नी को रावण ने हर लिया था। क्रुद्ध होकर उन्होंने रावण का वध कर दिया था। क्या उन्हीं को भगवान शंकर जपते हैं या अन्य किसी को कृपया विवेक से विचार कर कहें :—

नाथ एक संसउ बड़ मोरे। करगत वेद तत्व सब तोरे॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जो न कहउँ बड़ होत अकाजा॥

बाल० ४-४५

× × ×

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित संसारा॥
नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावन मारा॥

बाल० ४-३६

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि॥
सत्यधाम सर्वग्य तुम्ह कहहु बिबेक बिचारि॥

बाल० ४६

सन्देह के वशीभूत गरुड़ को आत्मशक्ति की प्राप्ति हेतु भगवान शंकर उन्हें काकभुशुण्डि के पास भेजते हैं। गरुड़, काकभुशुण्डि के आश्रम में पहुँच कर उनसे रामकथा सुनाने का आग्रह करते हैं। काकभुशुण्डि आद्योपान्त रामकथा कहते हैं। इस प्रकार गोस्वामी जी समूची रामकथा का सारांश पुनः प्रस्तुत कर देते हैं कि काकभुशुण्डि ने गरुड़ को क्या सुनाया :—

श्री रामकथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥

उत्तर २-६४

सुनत गरुड़ के गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपनीता॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥

उत्तर ३-६४

गोस्वामी तुलसी जी ने जो कथा बाराह क्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी उस समय बालपन की अनवधानता के कारण वह ठीक-ठीक समझ में नहीं आई थी। गुरु ने उस कथा को बारंबार कहा तब बुद्धि के अनुसार वह कुछ समझ में आई। अब वे उसी कथा को अपने ज्ञान के लिए भगवान की प्रेरणानुसार अपने बुद्धिबल एवं विवेक

बल के अनुसार कहते हैं :—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउँ अचेत ।।

बाल ३० (क)

× × ×

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।।
भाषा बद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।।

बाल १-३१।।

स्थान-स्थान पर भगवान शंकर को रामकथाकार के रूप में दिखाया गया है पर वास्तविक कथाकार गोस्वामी तुलसीदास ही हैं। गोस्वामी जी ने अत्यंत विनम्रता तथा अकिंचनता की बात कही है। वह उनकी राममय दृष्टि ही है कि उन जैसा सिद्धहस्त कवि तथा भक्त चरम सीमा की निरभिमानता का परिचय देता है :—

कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।

बाल ९-९

गोस्वामी तुलसीदास जी ने संवत् १६३१ के चैत्रमास की नवमी दिन मंगलवार को रामकथा का शुभारंभ किया था :—

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।।

बाल २-३४

नौमी भौमबार मधुमासा। अवध पुरी यह चरित प्रकासा।।

बाल ३-३४

रामचरित मानस का जितना पठन-मनन एवं मान भारतवर्ष में हुआ है और आगे होता रहेगा उतना और किसी भी ग्रंथ का न हुआ है न संभवतः होगा ही। यह तथ्य इसकी उपयोगिता एवं महत्ता की वास्तविक कसौटी है। यदि आक्कलन किया जाय तो पता चलेगा कि विश्व-साहित्य के इतिहास में इसका मूर्धन्य स्थान है फिर भी यह कहना उचित नहीं होगा कि राम चरित मानस में दोष देखने वालों का नितांत अभाव है। ढूँढ़ने पर ऐसे लोग मिल ही जायँगे जो कि कहेंगे कि गोस्वामी तुलसीदास सामन्तवादी कवि थे तथा उनकी बहुर्चचित रामकथा सामंत-कथा है। संतोष का विषय है कि हमारे

यहाँ ऐसे लोगों को भी विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तो है पर ऐसे विचारों को गंभीरता से नहीं लिया जाता।

स्वामी करपात्री जी ने अपने विशद ग्रंथ 'रामायण मीमांसा' के इक्कीसवें अध्याय में श्री गणेश चन्द्र जोशी द्वारा लिखित 'बनमानव महाकाव्य' का उल्लेख किया है। उन्होंने इस बात पर अत्यधिक क्षोभ व्यक्त किया है कि लेखक ने अपनी विद्वता तथा श्रम का सदुपयोग जनहित में न कर, चिरकाल से चली आ रही सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं को एक ही प्रयास में नष्ट-भ्रष्ट करने का उपक्रम कर दुरुपयोग ही किया है। 'बनमानव महाकाव्य' में राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान तथा राम-कथा से संबंधित अन्य गण्यमान पात्रों के संबंध में नितांत अनर्गल एवं अश्लील बातें कही गई हैं, जिनका वर्णन करना भी अनुचित प्रतीत होता है।

हिन्दू समाज रामायण के इन आदर्श पात्रों को अपना आराध्य मानता है और इनके द्वारा इंगित आदर्शों पर चलकर लौकिक तथा पारलौकिक सुखोपलब्धि की कामना करता है। साहित्यकार का शाश्वत धर्म है समाज की अभिरुचि को परिष्कृत करने का न कि उसे घृणा तथा विद्वेष के गर्त में गिराने का। फिर रामचरित की तो विशिष्टता ही है मर्यादा-पालन। यही कारण है कि उनके अनेक प्रचलित नामों में सर्वाधिक प्रचलित नाम मर्यादा-पुरुषोत्तम' का ही है।

स्वामी करपात्री जी ने 'बनमानव महाकाव्य' के लेखक श्री जोशी के इन प्रतिगामी विचारों की स्पष्ट शब्दों में भर्त्सना की है। लेखक के विचारों को स्थान न देने के कारण यहाँ स्वामी जी द्वारा किया गया खंडन भी नहीं दिया जा रहा है।

आज कल कुछ ऐसे लोग भी मुखर हो गए हैं जो कि यह मानते हैं कि जो कुछ भी पुरातन है वह सब कुछ सड़ा-गला तथा त्याज्य है। इतना ही नहीं उनकी यह भी मान्यता है कि प्रगति तथा वर्गविहीन समाज की संरचना के लिए यह आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है कि समाज के वर्तमान मूल्यों, विश्वासों तथा आस्थाओं को नष्ट करके ही नवीन मूल्यों, विश्वासों तथा आस्थाओं का सृजन संभव है। यह सोचना ही शाश्वत वैज्ञानिक सत्य के विरुद्ध है क्यों कि इनमें इस

प्रकार बदलाव अथवा प्रतिष्ठापन नहीं होता अपितु समय के अनुसार क्रमिक विकास होता रहता है जिसे हम अधिक समय व्यतीत हो जाने पर परिवर्तन कह दिया करते हैं।

इस प्रकार का विश्वास रखने वाले लोगों ने यह मान रखा है कि उन सारे आधारों को नष्ट अथवा विकृत कर नकार दिया जाना चाहिए जो कि उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति में उनके विचारानुसार बाधक हैं। इसी क्रम में कुछ लोगों ने रामचरित मानस तथा गोस्वामी तुलसीदास की कटु आलोचना प्रारंभ कर दी है। कुछ लोग उन्हें जातीयता का पोषक कुछ ब्राह्मणों का पक्षधर तथा कुछ तो हिन्दु-समाज का पथभ्रष्टक ही कहते हैं।

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी" को लेकर गोस्वामी जी की आलोचना करने वाले उन प्रसंगों को क्यों भूल जाते हैं जिनसे यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है कि वे जातीयता के किसी प्रकार भी पोषक नहीं थे। वे तो एक मात्र राम का ही नाता मानते थे। श्रीराम बन जाते हुए निषाद द्वारा लाए गए फल तथा जल को ग्रहण करते हैं :—

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥
अयो० ४-८६

सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥ अयो० ८६

इतना ही नहीं राम को मनाने हेतु चित्रकूट जाते समय मार्ग में भरत की भेंट निषाद से होती है। निषाद को रामसखा जानकर भरत ने सम्मान-भाव से रथ त्याग दिया। वे उमंग में पैदल ही चले। निषाद राज ने अपना ग्राम जाति तथा नाम बताकर प्रणाम किया। भरत ने दण्डवत् करते देखकर निषाद को इस स्नेह से हृदय से लगा लिया मानों लक्ष्मण से भेंट हो गई हो :—

करत दण्डवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदय समाइ॥ अयो० ६३

श्रीराम ने निषाद को बाहों में भर कर गले लगाया :—

कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेटेउ राम भद्र भरि बाहू॥

× × ×

प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियों उर लाई ।।
लंका ६-१२१ (क)

श्रीराम ने शबरी द्वारा दिए गए सुरस फलों को प्रशंसा पूर्वक खाया :--

कंदमूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ।। अरण्य ३४

गोस्वामी जी जाति पाँति की तुलना में श्रीराम की प्रीति को ही प्रधानता देते हैं । वे बालमीकि-मुख से श्रीराम के प्रति कहलवाते हैं कि जो व्यक्ति जाति पाँति धन, धर्म, बड़प्पन, प्रिय परिवार तथा सुखदाई घर को छोड़ कर आप को ही हृदय में धारण किए रहता है आप उसी के हृदय में रहें :—

जाति पाँति धनु धरम बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उरलाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ।।
अयो० ३-१३१

जहाँ तक ब्राह्मणों की पक्षधरता का प्रश्न है वह तथ्यपूर्ण नहीं है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी जाति-पाँति से ऊपर उठ चुके थे यद्यपि वे वर्णाश्रम धर्म को समाज के सुचारु-संचालन हेतु उपयुक्त मानते थे :—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद-पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहि भय सोक न रोग ।। उत्तर २०

उनकी इस मान्यता को आधार मानकर यह नहीं कहा जा सकता कि वे जाति पाँति की संकुचित मनोवृत्ति के पोषक थे । युग-पुरुष महात्मा गांधी का कथन था कि भारतवर्ष की वर्णव्यवस्था विश्व में सर्वोत्कृष्ट है पर खेद है कि एक ही वर्ण शूद्र अवशिष्ट रह गया है । कहने का भाव यह है कि किसी भी समाज के ठीक ढंग से चलते रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसके सदस्यों में कर्म-विभाग की व्यवस्था हो । प्रारंभ में जाति-व्यवस्था कर्म-विभाग के अतिरिक्त और कुछ न थी पर कालान्तर में लोगों ने व्यवहार में उसका उपयोग इस संकुचित मानसिकता से करना प्रारंभ कर दिया कि वह समाज के लिए एक असाध्य रोग के रूप में उपस्थित हुई । इस विकृत्ति को ध्यान में रखकर गोस्वामी जी को दोष देना उचित न होगा । उन्होंने तो उल्टे

उन ब्राह्मणों की निन्दा ही की है जो कि अपने आचार को भूल कर अन्यथा व्यवहार करने लगे थे :—

सोचिअ बिप्र जो बेद विहीना । तजि निज धरमु बिषय लयलीना ।
अयो० २-१७२

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ वृषली स्वामी ।।
उत्तर ४-१०० (क)

फिर गोस्वामी तुलसीदास जी तो एक सिद्ध संत थे । उनके स्तर पर पहुँचे हुए संत में यदि जातीयता अथवा किसी एक जाति की पक्ष-धरता हमें दिखाई पड़ती है तो इसमें उनका दोष नहीं, दोष है हमारी उस प्रवृत्ति का जिसमें हमें अपने पूर्वाग्रह के कारण उत्तम से उत्तम व्यक्ति में वही दोष दिखाई देते हैं जो कि हमारे विचारों में हैं ।

नारी निन्दा को लेकर भी गोस्वामी जी की आलोचना की जाती है । डाक्टर कामिल बुल्के ने इस प्रश्न को उठाते हुए यह कहा है कि ढोल गँवार सूद्र पसु नारी की उक्ति स्वयं गोस्वामी जी की नहीं अपितु गर्गसंहिता के निम्नांकित श्लोक का अनुवाद मात्र है :—

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः ।
ताडिता मार्दवं यान्ति नैते सत्कार भाजिन : ।।

निष्कर्ष निकालते हुए डाक्टर कामिल बुल्के ने कहा कि इस प्रकार की उक्ति का कारण मनोवैज्ञानिक है । यदि गोस्वामी जी को साध्वी माता का लाड़-प्यार मिला होता तो उन्होंने ऐसी उक्तियों को अपनी रचना में स्थान न दिया होता । यह निष्कर्ष परीक्षा की कसौटी पर खरा नहीं उतरता । जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य को माता का स्नेह बहुत अधिक मिला था, इतना अधिक कि वह उनके सन्यास मार्ग में बाधक हो रहा था क्योंकि उनकी स्नेहमयी माता जी उन्हें सन्यास लेने की अनुमति ही नहीं दे रही थीं । यह तो दैवयोग ही था कि असाधारण परिस्थितियों में उन्होंने अनुमति दे ही दी । स्वामी शंकराचार्य ने भी नारी के वासनामय रूप को लक्ष्य कर उसकी निन्दा की है जो कि गोस्वामी जी द्वारा समुद्र के मुख से कहलाई गई उक्ति से कहीं अधिक सघन है :—

द्वारं किमेकं नरकस्य नारी ।। ३—प्रश्नोत्तरी
सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री ।। ६—प्रश्नोत्तरी
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता ।। ८—प्रश्नोत्तरी

सूरान्महासूरतमोऽस्ति को वा मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु ।
प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥
१२—प्रश्नोत्तरी

विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वानार्या पिशाच्या न च वंचितो यः ।
का श्रृङ्खला प्राणभृतां हि नारी दिव्यं व्रतं किं च समस्त दैन्यम् ॥
किन्तद्विषं भाति सुधोपं स्त्री ॥ २६—प्रश्नोत्तरी

इस आधार पर ब्रह्मेव सत्यं जगन्मिथ्या का उद्घोष करने वाले जगत-गुरु आद्यशंकराचार्य पर नारी-निंदा का आरोप नहीं लगया जा सकता है। परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने भी भगवत्साधना में कामिनी और कांचन को बहुत बड़ी बाधा बताया है। इसके आधार पर उन्हें नारी निन्दक मान लेना उचित न होगा। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने भी साधना में बाधक नारी के वासनामय स्वरूप को लक्ष्य कर ही अपनी बात कही है। डाक्टर फादर कामिल बुल्के ने इस तर्क को अमान्य ठहराया है पर वास्तविकता यही है। यदि हम आध्यात्मिक-साहित्य पर दृष्टि डालें तो इस प्रकार का विचार हमें अनेक ग्रंथों में मिलेगा। फिर गोस्वामी जी ने तो नारी की स्तुति भी की है। सीता तो उनकी आराध्या ही हैं। शबरी का भी उन्होंने गुणानुवाद ही किया है। उन्होंने कौशल्या, सुनयना तथा मैना प्रभृति नारियों एवं उनकी वृत्तियों का जैसा सूक्ष्म विवेचन किया है उसको जान लेने के बाद यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है कि उन्हें साध्वी माता का लाड़-प्यार नहीं मिला था इसी कारण वे महिलाओं के प्रति निन्दा का भाव अपने रामचरित मानस में समाविष्ट कर सके।

वास्तविकता तो यह है कि तुलसी की राम-कथा ही एक ऐसी कथा है जिसका रसास्वादन कोई भी परिवार बिना संकोच के एक स्थान पर बैठकर कर सकता है क्योंकि उसमें सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान ही नहीं रखा गया है अपितु व्यवहार में उसका अच्छे ढंग से निर्वाह भी किया गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि तुलसी की रामकथा में हम अपनी दूषित दृष्टि तथा विकृत विचार के कारण दोष ढूँढ़ने के स्थान पर उनके सुझाए हुए मार्ग पर चलकर अत्मनः मोक्षाय जगद्धिताय के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करें। गोस्वामी जी ने

सामाजिक जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा। उन्होंने विस्तार से इस बात की चर्चा की है कि समाज के एक घटक का दूसरे के प्रति क्या कर्त्तव्य है और उसे अपने उस कर्त्तव्य का निर्वाह बिना किसी प्रतिदान की अभिलाषा के किस प्रकार करना चाहिए। राज-नीति तथा धर्मनीति पर भी व्यापक प्रकाश डाला गया है। गोस्वामी जी की राजनीतिक उक्तियाँ कितनी शाश्वत तथा प्रखर हैं इसका अनुमान एकमात्र इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश शासन काल में अवज्ञा आन्दोलन के समय मध्यप्रदेश की प्रान्तीय सरकार ने "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी" पर प्रतिबंध लगा दिया था। धर्म-नीति तो रामचरित मानस का प्राणा ही है। ऐसा लगता है कि सारा प्रयास एकमात्र उसकी स्थापना के लिए ही किया गया है। यह है भी सही क्योंकि तुलसीदास जी ने प्रारंभ में ही जिस 'स्वान्तः सुखाय' की बात कही है वह साधारण नहीं इसका पर्यवसान सर्वजनहिताय में ही होता है क्योंकि "निज प्रभु मय देखहिं जगत कासन करहिं विरोध" का भाव रखने वाला एकमात्र अपनी मुक्ति से कहाँ सन्तुष्ट होने वाला है? जब तक कि उसके प्रयास से सामान्य से सामान्य व्यक्ति के भी मुक्त होने का राजमार्ग न खुल जाय।



परब्रह्म राम

विभिन्न राम कथाकारों ने राम को विभिन्न रूपों में देखा है। कुछ लोगों ने उन्हें दशरथ-तनय एक राजकुमार के रूप में चित्रित किया है तो कुछ ने उन्हें क्षत्रियोचित सत्यसंध वीर पुरुष के रूप में, पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीराम को विष्णु के अवतार के रूप में ही नहीं अपितु साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा के रूप में देखा है। वे दुख-हरण के लिए ही अवतरित होते हैं :—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।
बाल० ३-१२१

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब धरि प्रभु विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।
बाल० ४-१२१

श्रीराम स्वेच्छापूर्वक ब्राह्मण, गो, देवता तथा संतों के उद्धार हेतु ही मनुष्य रूप धारण करते हैं। वे माया तथा इन्द्रियों से परे हैं। वह सर्व-व्यापी, निर्गुण, माया रहित तथा अजन्मा ब्रह्म ही भक्ति एवं प्रेम के वशीभूत हो कौसल्या की गोद में आता है :—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ।। बाल ६२
व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।। बाल १६८

श्रीराम का जन्म नहीं होता अपितु वे अवतार लेते हैं। उनके अवतरित होने के पूर्व प्रकृति सर्वथा अनुकूल हो जाती है। दिवस के मध्य में न तो अधिक ठंड रहती है न अधिक ताप तो ऐसा मध्याह्न लोगों को सुख देने वाला होता है। सुगंधित शीतल वायु मन्द-मन्द बह रही थी। देवता प्रसन्न तथा सन्तों के मन सुरुचि-संपन्न थे। वन कुसुमित पर्वत-समूह मणियों से प्रकाशित तथा नदियों में अमृत की धारा प्रवाहित हो रही थी। इस प्राकृतिक सुषुमा को भगवान राम के अवतार का संकेत मान, देवताओं सहित ब्रह्मा जी आकाश में आ गए। गंधर्वगण, हर्ष-विभोर हो गान करने लगे। ये सभी लोग आकाश

से पुष्प-वर्षा करने लगे। देवता गण स्तुति कर अपने-अपने स्थानों को चले गए :—

सुर समूह बिनती कर पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ बाल० १९१

भगवान राम किस रूप में अवतरित हुए इसका वर्णन गोस्वामी जी ने चार मनोरम छंदों में किया है। कौशल्या-हितकारी श्रीराम प्रकट हुए। उनके अद्भुत रूप को देख कर माता प्रसन्न होती हैं। चतुर्भुज भगवान अपने आयुधों सहित बनमाला धारण किए हुए प्रकट हुए। माता कौशल्या ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे अनघ! मैं तुम्हारी किस प्रकार स्तुति करूँ? इस प्रकार अनेक विधि स्तुति कर, कहा कि आप अपना वह रूप छोड़ शिशु लीला करें :—

भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप बिचारी।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषण बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी॥
बाल० १-१९२॥

कह दुइ करजोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनन्ता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनन्ता॥
बाल० ३-१९२

× × ×

भगवान राम का यह अवतार पूर्व ही सुनिश्चित था। मनु-शतरूपा ने अपनी तपस्या के अन्त में भगवान से उनके समान सुख की याचना की थी। उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए भगवान ने महाराज मनु से कहा था कि जब तुम अयोध्या के राजा होगे तब मैं अंशों सहित अवतार लूँगा तथा तुम्हारे घर में प्रकट होऊँगा :—

तहँ करि भोग बिलास तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥
बाल०-१५१

इच्छामय नरबेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
बाल० १-१५२

श्रीराम अपने चरित्र द्वारा माता पिता तथा अन्य सभी को सुख दे रहे हैं। व्यापक, अवयव रहित, इच्छा रहित, अजन्मा, निर्गुण जिनका न तो नाम है और न रूप ही, वे ही भक्तों के लिए अनेक प्रकार के मनुष्य-चरित्र करते हैं :—

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥

बाल० २०५

श्रीराम एकमात्र विष्णु के अवतार ही नहीं वे साक्षत परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा ही हैं। उन्हीं के अंश से शिव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं। वे आनन्द स्वरूप तथा उपाधिहीन हैं। वेद भी उनका ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाए हैं। उन्होंने उसे नेति-नेति कहा है :—

नेति नेति जेहिं बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा।
संभु विरंचि विष्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस से नाना॥

राम की बारात जनकपुर में सुशोभित हो रही है। उसमें राम के रूप की शोभा को बारंबार देखकर उमा तथा शंकर प्रसन्न हो रहे हैं। इतना ही नहीं भगवान विष्णु ने जब इस शोभा को देखा तो वे जो कि स्वयं शोभा की मूर्ति हैं, श्रीराम के स्वरूप पर लक्ष्मी सहित मुग्ध हो गए। चतुरानन भी उनके इस स्वरूप पर मुग्ध हो गए। उन्हें इस बात का पश्चात्ताप हुआ कि उनके आठ ही नेत्र क्यों हुए :—

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छवि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने।

बाल० २-३१७

रावण की जिज्ञासा पर गोस्वामी जी ने हनुमान जी के मुख से श्रीराम का जो परिचय प्रस्तुत कराया है उससे भी उनकी परब्रह्मता पर प्रकाश पड़ता है। वे कहते हैं जिसके बल से ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर सृष्टि के सृजन, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं वे ही श्रीराम हैं :—

जाकें बल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अण्डकोस समेत गिरि कानन॥

सुन्दर० ३-२१

उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि द्वारा भी गोस्वामी जी ने गरुड़ को कहलवाया है कि श्रीराम अनन्त हैं। अरबों पवन के समान उनमें

महान बल है और अरबों सूर्य के समान उनमें प्रकाश है। अरबों चंद्रमा के समान वे शीतल तथा सांसारिक भय का नाश करने वाले हैं। इसी प्रकार विस्तार से अनेक विधि काकभुशुण्डि ने श्रीराम की अनन्तता का वर्णन किया है। श्रीराम की, किसी से भी उपमा नहीं दी जा सकती है। उनके समान वे ही हैं। उनका थाह कोई भी नहीं पा सकता है। विमल विचार के लोग इसमें आश्चर्य नहीं मानेंगे :—

रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायेउँ सोइ ॥
उत्तर ९२ (क)

राम अनन्त अनन्त गुन अमित कथा बिस्तार ॥
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार ॥ बाल ३३

इतना ही नहीं गोस्वामी जी ने अपने रामचरित मानस में स्थान-स्थान पर श्रीराम के ब्रह्मत्व का परिचय दिया है। विश्वामित्र श्रीराम की वास्तविकता को जानकर ही श्रीराम-लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा हेतु माँगने के लिए राजा दशरथ के पास जाते हैं। उनके मन में यह भी अभिलाषा है कि इसी ब्याज से मुझे भगवान के दर्शन का सुअवसर मिलेगा। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि पृथ्वी का भार-हरण करने हेतु भगवान का अवतार हो चुका :—

गाधितनय मन चिन्ता ब्यापी। हरिबिनु मरहिं न निसिचर पापी ॥
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ॥
बाल० ३-२०६

एहू मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई ॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ॥
बाल० ४-२०६

विश्वामित्र श्रीराम तथा लक्ष्मण के साथ जाते हुए मार्ग में शिला-रूपिणी अहल्या को देखकर श्रीराम से कहते हैं कि अहल्या आपके चरणों की धूलि चाहती है, आप उस पर कृपा करें। इस प्रकार गोस्वामी जी ने श्रीराम के ब्रह्मत्व को स्पष्ट किया है जो कि भक्तों के उद्धार हेतु सगुण रूप में नरलीला करता हुआ विचर रहा है :—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।

चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ॥ बाल २१०

× × ×

जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।
सोइ पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी ॥
जो अति मन भावा सो बर पावा गै पतिलोक अनन्द भरी ॥
बाल० ४-२११

राजा जनक, श्रीराम लक्ष्मण को देखते ही मुग्ध हो जाते हैं। वे मुनि विश्वामित्र जी से पूछते हैं कि कहीं ब्रह्म ही तो दो वेष धारण कर नहीं आ गया। विश्वामित्र जी उत्तर में बताते हैं कि राजा जनक आपकी बात निराधार नहीं हो सकती है :—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥
बाल० १-२१६

कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥
बाल० ३-२१६

वनवास यात्रा-क्रम में श्रीराम मुनीश्वर भरद्वाज जी के आश्रम में पहुँचते हैं। श्रीराम को देख कर मुनीश्वर को ऐसा आनन्द होता है कि मानो उन्हें ब्रह्मानन्द की राशि ही मिल गई हो :—

मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई ॥
अयो० ४-१०६

बनयात्रा में एक तेजपुंज तापस के प्रसंग द्वारा श्री गोस्वामी जी ने श्रीराम ब्रह्मत्व को उजागर किया है। तापस श्रीराम को अपने इष्टदेव के रूप में पहचान कर उन्हें दण्डप्रणाम करता है। श्रीराम भी पुलकित हो उसे हृदय से लगा लेते हैं। यह स्थिति ऐसी प्रतीत हो रही है कि मानो प्रेम तथा परमार्थ दोनों मिल रहे हैं :—

सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि ।
परेउ दण्ड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ॥ अयो० ११०
राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ ॥
अयो० १-१११

गोस्वामी जी ने महर्षि बाल्मीकि के द्वारा राम का जो वर्णन कराया है उससे भी उनकी परब्रह्मता प्रकट होती है। वे कहते हैं कि हे राम! आपका अव्यक्त और अपार स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे तथा अवर्णनीय है। वेद उसे निरन्तर नेति नेति कहते हैं :—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥ अयो० १२६

वे आगे कहते हैं कि सारा जगत दृश्य है तथा श्रीराम उसके द्रष्टा हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर को भी नचाने वाले हैं। जब ये लोग भी आपको नहीं जान पाते तो अन्य लोग कैसे जान सकेंगे। आपको वही जान सकता है जिसे आप जनाना चाहें। आपकी ही कृपा से आपके भक्त आपको जान लेते हैं फिर उनका अलग से कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता क्योंकि वे पूर्णतया आप में ही समाहित हो जाते हैं। संतों एवं देवताओं के कार्य के लिए ही आपने मनुष्य शरीर धारण किया है, पर आप बात और लीला इस प्रकार की करते हैं जैसे कि कोई सामान्य राजा हो। आपकी लीला को देख कर जड़ मोहित तथा विद्वान सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य ही है क्योंकि जैसा वेश बनाया जाय वैसा ही नाचना भी तो चाहिए :—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
अयो० १-१२७

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
अयो० २-१२७

× × ×

नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
अयो० ३-१२७

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिज नाचा॥
अयो० ४-१२७

चित्रकूट से चलकर श्रीराम अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं, जहाँ वे अत्रि मुनि से मिलते हैं। इस प्रसंग से भी श्रीराम की पर

ब्रह्मता की अभिव्यक्ति होती है। मुनि श्रीराम को देख कर पुलकित हो, दौड़ कर मिलते हैं। उन्हें देख वे बहुत प्रसन्न एवं संतृप्त होते हैं। उनकी पूजा कर उन्हें फलमूल भेंट करते हैं। उसके बाद अत्रि जी श्रीराम की स्तुति परब्रह्म के रूप में करते हैं :—

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं ।।
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं ।। अरण्य० ५-४

सुग्रीव द्वारा भेजे गए हनुमान अपने इष्ट श्रीराम को पहचान कर धैर्य पूर्वक उनकी स्तुति करते हैं। कहते हैं कि माया के कारण ही वे अपने प्रभु श्रीराम को नहीं पहचान पाए थे। फिर दीनबन्धु भगवान ने भी तो उन्हें भुला दिया था। श्रीराम ने हनुमान को हृदय से लगा लिया और कहा कि तुम मुझे लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय हो। मुझे लोग समदर्शी कहते हैं पर अनन्य गति-सेवक मुझे प्रिय होता है। इसके माध्यम से गोस्वामी जी ने श्रीराम के ब्रह्मत्व को स्पष्ट किया है :—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ।।
किष्किधा ३-२
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्हीं। हरषहृदयँ निज नाथहि चीन्हीं ।।
किष्किधा ४-२

× × ×

तब माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ।।
किष्किधा २

× × ×

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त ।। किष्किधा ३

इसी प्रकार सुग्रीव भी श्रीराम के ब्रह्मत्व का ज्ञान कर स्थिर-मना हो सुख, संपत्ति, परिवार तथा बड़प्पन सब को त्याग कर प्रभु-सेवा के निश्चय की बात करते हैं क्योंकि उनकी समझ में ये सभी श्रीराम-भक्ति में बाधक हैं :—

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला ।।
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ।।
किष्किधा ८-७

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक ।।
किष्किधा ६-७

गोस्वामी ने बालि के मुख से भी श्रीराम को समदर्शी कहलवाया है और कहलवाया है कि यदि वे मुझे मारेंगे तो मैं मुक्ति पा सकूँगा। श्रीराम द्वारा छोड़े गए बाण से आहत बालि श्रीराम की ओर बारंबार देख कर चित्त को उनके चरणों में लगा देता है और अपने जन्म को सफल मानता है। श्रीराम जब बालि से जीवन रखने की बात करते हैं तो बालि तैयार नहीं होता एकमात्र इसलिए कि मृत्यु का जो सुन्दर अवसर उसे मिला है ऐसे करोड़ों-करोड़ों जन्म प्रयास करने पर मुनियों को भी नहीं मिलता, उसे क्यों छोड़ा जाय :—

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होऊँ सनाथ ।। किष्किधा ७

× × ×

पुनि-पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा ।।
किष्किधा २-९

× × ×

अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना ।।
किष्किधा १-१०

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं ।।
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अविनासी ।।
किष्किधा २-१०

मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ।।
किष्किधा ३-१०

कुंभकरण तथा रावण के देहपात के समय उनके तेज प्रभु श्रीराम के मुख में समा जाते हैं। इस प्रसंग के माध्यम से भी गोस्वामी जी ने श्रीराम की ब्रह्मता को स्पष्ट किया है। बाल्यकाल में आखेट में श्रीराम के बाण से मारे जाने वाले मृग स्वर्ग प्राप्त करते थे :—

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना ।।
लंका ४-७१

× × ×

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन ।।
लंका ५-१०३

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे।।
बाल २-२०५

रावण-संहार के पश्चात देवगण द्वारा स्तुति के माध्यम से भी मानसकार ने श्रीराम की परब्रह्मता पर प्रकाश डाला है :—

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एक रस सहज उदासी।।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय।।
लंका ३-११०

श्रीराम के सिंहासनारूढ़ होने के बाद देवता, वेद तथा भगवान शंकर उनकी स्तुति करते हैं। इन सभी से गोस्वामी जी ने इस तथ्य को ही प्रकट किया है कि उनके चरित-नायक श्रीराम साधारण व्यक्ति नहीं अपितु परब्रह्म ही हैं :—

भिन्न-भिन्न अस्तुति कर गए सुर निज-निज धाम।
बंदी वेष वेद तब आए जँह श्री राम।। उत्तर-१२ (ख)

× × ×

सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अन्तर्धान भए मुनि गए ब्रह्म आगार।। उत्तर-१३ (क)
बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर। उत्तर-१३ (ख)

अन्त में गोस्वामी जी ने महर्षि नारद द्वारा भी श्रीराम की स्तुति कराई है :—

तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन।। उत्तर-५०

गोस्वामी ने इस बात का विस्तृत वर्णन किया है कि श्रीराम के ब्रह्मत्व में जिस-जिस व्यक्ति को सन्देह हुआ है, वह अज्ञान जनित ही रहा है। उन्होंने उमा के सन्देह का वर्णन किया है। भगवान शंकर बनवासी राम को प्रणाम करते हैं। इस पर उमा के मन में सन्देह होता है कि क्या ब्रह्म अज्ञ की भाँति स्त्री की खोज करेगा? शंकर जी के बहुत समझाने पर भी उनके मोह का नाश नहीं होता। परीक्षा लेने की दृष्टि से उन्होंने सीता का रूप बना लिया। श्रीराम ने पिता सहित अपना नाम बता कर उन्हें प्रणाम किया तथा महेश के संबंध में पूछा। अपनी भूल का ज्ञान होने से सती दुखी हो गईं। श्रीराम ने

प्रकट रूप में उन्हें अपना प्रभाव दिखाया। सती आगे-पीछे जहाँ भी देखती हैं उन्हें श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता सहित ही दिखाई पड़ते हैं। जहाँ-तहाँ जितने राम देखे वहाँ वहाँ उतने देवताओं को भी उनकी शक्तियों के साथ देखा। देवताओं को अनेक वेषों में श्रीराम की पूजा करते हुए देखा पर राम का एक ही रूप दिखाई पड़ा। सीता सहित अनेक राम देखा पर उनके वेष एक ही थे। उन्हीं राम-सीता तथा लक्ष्मण को देखा, सती भयभीत हो गईं :—

जीव चराचर जे संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥
बाल १-५५

पूजहि प्रभुहि देव बहु वेषा। राम रूप दूसर नहि देखा॥
सोइ रघुबर सोइ लछुमन सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
बाल २-३-५५

श्रीराम के ब्रह्मत्व को स्पष्ट करने हेतु स्थान-स्थान पर यह व्यक्त किया गया है कि वे भगवान शंकर के इष्टदेव हैं। सती द्वारा अज्ञान-वश सीता का रूप धारण करने की बात को जानकर भगवान शंकर उनके त्याग का निश्चय करते हैं क्योंकि उन्होंने उनके आराध्य की शक्ति का रूप धारण कर लिया था। इस निश्चय पर भगवान शंकर की भक्ति और सामर्थ्य की प्रशंसा आकाशवाणी से होती है :—

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम भगत समरथ भगवाना॥
बाल ३-५७ (क)

सती के देह त्याग के बाद भगवान शंकर जो कि मोह, मद तथा काम से मुक्त, सभी को आनन्द देने वाले हैं, श्रीराम को हृदय में धारण कर पृथ्वी पर विचरण करते हैं :—

चिदानन्द सुख धाम सिव बिगत मोह मद काम।
विचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम॥ बाल ७५

दक्ष-यज्ञ में शरीर त्याग के बाद सती हिमवान के यहाँ पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं। वे पति रूप में भगवान शंकर की प्राप्ति हेतु कठोर तप करती हैं। श्रीराम प्रकट हो कर भगवान शंकर से पार्वती को पत्नी रूप में स्वीकार करने का अनुरोध करते हैं। भगवान शंकर कहते हैं कि यद्यपि यह उचित नहीं है पर स्वामी के आदेश की अव-मानना नहीं की जा सकती है :—

कह सिव यद्यपि उचित अस नाहीं । नाथ वचन पुनि मेट न जाहीं ।।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ।।
बाल १-७७

पार्वती अपने पूर्व जन्म के स्मरण के आधार पर भगवान शंकर से अपने सन्देह के निवारण करने की प्रार्थना करती हैं । वे कहती हैं कि परमार्थ तत्वज्ञ मुनि राम को अनादि ब्रह्म कहते हैं । शेष, शारदा, वेद तथा पुराण श्रीराम के गुणों का गान करते हैं। आप भी अहर्निशि राम राम जपा करते हैं । राम, दशरथ पुत्र हैं या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर कोई अन्य राम हैं । पार्वती को भ्रम है कि दशरथ पुत्र भला कैसे ब्रह्म हो सकते हैं । अनेक विधि अनुनय विनय करने वाली पार्वती के भ्रम निवारण हेतु भगवान शंकर के मुख से गोस्वामी जी ने जो कुछ कहलवाया है उस से श्रीराम का ब्रह्मत्व स्पष्ट होता है । वे पार्वती की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी कि श्रीराम ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ और हैं । ऐसी बात अधम पाखंडी, हरि-विमुख तथा अविवेकी व्यक्ति ही कहते हैं । विस्तार में न जाकर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि श्रीराम के ब्रह्मत्व में संदेह नहीं होना चाहिए :—

एक बात नहिं मोहि सुहानी । जदपि मोह बस कहेउ भवानी ।।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ।।
बाल ४-११४

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जो मोह पिसाच ।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच ।। बाल ११४

भगवान शंकर पार्वती के भ्रम का निवारण करते हुए कहते हैं कि तुम्हारा भ्रम निराधार है । भक्ति एवं प्रेम के वशीभूत परब्रह्म सगुण हो जाता है । इनमें परस्पर कोई भेद नहीं है । ये दोनों वैसे ही अभेद हैं जैसे कि जल और हिम । राम सच्चिदानन्द हैं उनके संबंध में तनिक भी मोह का अवसर नहीं है । वे तो व्यापक ब्रह्म हैं :—

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
बाल १-११६

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ।।

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि कि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥
बाल० २-११६

× × ×

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना।
बाल० ४-११६

अपनी बात को आगे और स्पष्ट करते हुए भगवान शंकर कहते हैं कि विषय, इन्द्रियाँ इन्द्रियों के देवता तथा जीवात्मा ये क्रमशः एक की सहायता से एक चैतन्य होते हैं पर इन सब के परम प्रकाशक एवं चेतना देने वाले अयोध्या नरेश श्रीराम ही हैं। श्रीराम प्रकाशक तथा सारा विश्व प्रकाश्य हैं। उनकी सत्ता से ही यह जड़ माया भी सत्य सी प्रतीत होती है। वेद उसकी अलौकिकता का वर्णन करते हैं। मुनि उसका ध्यान करते हैं। वही भगवान भक्तों के हितसाधन हेतु कोशलपति श्रीराम हुए हैं। उन्हीं के बल पर मैं काशी में मरने वाले जीवों पर दृष्टि डाल कर उन्हें मुक्त कर देता हूँ। वे ही मेरे प्रभु जड़ चेतन के स्वामी अन्तर्यामी श्रीराम मेरे आराध्य हैं :—

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
बाल० ३-११७

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
बाल० ४-११७

× × ×

जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥ बाल० ११८

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अंतरजामी॥
बाल १-११९

समूचा मानस इस प्रकार की उक्तियों से भरा पड़ा है जिसमें तुलसी के राम नरलीला करते हुए भी अपना ब्रह्मत्व अक्षुण्ण रखते हैं। इस प्रकृत नरलीला के चित्रण में जहाँ कवि को यह आभास होता है कि कहीं मानस के पाठक को भ्रम न हो जाय कि वे

श्रीराम परब्रह्म नहीं, ये तो दशरथनन्दन मात्र हैं वहीं वे स्पष्ट रूप से इस संभावित शंका का समाधान कर देते हैं।

श्रीराम गुरु-गृह में पढ़ने जाते हैं। इस प्रकृत कार्य से लोगों के मन में उनकी परब्रह्मता में संदेह न हो इसके लिए कवि कहता है कि जिस भगवान के सहज श्वास रूप से ही चारों वेद हैं, वे पढ़ें यह बात अत्यंत कुतूहलप्रद है :—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।।
बाल० २०४

विश्वामित्र की यज्ञरक्षा में गए हुए राम-लक्ष्मण को ब्राह्मणों ने पुराणों की अनेक कथाएँ सुनाईं। श्रीराम ने कथाओं को सुना यद्यपि सर्वज्ञ होने के नाते वे इन सबको जानते ही थे :—

भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना।।
बाल० ४-२१०

श्रीराम जनकपुरी में लक्ष्मण जी को धनुष-यज्ञशाला दिखा रहे हैं। जिसकी आज्ञा से माया एक क्षणमात्र में सारे संसार की रचना कर डालती है वे ही श्रीराम धनुष-यज्ञशाला को आश्चर्यचकित हो कर देख रहे हैं :—

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना।।
लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया।।
बाल० २-२२५

भगति हेतु सोइ दीन दयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला।।
बाल० ३-२२५

धनुष-यज्ञशाला को देखने-दिखाने में विलंब हो गया इस बात से श्रीराम मन में भयभीत हैं कि कहीं गुरु विश्वामित्र जी इसे अनुचित न मानें। गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि भला भगवान राम को कहाँ भय हो सकता है क्योंकि वे तो भय को भी भय देने वाले हैं। यह तो एक मात्र भक्ति का प्रभाव है जो कि वे ऐसी लीला कर रहे हैं :—

कौतुक देखि चले गुरुपाहीं। जानि बिलंब त्रास मनमाहीं।।
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाव देखावइ सोइ।।
बाल ४-२२५

मुनि विश्वामित्र के सो जाने पर राम-लक्ष्मण उनके चरणों को दबाते हैं। इस पर गोस्वामी जी कहते हैं कि जिन श्रीराम के चरणों की प्राप्ति के लिए विरागी अनेक प्रकार के जप करते हैं वे ही श्रीराम गुरु चरणों को दबा रहे हैं :—

मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥
बाल २-२२६

श्रीराम को चित्रकूट में जब पिता के देहावसान की सूचना मिलती है तो वे विधि-विहित रीति से पिता की क्रिया संपन्न कर पवित्र होते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि जिसका नाम ही पाप रूपी रुई को अग्नि की भाँति जलाने वाला है वे श्रीराम जो स्वयं शुद्ध एवं बुद्ध हैं वे शुद्ध हुए। साधुओं का ऐसा मत है कि उनकी यह शुद्धि उसी प्रकार की रही जिस प्रकार तीर्थों के आह्वान से गंगा जी शुद्ध होती हैं। गंगा तो स्वयं पवित्र हैं उनके संपर्क में आने वाले तीर्थ ही शुद्ध होते हैं :—

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी ॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥
अयो० १-२४८

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
अयो० २-२४८

स्वर्ण-मृग के पीछे श्रीराम सीता की इच्छा पूर्ति हेतु दौड़ रहे हैं। सामान्य रूप से ऐसे कार्य करने वाले को ब्रह्म नहीं माना जा सकता। इसका समाधान करने हेतु श्री गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि वेद जिनका वर्णन न कर सक पाने के कारण नेति नेति कहते हैं और भगवान शंकर भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते वही स्वर्ण-मृग के पीछे दौड़ रहे हैं।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा ॥
अर० ६-२७

सीता के वियोग से व्याकुल श्रीराम सीता की खोज कर रहे हैं। उनकी स्थिति को देख कर लोगों को भ्रम न हो जाए इसको स्पष्ट

करने के लिए ही गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीराम तो पूर्णकाम तथा सुखराशि हैं। वे विलाप करते हुए महाविरही और अतिकामी की भाँति सीता जी को खोज रहे हैं। यह तो एकमात्र उनके द्वारा किया जाने वाला नर-चरित ही है :—

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
अ०-८-३०

पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अविनासी॥
अर० ६-३०

राज्य-सुख में संलग्न सुग्रीव रामकाज विसार देते हैं। श्रीराम क्रुद्ध हो कहते हैं कि जिस बाण से मैंने बालि का संहार किया है उसी बाण से मैं कल सुग्रीव का बध कर दूँगा। इस प्रकार के क्रोध की उत्पत्ति सामान्य व्यक्तियों में होती है। श्रीराम का यह भाव नरलीला के दिग्दर्शन मात्र के लिए हो रहा है। यह बात श्रीराम के चरित में श्रद्धा रखने वाले मुनि तथा ग्यानी लोगों को ही ज्ञात हो सकती है :—

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ कहँ काली॥
जासु कृपा छूटहिं मद मोहा। ता कहँ उमा कि सपनेहु कोहा॥
किष्किधा ३-१८

ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से मेघनाद हनुमान जी को नागपाश में बाँध लेता है। स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि जिसके नाम को जप कर लोग सांसारिक बंधन से मुक्त हो जाते हैं उसका दूत बंधन में नहीं लाया जा सकता है। यह तो मात्र लीला ही है कि श्रीराम के कार्य हेतु हनुमान जी अपने को बँधा लेते हैं।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥
सु० २-२०

लक्ष्मण जी को मेघनाद के शक्ति-प्रहार से मूर्च्छित देख श्रीराम विलाप करते हैं। इस पर गोस्वामी जी ने शिव जी के मुख से यह कहलवाया है कि श्रीराम तो एक अद्वैत परब्रह्म ही हैं। उनको अनेक विधि चिन्तातुर दिखाया गया है तथा उनके नेत्रों से जो अश्रु-प्रवाह हो रहा है वह एकमात्र कृपालु श्रीराम की नरलीला ही है :—

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्त्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥
लंका-८-६१

मेघनाद की माया से श्रीराम नागपाश में बँध जाते हैं। इस बंधन से उनके ब्रह्मत्व में साधारण पाठक के सन्देह को मिटाने के लिए गोस्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि अपने वश में ही रहने वाले अनन्त एवं अद्वितीय श्रीराम जो कि सदा स्वतंत्र हैं नट की भाँति एक मात्र दिखाने के लिए ही अनेक प्रकार के चरित्र दिखा रहे हैं। उन्होंने रण की शोभा के लिए अपने को नाग-पाश में बँधवा लिया है। उनके नाम का जप कर संसारी जीव मुक्त हो जाते हैं। भला वे सर्वव्यापक विश्वाधार कही बंधन में आ सकते हैं :—

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनन्त एक अधिकारी॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥
लंका ६-७३

रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो॥
लंका ७-७३

गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भवपास।
सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास॥ लंका ७३

गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रत्येक काण्ड के प्रारंभिक मंगलाचरण में श्रीराम की जो वन्दना की है उसमें भी उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि उनके राम साधारण अधिपति नहीं अपितु वें परब्रह्म परमेश्वर परमातमा ही हैं। वे तो एकमात्र भू-भार-हरण, संतों को सुख देने तथा नरलीला के लिए ही अवतरित हुए हैं :—

बन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥ बाल० श्लोक ६-१

× × ×

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण शान्ति प्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
बन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम्॥
सुन्दर० श्लोक १-१

× × ×

राम कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलबध निरतं ब्रह्मवृंदैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरुपम् ।।

लंका श्लोक १-१

कोसलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृंगसंगिनौ ।।

उत्तर श्लोक २-१

गोस्वामी तुलसीदास ने राम की परब्रह्मता का पुट सारे कथानक में देखा है पर इससे कथा-प्रवाह में अवरोध अथवा अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। श्रीराम एक आदर्श सामाजिक व्यक्ति के रूप में व्यवहार करते दिखाई देते हैं फिर भी उनका ब्रह्मत्व स्पष्ट रूप से पाठक के मन मस्तिष्क पर बना रहता है। यही कवि का अपना वैशिष्ट्य तथा उसकी चरमकोटि की सफलता है कि वह दोनों भावों का सुन्दर एवं मनोहारी परिपाक अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सका है।

गोस्वामी जी मूलतः भक्त थे। उन्होंने भक्ति-भाव से प्रेरत हो, रामकथा को आधार बना कर अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की है। यही कारण है कि उनके रामचरित मानस में कहीं भी अस्वाभाविकता अथवा विचारों की शिथिलता नहीं आ पाई। उनका मुख्य उद्देश्य था अपने पाठकों को श्रीराम की परब्रह्मता का ज्ञान करा कर उन्हें उसकी अनुभूति के लिए उत्प्रेरित करना। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में वे पूर्णतया सफल रहे हैं।

स्थितप्रज्ञ-राम

तुलसी के राम स्थितप्रज्ञ हैं। प्रत्येक स्थिति में उनकी प्रज्ञा एक रस ही बनी रहती है। अनुकूल परिस्थितियाँ न तो उन्हें विशेष प्रसन्न कर पाती हैं और न प्रतिकूल दुखी ही। वे राग-द्वेष से सर्वथा परे हैं। कहीं अवसाद अथवा क्रोध का प्रसंग उपस्थित भी होता है तो गोस्वामी जी यथास्थान ही स्पष्टीकरण कर देते हैं कि यह तो एकमात्र नर-लीला ही है अन्यथा श्रीराम में यह विकृति कहाँ संभव है ? इस प्रकार रामचरित मानस में उन्होंने श्रीराम को पूर्णरुपेण स्थित-प्रज्ञ के रूप में चित्रित किया है।

अयोध्याकाण्ड की वन्दना में ही गोस्वामी जी ने श्रीराम की स्थितिप्रज्ञता को स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं कि श्रीराम के मुख की वह शोभा मेरे लिए नित्य कल्याणकारिणी हो जो कि राज्याभिषेक से न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न ही वनवास से दुख को :—

प्रसन्नतां या न गतभिषेकतस्तथा न मम्ले बनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य में सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ॥
अयो० २-१

सीतास्वयंवर में भाग लेने वाले राजे-महाराजे शिव-धनुष को उठाने में सफल नहीं होते। कन्या के कुमारी रहने के भय से दुखी एवं क्षुब्ध महाराज जनक "वीर विहीन मही मै जानी" की गर्जना करते हैं। लक्ष्मण जी इस बात को सहन नहीं कर सके और श्रीराम की उपस्थिति में महाराज जनक की इस बात को अनुचित बताया। इन्हीं परिस्थितियों में मुनि विश्वामित्र श्रीराम को धनुर्भंग की आज्ञा देते हैं। श्रीराम गुरु की आज्ञा पा सहज भाव से उठ खड़े होते हैं। इस समय उनके मन में न तो जानकी के पाने की ललक से प्रसन्नता ही है और न धनुर्भंग न हो पाने में संदेह से किसी प्रकार का विषाद ही। यह स्थिति एकमात्र इसीलिए संभव हो पा रही है कि वे वस्तुतः स्थितप्रज्ञ हैं :—

सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥
बाल० ४-२०४

सुख एवं दुख की ही भाँति श्रीराम पर भय का भी कोई प्रभाव नहीं होता क्यों कि स्थितप्रज्ञ होने के कारण वे भयाक्रान्त होते ही नहीं। धनुर्भंग के बाद जब सीता जी श्रीराम को जयमाल पहना देती हैं तब कुछ अज्ञ राजागण हल्लागुल्ला करते हैं, सीता को छीन लेने के लिए। सीता जी भयभीत हो सखियों के साथ अपनी माता के पास चली जाती हैं किन्तु श्रीराम नितांत स्वाभाविक रूप से गुरु विश्वामित्र के पास जाते हैं मानों इस शोरगुल को उन्होंने सुना ही न हो :—

रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं । सिय सनेहु बरनत मनमाहीं ॥
बाल ३-२६७

सुरगण की प्रेरणा से सरस्वती द्वारा मंथरा की मति परिवर्तित कर दिए जाने पर जब वह कैकेयी को राम-राज्याभिषेक के विरुद्ध उकसाने का उपक्रम करती है तो उस समय कैकेयी श्रीराम के संबंध में जो कुछ कहती हैं उससे उनके समत्व विचार तथा व्यवहार पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पहले तो कैकेयी मंथरा की भर्त्सना करती है, उसकी विभेदकारी बुद्धि के लिए फिर कहती है कि सुन्दर एवं मंगल दायक दिन वही होगा, जिस दिन तेरी बात सत्य होगी तथा श्रीराम का राज्याभिषेक होगा। श्रीराम सभी माताओं को कौसल्या के समान ही प्रेम करते हैं, पर मुझ पर तो विशेष स्नेह रखते हैं। मैंने उनके स्नेह की परीक्षा लेकर इस बात को देख लिया है। यदि भगवान, संसार में जन्म दें तो श्रीराम जैसा पुत्र तथा सीता जैसी ही पुत्र-बधु मिले। श्रीराम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक से तू कैसे क्षुब्ध हुई :—

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मोपर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
अयो० ३-१५

जो बिधि जनम देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्हकें तिलक छोभु कस तोरें ॥
अयो० ४-१५

इससे स्पष्ट है कि श्रीराम का व्यवहार सभी के प्रति समान था स्थितप्रज्ञ का यह प्रमुख लक्षण है।

राज्याभिषेक के स्थान पर बनवास की बात जानकर भी श्रीराम पर कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया नहीं होती। पहले भी जब उनका राज्याभिषेक होने जा रहा था तो उन्हें यह बात अनुचित सी लग रही थी कि रघुवंश में सब को छोड़ कर एकमात्र बड़े भाई का ही राज्याभिषेक होता है। अब जब उन्हें बन जाना है तब भी उनके मन में विषाद की एक भी रेखा नहीं। उल्टे वे अपने पिता दशरथ को समझाने का यत्न करते हैं यह कह कर कि बहुत छोटी सी बात का आपने बड़ा दुख मान लिया। मुझे पहले किसी ने बताया ही नहीं। यह तो मंगल का समय है, ऐसे समय में स्नेहवश शोक न करें :—

अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूछिउँ माता। सुन प्रसंगु भए सीतल गाता॥
अयो० ४-४५

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥ अयो० ४५

श्रीराम के वनवास की बात जान कर अयोध्यावासी दुखी हैं पर श्रीराम को उसका किंचिन्मात्र भी दुख नहीं। वे चौगुने उत्साह से माता कौसल्या से वन जाने की अनुमति माँगने हेतु पहुँचते हैं। राज्यतिलक की सूचना से उनका मन अपने आप को आवद्ध अनुभव कर रहा था अब वनवास का प्रसंग उपस्थित होने से, वह पुनः स्वतंत्रता की अनुभूति कर रहा है :—

अति विषाद बस लोग लोगाई। गए मातु पहिं राम गोसाईं॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥
अयो० ४-५१

माता कौसल्या इस मधुर भाव से भावित हो परम प्रसन्ना हैं कि उनके पुत्र श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त किया जा रहा है पर राम तो उनके पास वनगमन हेतु अनुमति लेने पहुँचे हैं। विचित्र विरोधाभास है पर श्रीराम के हाव-भाव तथा मुख-छवि से यह आभास ही नहीं हो पाता कि उन्हें राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास मिल गया है। दो चरम सीमाओं के बीच भी अनुद्वेलित बने रहना यह सर्व-

साधारण के बलबूते की बात नहीं। बहुत लाड़-प्यार से जब कौसल्या राज्याभिषेक के मुहूर्त का समय पूछती हैं तो श्रीराम उनकी बातों से किंचिन्मात्र प्रभावित हुए बिना ही नितांत निसंग भाव से कहते हैं कि पिता जी ने मुझे वन का राज्य दिया है जहाँ हर प्रकार से मेरा बड़ा कार्य होने वाला है :—

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।
अयो० ३-५३

श्रीराम को आशंका है कि माता कौसल्या कहीं स्नेहवश उन के वनगमन की बात को जानकर भयभीत न हों अस्तु वे उनसे प्रार्थना करते हैं कि आप प्रसन्नमना हो मुझे अनुमति दें जिससे कि आपके आशीर्वाद से मेरी वनयात्रा मंगलमयी हो :—

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता।।
जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें।।
अयो० ४-५३

बहुत प्रयास के बाद भी सीता जी एकाकी अयोध्या में रहने को तैयार नहीं होतीं। यह अनुमान कर कि यदि हठात् उन्हें अयोध्या में छोड़ दिया गया तो वे अपना प्राण छोड़ देंगी, श्रीराम उन्हें साथ चलने की अनुमति दे देते हैं और कहते हैं कि चिन्ता-त्याग मेरे साथ चलो, आज दुख का कोई भी प्रसंग नहीं है। यह स्थित-प्रज्ञता की एक सीमा है जिसमें सुख-दुख में कोई अन्तर नहीं रह जाता है या यों कहे कि इनके प्रभावों में कोई अन्तर नहीं होता तो कदाचित अधिक उपयुक्त होगा :—

कहेहु कृपाल भानुकुल नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा।।
नहि बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू।।
अयो० २-६८

राजा दशरथ श्रीराम को हर प्रकार इस बात के लिए प्रेरित कर रहे हैं कि वे बन न जाकर अयोध्या में ही रह जायँ पर धर्मज्ञ, धीर एवं बुद्धिमान राम इसके लिए तैयार नहीं क्योंकि वे स्थितप्रज्ञ हैं। उन्हें अयोध्या और बन दोनों में कोई अन्तर ही नहीं दीख रहा है, सम्यक् दृष्टि के कारण :—

रायँ राम राखनहित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी।।

लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरन्धर धीर समाने।।
अयो० १-७८

क्रोध एवं क्षोभ उत्पन्न होने की विशेष परिस्थितियों में भी राम इन भावों से पूर्णतया अछूते ही रहते हैं। यह सब उनकी स्थितप्रज्ञता के कारण ही संभव हो पाता है। राम जब अयोध्या में रहने को तैयार नहीं होते तो लोग सीता जी को रोकने का प्रयास करते हैं। सीता जी गुरुजन के संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इससे कैकेयी के क्रोध का पारा चढ़ जाता है और वह बन के लिए उपयुक्त वस्त्राभरण एवं अन्य अपेक्षित सामग्री लाकर श्रीराम के आगे रख देती हैं और कहती हैं कि तुम सब को प्रिय हो, तुम्हें कोई भी बन जाने को नहीं कहेगा। तुम्हें जो उचित लगे वही करो। कैकेयी की यह बात सभी को बुरी लगी, महाराज दशरथ तो मूर्च्छित ही हो गए परन्तु माता की इस शिक्षा को प्राप्त कर श्रीराम सुखी हुए और तुरन्त ही मुनिवेष बना कर बन को चले गए। यह स्थिति श्रीराम की स्थितप्रज्ञता नहीं तो और क्या है :—

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा।
अयो० ३-७९

राम तुरत मुनि वेषु बनाई। चले जनक जनिनिहि सिर नाई।।
अयो० ४-७९

बन से लौटने के पूर्व सुमंत एक बार पुनः श्रीराम से अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना करते हैं। श्रीराम अति विनम्रतापूर्वक धर्म एवं नीति का संदर्भ देते हुए लौटने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं। वार्ताक्रम में लक्ष्मण कुछ कटु वचन कहते हैं। श्रीराम अपनी शपथ दे उसे न कहने का आग्रह करते हैं और कहते हैं कि पिता जी के चरण पकड़ उन्हें करोड़ों प्रणति दे, करबद्ध हो, निवेदन करिएगा कि वे मेरी चिन्ता किसी भी बात के लिए न करेंगे। आगे और प्रार्थना करते हैं कि आप लोगों का हर प्रकार से वही कर्तव्य होगा जिससे पिता जी हमारे वियोग में दुखी न हों :—

पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिन्ता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि।।
अयो० ९५

सब बिधि सोइ कर्तव्य तुम्हारे। दुख ना पाव पितु सोच हमारे।।
अयो० १-६५

रामचरित मानस में सीता-हरण तथा लक्ष्मण को शक्ति का लगना ए दो ऐसे अवसर है जहाँ श्री गोस्वामी जी मे श्रीराम को दुखी तथा विलाप की स्थिति में दिखाया है पर ये दोनों स्थितियाँ वास्तविक न हो कर एकमात्र उनकी नरलीलाएँ ही हैं।

श्रीराम को अहंकार तो छू ही नहीं सका। वे अकेले ही खरदूषण की अपार सेना का संहार कर डालते हैं पर उनमें तनिक भी अहंभाव नहीं उत्पन्न होता। बालि एक ही बाण से धराशायी हो जाता है। उसकी विनम्रता से श्रीराम उस पर प्रसन्न हो कहते हैं कि यदि तुम अपना प्राण रखना चाहो तो मैं तुम्हारे शरीर को सुरक्षित कर दूँ। यह समत्व बुद्धि में ही संभव है। जिसमें राग-द्वेष न होगा वही ऐसा कह सकता है।

कुंभकरण-रावणसंहार एवं लंका पर विजय से भी श्रीराम के मन में कोई भी विकार नहीं उत्पन्न होता। अयोध्या लौटते समय वे सीता को रणस्थली दिखाते हुए अपने सहायकों के शौर्य की ही प्रशंसा करते हैं।

अपने कुलगुरु वशिष्ठ से अपने सहायकों का परिचय कराते हुए श्रीराम कहते हैं कि इनकी कृपा से ही मैं राक्षसों का संहार कर सका। दूसरी ओर सहायकों का परिचय देते हुए गुरु वशिष्ठ से कहा कि इन लोगों ने मेरे लिए अपने-अपने जीवन ही निछावर कर दिए थे। युद्ध रूपी सागर में ये लोग मेरे लिए जहाज की तरह थे। ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं। यह श्रीराम की निरंहकारिता ही तो है कि वे अपनी लंका-विजय का श्रेय गुरु वशिष्ठ तथा सहायकों को दे रहे हैं :–

गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन की कृपाँ दनुज रन मारे।।
उत्तर ३-८ (क)

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे।।
उत्तर ४-८ (क)

श्रीराम बिना भेदभाव के समान भाव से ही सभी से स्नेह करते

हैं। निषाद एवं शबरी की तथाकथित जातीय हीनता भी उनके स्नेह में किसी प्रकार का अन्तर नहीं ला पाती। वे निषाद को प्रेम से हृदय से लगाते तथा शबरी के बेरों को प्रेम-भाव से ग्रहण करते हैं।

तुलसी के राम कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी भयभीत अथवा आतंकित नहीं होते। भौतिक सुख उनमें असामान्य प्रसन्नता तथा दुख, दैन्य की सृष्टि नहीं कर पाते। वे दोनों में समान भाव से एकरस ही रहते हैं। उनका अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण है। वे अपनी आत्मा में स्थित हैं। यही उनकी स्थितप्रज्ञता का मूलमंत्र है।



मर्यादा पुरुषोत्तम राम

मनुष्य समष्टि एवं व्यष्टि भाव से मूलतः ईश्वर का ही अंश है। वह सृष्टि में आकर उसकी चकाचौंध में अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। माया के वशीभूत मन की प्रेरणानुसार सांसारिक कार्यक्रमों में संलग्न होता है, पर उसे शान्ति नहीं मिलती क्योंकि वह अपने मूलस्रोत से दूर जा पड़ता है। जीव अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति कर सके इसके लिए विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी मान्यताओं एवं आस्थाओं के अनुरूप उपाय सुझाए हैं। सभी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कोई न कोई शक्ति ऐसी अवश्य है जो कि विश्व के सारे कार्य-व्यापारों का संचालन कर रही है। आध्यात्मिकता के विश्वासी इसे ईश्वरीय तथा अन्य लोग प्राकृतिक शक्ति मानते हैं।

अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार ही विभिन्न धर्मों तथा संप्रदायों ने उस परम-प्रभु अथवा परमशक्ति की परिकल्पना की है, एकमात्र इसलिए कि उनके चिन्तन-स्तर के अन्तर के कारण उनकी मान्यताओं में अन्तर रहा है।

मान्यताओं के इस अन्तर के होते हुए भी सभी में एक बात समान रही है वह यह कि सब ने अपने चिन्तन-स्तर के अनुरूप अपने परम-प्रभु अथवा परमसत्ता की कल्पना सर्वोत्कृष्ट रूप में की है। जिस दिशा में भी उन्होंने सोचा है उसमें जो भी सर्वोपरि है उसी का आरोप अपने परमप्रभु अथवा परमसत्ता में किया है।

गोस्वामी जी इस परमसत्ता को परब्रह्म ही मानते हैं पर मानते हैं कि वह सुरों तथा भक्तों के हितसाधन हेतु निर्गुण से सगुण हो, धराधाम पर अवतरित होता है। श्रीराम भी इसी प्रकार ब्रह्म के अवतार ही हैं। वे विभिन्न हेतुओं से ही अवतरित होते हैं। गोस्वामी जी के श्रीराम जो कि उनके चरित नायक हैं, नरलीला में मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

जब मनुष्य चारों ओर से निराश हो जाता है तो अनायास ही उसका विश्वास परमसत्ता में स्थित हो जाता है। गोस्वामी जी के

समय भारत में चतुर्दिक विषमता तथा विपन्नता थी जिसका चित्रण उन्होंने बहुत कुछ कलिकाल के वर्णन में किया है। ऐसे समाज का एकमात्र संबल मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का आदर्श एवं मर्यादा पूर्ण जीवन ही हो सकता था। इस प्रकार एक ओर जहाँ गोस्वामी जी ने अपने आराध्य का चित्रण अपनी सर्वोत्कृष्ट कल्पना के चरम बिन्दु पर स्वाभाविक रूप से किया है वहीं तत्कालीन समाज के अपेक्षित दिशा निर्देशन की उनकी वृत्ति भी इसके मूल में सक्रिय रही है। इन्हीं के परिणाम स्वरूप वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का चित्रण कर सके हैं।

श्रीराम का मर्यादा पूर्ण चित्रण हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में अद्वितीय है। राम एवं मर्यादा एक दूसरे के पर्याय हो गए हैं। अन्य अनेक देवी-देवताओं के चरित्रांकन में साहित्यकारों ने अपनी रुचि के अनुसार अपेक्षित मर्यादा का निर्वाह नहीं कर पाया है। परिणामस्वरूप समाज के तथाकथित समझदार लोग अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं। साधारण देवी-देवताओं की बात कौन कहे अपनी अज्ञानता तथा वर्णन शैली की अस्पष्टता के कारण श्रीकृष्ण जैसे परम पावन चरित्र को भी अनेक लोग विकृत रूप में देखने का प्रयास करते हैं।

गोस्वामी के राम मर्यादा की प्रतिमूर्ति हैं। वे जाने या अनजाने कोई भी ऐसा कार्य नहीं करते जो कि मर्यादा की कसौटी पर खरा न उतर सके। इसीलिए तो उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नाम से अभिहित किया गया है। उनका जीवन प्रारंभ से अन्त तक मर्यादा की सीमा में ही सीमित दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः उनका अवतार ही मर्यादा के संस्थापनार्थ ही होता है। जब असुरों का उत्पात बहुत बढ़ जाता है, विप्र, धेनु, सुर तथा धरती सभी क्षुब्ध हो जाते हैं, उनकी स्वाभाविक मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं तभी उनकी पुनर्प्रतिष्ठा हेतु श्रीराम अवतरित होते हैं। उनका अवतरण भी एक मर्यादित अवसर पर ही होता है। न अधिक शीत है न अधिक घाम शीतल मंद सुंगधित वायु बह रहा है :—

मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विश्रामा।।

बाल 1-1९1

अपने अज्ञानवश, सती को भगवान शंकर के, बार-बार समझाने पर भी बोध नहीं होता। वे श्रीराम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से वन में सीता की खोज में तत्पर श्रीराम तथा लक्ष्मण के सामने से सीता के वेष में निकलती हैं। श्रीराम वास्तविकता को जानते हुए भी मर्यादा का निर्वाह करने में पिता सहित अपना नाम बता कर उन्हें प्रणाम करते तथा भगवान शंकर का समाचार पूछते हैं :—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
बाल ४-५३

पार्वती ने भगवान शंकर को पति रूप में प्राप्त करने हेतु कठोर व्रत किया। उधर भगवान शंकर भी श्रीराम के चरणों में नित्य नवप्रेम लगाए हुए हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने प्रकट होकर भगवान शंकर के व्रत की सराहना की। उन्हें पार्वती के जन्म का वृतांत बताया। श्रीराम ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक भगवान शंकर से प्रार्थना की कि वे पार्वती को पत्नी रूप में स्वीकार कर लें। इस प्रकार उन्होंने व्रत तथा प्रेम दोनों मर्यादाओं का निर्वाह किया :—

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिवाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु ॥ बाल ७६

श्रीराम, लक्ष्मण की जनकपुर-दर्शन की अभिलाषा का अनुमान कर गुरु विश्वामित्र से अनुमति माँगते हैं। अनुमति के बाद ही वे लक्ष्मण को नगर दिखाने के लिए जनकपुर ले जाते हैं। गुरु विश्वामित्र श्रीराम की इस नीति-परायणता और मर्यादा-पालन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। गोस्वामी जी ने इन अप्रतिम सुन्दर सुकुमारों की रूप-मोहिनी का वर्णन झरोखों से झाँकती हुई रमणियों द्वारा कराया है पर सब मर्यादा की सीमा के अन्तर्गत ही। वे परस्पर बात करती हुई कहती हैं कि जानकी के उपयुक्त वर श्रीराम ही हैं। इतना ही नहीं वे श्रीराम के सौंदर्य से इतना अधिक प्रभावित हैं कि मान लेती हैं कि यदि महाराज जनक इन्हें देख लेंगे तो अपना प्रण-त्याग कर जानकी जी के साथ इनका विवाह कर ही देंगे। इस प्रकार गोस्वामी जी ने अनिंद्य सौंदर्य के वर्णन को भी एक मर्यादा की ही सीमा में रखा है। नगर के बालकगण श्रीराम तथा लक्ष्मण से प्रेम से मिलते हैं तथा उनकी रुचि के अनुसार उनके बुलाने पर उनके पास जाते

हैं। धनुष-यज्ञशाला देखने में हुए विलंब से श्रीराम कुछ भयभीत हो रहे हैं कि कहीं गुरु विश्वामित्र अनुचित न मानें :—

जौ सखि इन्हहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ॥
बाल १-२२२

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मनमाहीं ॥
बाल ३-२२५

जनक की वाटिका में श्रीराम तथा लक्ष्मण गुरु-पूजा हेतु पुष्प लेने जाते हैं। वहाँ वे मालियों से अनुमति ले कर ही पुष्प-चयन प्रारंभ करते हैं। सीता जी भी उसी समय पार्वती के पूजन हेतु बहाँ आ जाती हैं। सीता के रूप-लावण्य का वर्णन करते हुए श्रीराम सहज स्वभाव से अनुज लक्ष्मण से सीता के कंकण, करधनी एवं नूपुर की ध्वनि को लक्ष्य करके कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कामदेव ने विश्वविजय की अभिलाषा से डंके पर चोट मारी हो। गोस्वामी जी ने मर्यादा का विशेष ध्यान रखा है। श्रीराम, सीता की शोभा को हृदय में रख पवित्र मन से, समय के अनुसार लक्ष्मण जी को सीता के संबंध में बताते हुए कहते हैं कि यही जानकी हैं जिसके लिए धनुष यज्ञ हो रहा है। इनकी अलौकिक शोभा को देखकर सहजरूप में पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है। आगे वे कहते हैं कि हमारे कुल के लोगों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे कुमार्ग पर पाँव नहीं रखते। मुझे तो अपने इस मन पर जिसने स्वप्न में भी परस्त्री पर कुदृष्टि नहीं डाली, बहुत विश्वास है :—

तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं ॥
बाल० १-२३१

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ॥
बाल० २-२३१

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी ॥
बाल० ३-२३१

उधर सीता श्रीराम की रूप माधुरी पर आकृष्ट हैं। वे उन्हें

एकटक देख रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो श्रीराम की शोभा देख कर उनके नेत्र थक गए हों तथा पलकों ने झँकना बन्द कर दिया हो। वे श्रीराम की शोभा देखने के उद्देश्य से ही मृग, पक्षी तथा वृक्षों को देखने के ब्याज से पुष्प वाटिका में घूम रही हैं। राम के प्रति उनका स्नेह बढ़ता ही जा रहा है :–

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेहँ देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
बाल० ३-२३२

देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥ बाल० २३४

जनक की पुष्प वाटिका में श्रीराम तथा सीता का पारस्परिक साक्षात्कार एवं एक दूसरे के प्रति स्नेह का जो मर्यादित वर्णन गोस्वामी तुलसीदास की समर्थ लेखनी द्वारा बन पड़ा है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह ऐसा प्रसंग है कि कवि-कर्म की कठिन परीक्षा होती है। यदि वे मर्यादापालन को ध्यान में रख कर श्रीराम तथा सीता की पारस्परिक स्नेहमयी भावना का समुचित वर्णन न कर पाते तो उसे कवि की असमर्थता एवं अपेक्षित कल्पना-शक्ति का अभाव ही माना जाता और यदि दोनों के स्नेह का खुला वर्णन करते तो इस अन्यथा स्थिति में मर्यादा का उल्लंघन हो जाता पर गोस्वामी जी ने इन दोनों का निर्वाह बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। श्रीराम तथा सीता के सौंदर्य एवं रूप-लावण्य का वर्णन भी मर्यादित रूप में किया गया है :—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नरनारी ॥
बाल० १-२२९

बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहि देखन जोगू ॥
बाल० ३-२२९

इसी प्रकार सीता के सौंदर्य एवं रूप माधुरी का वर्णन भी बहुत ही सुन्दर एवं मर्यादित ढंग से किया गया है ।

देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयँ सराहत बचन न आवा ॥
जनु बिरंचि रचि निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कँह प्रगट देखाई ॥
बाल० ३-२३०

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई । छबि गृहँ दीप सिखा जनु बरई ।
सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी ।।
बाल० ४-२३०

श्रीराम तथा सीता एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं पर उनमें पारस्परिक प्रेम की जो भी प्रतिक्रिया होती है वह मर्यादा की सीमा के भीतर ही रहती है। सीता जी श्रीराम के स्वरूप को नेत्रों के माध्यम से हृदय में लाकर वहीं सुरक्षित कर लेती हैं :—

लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हें पलक कपाट सयानी ।।
बाल० ४-२३२

धरि बड़ि धीर राम उर आने । फिरी अपनयउ पितुबस जाने ।।
बाल० ४-२३४

राम के प्रति राग रखते हुए भी सीता को इस बात की स्पष्ट अनुभूति है कि श्रीराम की प्राप्ति के लिए वे स्वतंत्र नहीं हैं, पूर्णतया पिता के अधीन हैं। सीता जी किंचित भयभीता हैं क्योंकि लौटने में विलंब हो गया है । इसके वर्णन में भी गोस्वामी जी ने मर्यादा का ध्यान रखा है। उधर श्रीराम भी सुख, स्नेह, शोभा तथा गुण की खान सीता को वापस जाती हुई जान कर उनके स्वरूप को अपनी चित्त रूपी भित्ति पर अंकित कर लेते हैं :—

प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन खानी ।।
बाल० १-२३५

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्हीं ।।
बाल० ३-२३५

पुष्प वाटिका में श्रीराम के साक्षात्कार के पूर्व सीता जी गिरिजा-गृह पहुँचती हैं। वे जिस रूप में प्रार्थना करती हैं वह भी मर्यादा की सीमा ही है। अन्यथा हो भी कैसे सकता है क्योंकि सीता भी तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की ही शक्ति हैं।

मोर मनोरथ जानहु नीके । बसहु सदा उर पुर सबही के ।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे बैदेहीं ।।
बाल० २-२३६

धनुष-यज्ञ-शाला में पधारने पर कवि सीता के सौंदर्य एवं सुषमा का जो वर्णन प्रस्तुत करता है वह अद्वितीय है। इसमें कहीं भी

शृङ्गाराभास अथवा अश्लीलता नहीं आने पाई है। यदि छवि रूपी अमृत सिंधु में परम रूप मय कच्छप, शोभा रूपी रस्सी तथा शृंगार रस रूपी पर्वत हो और स्वयं कामदेव ही अपने करकमलों से मंथन करें तो परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली, सौंदर्य तथा सुख का आधार लक्ष्मी को कवि गण संकोच सहित सीता तुल्य कह सकेंगे। यह है असीम सौंदर्य, जिसे देखते ही पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी मुग्ध हो जाती हैं। सामान्यतया स्त्रियाँ, स्त्रियों के सौंदर्य को देख ईर्ष्यालु होती हैं न कि मुग्ध पर सीता का सौंदर्य इतना अप्रतिम तथा प्राकृतिक है कि वे भी अपने सहज स्वभाव को भूल कर मुग्ध हो गईं। राम का रूप भी कुछ कम नहीं हैं। उनको और सीता को देख कर सभी की यही कामना होती है कि महाराज जनक अपना प्रण-त्याग इन दोनों का विवाह कर दें :—

जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
बाल० ४-२४७

एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल॥ बाल० २४७
रंग भूमि जब सिय पगु धारीं। देखि रूप मोहे नरनारी॥
बाल० २-२४८

× × ×

राम रूपु अरु सिय छवि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥
बाल० १-२४९

बड़े-बड़े शूरवीर राजाओं के असफल हो जाने पर गुरु विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीराम अत्यंत सहज रूप में धनुर्भंग के लिए उठते हैं। उनमें न तो हर्ष है और न विषाद। धनुष तोड़ देने पर भी वे नितांत मर्यादित रूप में ही व्यवहार करते हैं। सीता द्वारा जयमाल डाल देने पर दोनों की जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है कि मानो सौंदर्य एवं शृङ्गार एकत्र हो गए हों :—

सोहति सीय राम कै जोरी। छवि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी।
बाल० ४-२६५

कैकेयी के द्वारा बनवास की माँग करने पर भी उन के मन में

कैकेयी के प्रति कोई भी अनुचित प्रतिक्रिया नहीं होती। श्रीराम मर्यादा का पालन करते हुए उनको निज माता की ही भाँति सम्मान देते हैं और महाराज दशरथ के दुख का कारण अपनी चूक को ही मानते हैं। यह मर्यादा की चरम सीमा है :—

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ।।
अयो० ४-४२

× × ×

रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ।।
अयो० ४-४३

श्रीराम पूज्य पिता की इच्छा, माता के स्नेह तथा मित्रों के आग्रह से भी अपने निश्चय से डिगते नहीं क्योंकि यह मर्यादा के अनुकूल न होता। वे जाते समय भी अपने सेवकों का ध्यान रखने तथा सबसे अधिक महाराज दशरथ की प्रसन्नता का ध्यान बनाए रखने की प्रार्थना करते हैं। बन से सुमंत्र के लौटते समय भी वे कहते हैं कि विनयपूर्वक पिता जी को समझा दें कि वे मेरी चिन्ता किसी भी बात के लिए न करें। सुमंत्र द्वारा श्रीराम को बन से लौटा लाने का प्रयास करने पर श्रीराम अडिग ही रहते हैं तथा समझा-बुझा कर उन्हें वापस कर देते हैं और यह भी निवेदन करते हैं कि लक्ष्मण के अमर्यादित संदेश को पिता जी से न कहें :—

सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी ।।
अयो० ४-८०

पितु पद गहि कहि कोटि नति विनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि ।। अयो० ९५

पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ।।
अयो० २-९६

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन संदेस कहिअ जनि जाई ।।
अयो० ३-९६

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम पिता के मरण की बात जानकर अत्यंत दुखी होते हैं। इस बात से उन्हें विशेष कष्ट होता है कि महाराज के देहावसान का कारण उनके प्रति उनका स्नेह ही था। उस दिन निर्जल व्रत रखते हैं। अगले दिन कुल-रीति के अनुसार मुनि वशिष्ठ

के निर्देशन में विधि विहित रीति से पिता की सारी क्रियाएँ सम्पन्न कर, श्रीराम सांसारिक मर्यादानुसार शुद्ध हुए :—

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
अयो० २-२४८

श्रीराम का संपूर्ण जीवन-चरित मर्यादापूर्ण है। वे माता, पिता, भाई, सखा सभी के साथ मर्यादापूर्ण ही व्यवहार करते हैं। वे गुरु को सदैव अपेक्षित सम्मान देते हैं। उनके व्यवहार में आलस्य अथवा प्रमाद को कभी स्थान नहीं मिलता। वे गुरु विश्वामित्र के चरण दबाते हैं तथा सामान्य एवं असामान्य कोई भी कार्य उनकी आज्ञा के बिना नहीं करते, यहाँ तक कि अहल्योद्धार तथा धनुभंग भी उनकी आज्ञानुसार ही होता है।

गुरु वशिष्ठ के प्रति तो वे इतने विनम्र हैं कि उनकी विनम्रता तथा गुरु-सम्मान की मर्यादा देखते ही बनती है। गुरु वशिष्ठ जब श्रीराम से भरत की बात सुनकर निर्णय करने को कहते हैं तो उनका उत्तर श्रीराम जिस रूप में देते हैं वह मर्यादा की चरम सीमा है। वे कहते हैं कि सब का कल्याण इसी में है कि आपकी इच्छा का पालन किया जाय। पहले तो मुझे ही आज्ञा दी जाय जिसे सिरमाथे ले मैं उसका पालन करूँ। उसके बाद जिसको जो भी आज्ञा दी जायगी वह उसका पालन करेगा।

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथे मानि करौं सिख सोई ॥
अयो० २-२५८

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
अयो० ३-२५८

अयोध्या एवं जनकपुर से आए सभी नगर निवासियों एवं अन्य संभ्रान्त व्यक्तियों से भी राम बन में अत्यंत मर्यादित व्यवहार करते हैं। वे बन में रहने के कारण दोनों पक्षों के कष्टों के अनुमान से गुरु वशिष्ठ के पास पहुँच कर उनसे प्रार्थना करते हैं कि जो कुछ उचित हो वही करें क्योंकि सभी लोगों का कल्याण आप ही के हाथों में है—

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू ॥
उचित होइ सो कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरे हाथा ॥
अयो० ३-२६०

श्रीराम वन में भी सभी का स्वागत-सत्कार तो करते हैं पर किसी भी प्रकार पिता के वचन को मिटा बनवास अवधि के पूर्व अयोध्या लौटने को तैयार नहीं होते। अयोध्या लौटना तो दूर रहा वे वचनों की मर्यादा का पालन इतनी निष्ठा से करते हैं कि बनवास काल में गाँव में पैर नहीं रखते। गंगापार होने के पूर्व निषाद की प्रार्थना को स्वीकार न कर वे सिंसुपा वृक्षों के नीचे ही रात बिता देते हैं। बालि-बध के बाद सुग्रीव का राजतिलक लक्ष्मण को भेजकर कराते हैं। रावण-बध के पश्चात् लक्ष्मण एवं सुग्रीवादि उनकी आज्ञा से लंका जाकर विभीषण का राज तिलक कराते हैं। इस प्रकार श्रीराम किसी भी प्रकार किन्हीं भी परिस्थितियों में अपने आचरण से पिता के वचनों की मर्यादा को भंग नहीं होने देते :—

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥
अयो० ४-८८

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहिं जाई ॥
किष्किंधा ५-११

× × ×

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
किष्किंधा ४-१२

आइ विभीषन पुनि सिरु नायो। कृपा सिंधु तब अनुज बोलायो ॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवन्त मारुति नयसीला ॥
लंका १-१०६

सब मिलि जाहु विभीषण साथा। सारेहु तिलक कह्यो रघुनाथा ॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आप सरिस कपि अनुज पठावउँ ॥
लंका २-१०६

श्रीराम की शत्रुता की भी एक मर्यादा है। वे उस मर्यादा का पालन करते हैं। बालि के आहत हो, विनम्र हो जाने पर वे कहते हैं कि "अचल करौं तनु राखहु प्राना" तथा सुग्रीव को राजपद देने के साथ ही साथ अंगद को युवराज पद देते हैं। साथ ही तारा को समझा बुझा कर ज्ञान देते हैं। सुग्रीव से बालि का मृतक-कर्म करने की अपेक्षा करते हैं। ठीक उसी प्रकार रावण-बध के पश्चात श्रीराम,

भ्रातु वियोग से दुखी विभीषण पर कृपा दृष्टि डालते हैं तथा शोक त्याग रावण की मृतक-क्रिया करने का आदेश देते हैं :—

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा । मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा ।।
किष्किधा ४-११

× × ×

कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका ।।
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी । विधिवत देस काल जियँ जानी ।।
लंका ४-१०५

× × ×

श्रीराम अपनी ही नहीं दूसरों की मर्यादा का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं । उनकी सारी सेना समुद्र तट पर पहुँच गई है । वे समुद्र को सुखाकर भी सेना सहित पार हो सकते हैं पर वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । अस्तु लक्ष्मण की इच्छा के विपरीत भी विभीषण की सम्मति से समुद्र तट पर कुशासन डाल तीन दिन तक उससे मार्ग देने हेतु प्रार्थना करते हैं पर समुद्र नहीं चेतता । परिणामस्वरूप कराल बाण का संधान करते हैं । समुद्र बहुमूल्य भेंट लेकर उपस्थित होता है और कहता है कि आप जैसे चाहें करें फिर भी राम उसकी मर्यादा को बनाए रखने हेतु उसके सुझाव पर सेतु-बंधन करवाते तथा समुद्र पार होते हैं :—

सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ ।। सुन्दर ५६

श्रीराम मर्यादा को इस सीमा तक स्वीकार करते हैं कि वे नागपाश तथा शक्ति के प्रभावों को भी मान्यता देते हैं । मेघनाद उनसे युद्ध करते हुए ऐसे बाण छोड़ता है कि वे साँप बनकर श्रीराम को लगते हैं और इस प्रकार वे नागपाश से बँध जाते हैं :—

व्याल पास बस भए खरारी । स्वबस अनन्त एक अधिकारी ।।
लंका ६-७३

इसी प्रकार रावण विभीषण को लक्ष्य कर प्रचण्ड शक्ति का प्रहार करता है । श्रीराम विभीषण को अपने पीछे कर लेते हैं । परिणामस्वरूप उस प्रचण्ड शक्ति का आघात उन्हीं पर होता है और वे मूर्च्छित हो जाते हैं :—

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥
लंका १-६४

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
लंका २-६४

सामाजिक मान्यता है कि कोई भी महत्वपूर्ण कार्य करने के पूर्व उसमें सफलता की प्राप्ति हेतु अनुष्ठान किया जाय। इस मान्यता की पूर्ति हेतु सेतु-बंधन की परिसमाप्ति पर श्रीराम ने शिव की स्थापना का विचार बनाया। अनेक ऋषियों को बुलाकर विधि-पूर्वक शिवलिंग की स्थापना कर, पूजा की। श्रीराम का यह पावन कृत्य मर्यादा का पालन ही है :—

करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना ॥ लंका २-२
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
लंका ३-२

श्रीराम सामाजिक मर्यादाओं का भी भली-भाँति निर्वाह करते हैं। वे जनकपुर से बिदा होते समय सासुओं से जो व्यवहार करते हैं वह अति मर्यादा पूर्ण है। सासुएँ अत्यंत प्रेम से नगर, परिवार तथा सब की प्रिय सीता को किंकरी के रूप में राम को समर्पित करती हैं। श्रीराम, लोकमर्यादा के अनुसार उनका अनेक विधि सम्मान करते हैं और करबद्ध हो बार-बार प्रणाम कर विदा माँगते हैं :—

राम बिदा माँगत कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी ॥
बाल० २-३३७

इसी प्रकार राज्याभिषेक के पश्चात श्रीराम अपने सखा-सहायकों को विदा करने में भी लौकिक-मर्यादा का पूर्णरूपेण पालन करते हैं। प्रत्येक प्रमुख सहायक को वे वस्त्राभरण प्रदान कर अत्यंत स्नेह-मयी वाणी से उसे आश्वस्त कर, बिदा करते हैं। सुग्रीव, विभीषण, नल-नील को भाइयों तथा स्वयं अपने हाथों से वस्त्रधारण करवाते हैं। यह है सखाभाव एवं सहायकों द्वारा कृत सेवाओं की मान्यता की मर्यादा।

अंगद घर वापस नहीं जाना चाहते। वे श्रीराम की सेवा में ही जीवन व्यतीत कर देना चाहते हैं। श्रीराम अंगद की विनम्रता से

द्रवित हो कर उन्हें अपने चरणों से उठा कर हृदय से लगा लेते हैं। भाव-विह्वलता के कारण उनके नेत्रों से अश्रुधारा का प्रवाह होने लगता है। श्रीराम स्वयं अपने वस्त्राभरण अंगद को पहना कर अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर उन्हें विदा करते हैं।

अंत में श्रीराम निषादराज को बुलाते हैं। उन्हें वस्त्राभूषण तथा प्रसाद देकर कहते हैं कि घर जाकर मेरा स्मरण करते रहना तथा मन, वचन, कर्म के अनुसार आचरण करना। तुम मुझे भरत के समान प्रिय हो, नगर में आते-जाते रहना। निषादराज भाव-विभोर हो श्रीराम के चरण पकड़ लेते हैं। वे राम के चरणकमलों को हृदय में धारण करके घर आते हैं तथा अपने नगर-वासियों को श्रीराम के मर्यादापूर्ण चरित का विवरण देते हैं, जिसे जानकर वे श्रीराम को धन्य मानते हैं।

जामवन्त नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हियँ धरि रामरूप सब चले नाइ पद माथ॥ उत्तर १७ (क)

× × ×

निज उरमाल बसन मनि बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥ उत्तर १८ (ख)
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
उत्तर २-२०

श्रीराम मित्रता की मर्यादा का भी पूर्णरुपेण निर्वाह करते हैं। सुग्रीव के मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और वे श्रीराम से ऐसी कृपा की याचना करते हैं जिससे सब कुछ त्याग कर उनका ही भजन दिन-रात कर सकें। श्रीराम उत्तर में कहते हैं कि आप जो कुछ भी कह रहे हैं सब सत्य है पर मेरा निश्चय बदल नहीं सकता। अन्ततः बालि का बध तथा सुग्रीव का राज्याभिषेक होता है।

विभीषण शराणागत होने के लिए श्रीराम के पास आते हैं। सुग्रीव सम्मति देते हैं कि राक्षस बड़े मायावी होते हैं अस्तु इसे बाँध कर रखा जाय। श्रीराम इस अवसर पर जो उत्तर देते हैं उससे पता चलता है कि उनके मन, कर्म तथा वचन में मैत्री-निर्वाह की कितनी उच्चकोटि की भावना है। वे सुग्रीव से कहते हैं कि विभीषण चाहे जिस विचार से भी आया हो जब वह शरण में आ गया है तो

उसे संरक्षण मिलेगा ही। जहाँ तक राक्षसों से युद्ध का प्रश्न है लक्ष्मण एक निमिष मात्र में ही विश्व के समस्त राक्षसों का विनाश कर सकते हैं। श्रीराम ऐसा कहकर भी आत्मा-प्रशंसा से बचने की मर्यादा का पालन करते हैं। अन्यथा पृथ्वी को राक्षस हीन करने की प्रतिज्ञा तो उन्हीं का कार्य है। इतना ही नहीं श्रीराम विभीषण को वह राज्य अनायास ही सौंप देते हैं जो कि रावण को भगवान शंकर ने अनेक शिरों की आहुति देने पर दिया था।

अब कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥

किष्किंधा ११-७

जो कुछ कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई ॥

किष्किंधा १२-७

× × ×

कोटि बिप्रबध लागहि जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥

सुन्दर १-४४

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते ॥

सुन्दर ४-४४

बन में घूम-घूम कर श्रीराम ऋषियों-मुनियों से मिल रहे हैं। इस मिलन में वे पूर्णतया सांसारिक मर्यादा का पालन करते हुए इन सभी को प्रणाम कर इनका सम्मान कर रहे हैं। सभी को श्रीराम अभय कर रहे हैं। अस्थि-समूह के संबंध में जिज्ञासा करने पर श्रीराम को पता चलता है कि राक्षसों ने जिन ऋषियों-मुनियों को खा लिया है उन्हीं की ये अस्थियाँ हैं। श्रीराम का क्षत्रियत्व जागृत होता है और उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए ही वे भुजा उठा कर प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं समग्र पृथ्वी को राक्षसहीन कर दूँगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा उनकी वीरता तथा दृढ़ निश्चय का ही परिणाम थी। यदि वे ऐसा न करते तो संभवतः क्षात्र-धर्म एवं राजधर्म की मर्यादा सुरक्षित न रह पाती।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ अर०-९

प्रत्युपकार के प्रति कृतज्ञता का होना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यदि कोई इसके विपरीत आचरण करता है तो समाज उसे बड़ी

बुरी दृष्टि से देखता तथा कृतघ्न की संज्ञा देता है। गृध्रराज जटायु सीता जी को रावण के चंगुल से मुक्त कराने में बुरी तरह आहत हो जाते हैं। सीता जी को खोजते समय श्रीराम की उनसे भेंट होती है। श्रीराम करस्पर्श कर उनकी पीड़ा दूर कर देते हैं और उनसे सीता हरण का सारा वृत्तान्त ज्ञात करते हैं। श्रीराम गृध्रराज से शरीर रखने को कहते हैं पर अवसर की विशिष्टता को ध्यान में रख कर वे इसे स्वीकार नहीं करते। तब श्रीराम कहते हैं कि आप सीता-हरण की इस घटना को मेरे स्वर्गवासी पिता दशरथ से न कहिएगा यदि मैं वस्तुतः राम हूँ तो रावण सपरिवार मृत्यु को प्राप्त हो कर इसका वर्णन पिता जी से करेगा।

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि रामछबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥ अरण्य ३०

× × ×

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसकाइ कही तेहि बाता॥
अरण्य ३-३१

× × ×

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥
अरण्य ३१

इस प्रकार श्रीराम कृतज्ञता तथा क्षत्रियोचित विचारों दोनों की मर्यादा का पूर्णरूपेण पातल करते हैं।

रामराज्य स्वयं में सुराज की मर्यादा की एक सीमा है। इस विषय पर स्वतंत्र रूप से आगे विचार किया जायगा अस्तु यहाँ इतना ही लिपिबद्ध करना पर्याप्त होगा कि श्रीराम के अन्य मर्यादित कार्यों की ही भाँति ही उनका राज्य-संचालन भी मर्यादा की एक सीमा था। आज भी वह सुराज का पर्यायवाची है।

श्रीराम के मर्यादित जीवन चरित्र से एकमात्र कुछ उदाहरण ही दिए गए हैं। वैसे तो उन्होंने जो कुछ भी किया है वह सब मर्यादित ही है अथवा यों कहें कि विभिन्न लीलाओं में उनके क्रिया-कलापों से ही मर्यादा की सीमा-रेखा निर्धारित होती है। वशिष्ठ जी ने ठीक ही कहा है :—

धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम ।। अयो० २४८

रावण-संहार के पश्चात् सीताजी ससम्मान विभीषण तथा हनुमानादि द्वारा श्रीराम के पास लाई जाती हैं। वे लंका में रही थीं। सामान्य रूप से समाज में इस बात को अच्छा नहीं माना जाता है कि कोई भी स्त्री अपने पतिपार्श्व से अलग किसी अन्य पुरुष के नगर में रहे। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं अस्तु वे इस मर्यादा का भी अतिक्रमण नहीं करते और इस प्रकार की बातें सीता जी से कहते हैं कि वे अपने सतीत्व की कसौटी के लिए अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं। अग्निदेव उन्हें श्रेष्ठतर रूप में श्रीराम के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इस कृत्य द्वारा एक और मर्यादा की रक्षा हो जाती है। श्रीराम के निर्देश से वास्तविक सीता ने अग्नि में प्रवेश कर लिया था। इस मर्म को अन्य लोगों के जानने की बात कौन कहे लक्ष्मण जी भी नहीं जानते थे। अब छाया-सीता के स्थान पर वास्तविक सीता को प्रकट करना था अस्तु श्रीराम ने लांछन युक्त बातें कहीं जिससे पूर्व रहस्य की मर्यादा बनी रहे तथा वास्तविक सीता प्रकट भी हो सकें :—

तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब लागीं करै विषाद ।। लंका १०८

× × ×

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहूँ न लखे नभ सुर मुनि देखहिं खरे ।।
लंका (छ) १-१०६ (क)

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी अनि सो ।।
लंका (छ) २-१०६ (क)

रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने आध्यात्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक सिद्धान्तों एवं व्यावहारिक पक्षों के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं वे आज भी यथातथ्य प्रतीत होते हैं। परिणामस्वरूप रामायण के प्रत्येक अनुशीलनकर्ता को उसकी रुचि के अनुसार अपेक्षित सामग्र मानस में मिल जाती है। रामचरित मानस की सर्व-प्रियता तथा सार्वभौमता का यह भी एक कारण है पर सबसे बड़ा कारण है मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मर्यादापूर्ण जीवन की झाँकी। प्रत्येक परि-

स्थिति के लिए मर्यादा क्या है इसका स्पष्ट चित्र श्रीराम के जीवन-चरित्र में मिल जाता है। जीवन को उन्नत बनाने तथा उच्चादर्शों की प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन चरित प्रेरणा-स्रोत है और आगे भी वह ऐसा ही बना रहेगा।

वर्तमान समय की चतुर्दिक विषमताओं का संभवतः एकमात्र समाधान भी यही है कि हम आपाधापी को छोड़ कर मानव-जीवन के मूल उच्चादर्शों पर एकमात्र दृष्टि ही न रखें अपितु उनके अनुसार आचारण करने का भी प्रयास करें। इस प्रयास में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन समाज के लिए प्रकाश स्तंभ का कार्य करेगा।



गुरुजनोनुगामी राम

श्रीरामचरित, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श चरित है। वे माता, पिता, गुरु तथा अन्य सभी गुरुजनों के आज्ञापालक एवं सम्मान-कर्ता के रूप में आचरण करते हैं।

वे प्रातःकाल उठ कर पहले माता-पिता तथा गुरु को प्रणाम करते हैं और उनकी आज्ञा लेकर नगर-कार्यों का संपादन करते हैं। उनके इस चरित्र को देख कर महाराज दशरथ प्रसन्न होते हैं :—

प्रातकाल उठ के रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु माँगि करहि पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।
बाल ४-२०५

गुरुजनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान माता का है। श्रीराम अपनी माता कौशल्या की आज्ञा का तो पालन करते ही हैं अन्य माताओं-सुमित्रा तथा कैकेयी की आज्ञाओं का पालन भी समान निष्ठा एवं सम्मान के साथ करते हैं। मंथरा कैकेयी को राम के राज्याभिषेक की सूचना क्षुब्ध मन एवं ईर्ष्या के भाव से देती है। कैकेयी श्रीराम तथा भरत में अन्तर नहीं मानतीं श्रीराम से कुछ अधिक ही स्नेह रखती हैं क्योंकि उन्होंने परीक्षा लेकर इस बात को जान लिया है कि श्रीराम उन्हें अपेक्षाकृत अधिक स्नेह तथा सम्मान देते हैं। अस्तु वे मंथरा की बात को अच्छा नहीं मानतीं और उसकी भर्त्सना करती हैं।

मंथरा के जाल में फँस कैकेयी जब श्रीराम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगती हैं; महाराज दशरथ शोक-विह्वल हो मूर्च्छित हो जाते हैं। कैकेयी बहुत ही निर्दयता से निस्संकोच हो श्रीराम को चौदह वर्ष के वनवास की बात बताती हैं और कहती हैं कि महाराज दशरथ को उनका बड़ा संकोच है वे उन्हें वन जाने को नहीं कह पावेंगे। यदि वे समर्थ हों तो महाराज दशरथ की आज्ञा का पालन कर उनके भीषण कष्ट के मिटाने का प्रयास करें। श्रीराम सहर्ष माता कैकेयी की इस आज्ञा का पालन करने को प्रस्तुत हो जाते हैं और कहते हैं कि हे माता ! वही पुत्र भाग्यवान है जो कि माता-पिता का

आज्ञा पालक हो। बनगमन मेरे लिए सर्वप्रकार हितकारी होगा क्योंकि वहाँ मुनियों से मिलने का सुअवसर मिलेगा फिर पिता की आज्ञा एवं आपकी सम्मति के कारण यह और भी कल्याणप्रद होगा। श्रीराम को विश्वास नहीं होता कि एकमात्र इतने छोटे से कारण से महाराज दशरथ इतने दुखी हैं। हो न हो उनसे कोई न कोई अपराध बन पड़ा है। श्रीराम के इस संदेह के समाधान में कैकेयी जो कुछ कहती है उससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि श्रीराम माता-पिता के कितने आज्ञापालक हैं :—

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुख दाता ॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम पितु मातु बचन रत अहहू ॥
अयो० २-४३

कैकेयी से अपने वनवास की बात जान कर श्रीराम माता कौशल्या से बन जाने के पूर्व उनकी अनुमति तथा आशीर्वाद लेने के लिए उपस्थित होते हैं। श्रीराम माता से प्रसन्न मन से आज्ञा देने की बात कहते हैं जिससे कि बनयात्रा मंगलमय हो। वे यह भी प्रार्थना करते हैं कि भूल कर भी स्नेहवश भयभीत न हों, आपकी कृपा से सब आनन्द ही होगा। माता कौशल्या लंबे ऊहापोह के बाद यह कहते हुए बन जाने की अनुमति दे देती हैं कि यदि एकमात्र पिता ने बन जाने को कहा हो तो माता को बड़ी जान कर मत जाओ पर यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा हो तो बन सैकड़ों अयोध्या के समान है—

जौं पितु मात कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥
अयो० १-५६

भरत, माताओं तथा अन्य अयोध्या वासियों के साथ श्रीराम को अयोध्या लौटा लाने हेतु चित्रकूट पहुँचते हैं। चित्रकूट पहुँचने पर राम माताओं से श्रद्धा तथा सम्मान पूर्वक मिलते हैं। साथ आने वाली गुरपत्नी तथा अन्य ब्राह्मण-पत्नियों की भी चरण-बन्दना श्रीराम करते हैं। उनका सम्मान पवित्र गंगा तथा गिरिजा के रूप में करते हैं :—

गुरतिय पद बन्दे दुहु भाई। सहित बिप्रतिय जो सँग आईं ॥
गंग गौरि सम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं ॥
अयो० १-२४५

लंका-विजय के पश्चात अयोध्या लौटने पर श्रीराम सभी माताओं से अत्यधिक प्रेम से मिलते हैं :—

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अन्त पुर रुख स्रवत थन हुँकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहु बिधि कहे॥
गइ विषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

•उत्तर छन्द ०-६ (क)

श्रीराम पिता के कितने अनुगामी हैं इसका अनुमान तो इस बात से ही लग जाता है कि पिता के वचनों को मान कर ही वे चौदह वर्षों तक बन में रहते हैं। पिता की विह्वलता का ज्ञान होते ही वे उनके पास पहुँचते हैं और कैकेयी से बनवास की बात जानकर कहते हैं कि छोटी सी बात के लिए पिता को इतना अधिक दुख, मुझे इसका विश्वास नहीं होता। लगता है कि मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है :—

थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

अयो० ३-४२

राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥

अयो० ४-४२

श्रीराम अयोध्या छोड़ते समय सभी नगर निवासियों तथा गुरु वशिष्ठ से प्रार्थना करते हैं कि वे सब ऐसा करें कि महाराज दशरथ तथा माताएँ उनके वियोग से दुखी न हों :—

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत राम सब सन मृदुबानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥

अयो० ४-८०

मातु सकल मोरे बिरहँ जेहि न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन॥ अयो० ८०

बन में गुरु वशिष्ठ सभी उपस्थित लोगों को संबोधित कर जो कुछ कहते हैं उससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि श्रीराम माता-पिता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं :—

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू।
गुरु पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥

अयो० २-२५४

लंका-विजय के समय दशरथ जी वहाँ पधारते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण सहित उनकी पद-वन्दना कर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। श्री राम अत्यंत विनम्रता पूर्वक अपनी रावण-विजय का श्रेय, पिता के पुण्य-प्रभाव को ही देते हैं :—

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये। तनय बिलोकि नयन जल छाये ॥
अनुज सहित प्रभु बन्दन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा ॥
लंका १-११२

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ ॥
लंका २-११२

श्रीराम का जीवन इतना अनुशासित एवं मर्यादित है कि वे गुरु की अनुमति के बिना कोई कार्य करते ही नहीं। जनकपुर-दर्शन, पुष्प-वाटिका से पुष्पचयन आदि सभी कार्य उनकी अनुमति से ही करते हैं। नगर-दर्शन में कुछ अधिक समय लग गया है अस्तु लौटने पर भय संकोच तथा विनम्रता के साथ गुरु विश्वामित्र के चरणकमलों में सिर झुका कर उनकी आज्ञा से बैठते हैं :—

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥ बाल० २२५

गुरु की मान्यता श्रीराम के मन में कितनी है इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि गुरु विश्वामित्र के शयन करने के बाद श्रीराम-लक्ष्मण उनके पैर दबाते हैं। वे उनकी सेवा में न तो थकते हैं और न ही संकोच करते हैं। गुरु जब बार-बार उनको सोने की आज्ञा देते हैं तभी वे सोने जाते हैं :—

मुनिबर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
बाल० २-२२६

बार-बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥
बाल० ३-२२६

श्रीराम गुरु की अधीनता तथा संकोच इतना अधिक मानते हैं कि उनके विवाह की बारात महाराज दशरथ के साथ जनकपुर पहुँच गई। उनके मन में पिता के दर्शनों की तीव्र अभिलाषा है पर वे गुरु विश्वामित्र की अनुमति के बिना पिता के दर्शनों के लिए भी नहीं जाते। यह है गुरु का सम्मान :—

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं । पितु दरसन लालचु मनमाहीं ।।
विस्वामित्र बिनय बड़ि देखी । उपजा उर संतोषु बिसेषी ।।
बाल० ३-३०७

श्रीराम का राज्याभिषेक होने वाला है । महाराज दशरथ समयोचित उपदेश देने हेतु गुरु वशिष्ठ को श्रीराम के निवास स्थान पर भेजते हैं श्रीराम, गुरु के आगमन की बात को सुनते ही गृह-द्वार पर उपस्थित हो गुरु का अभिवादन करते हैं । अर्घ्य देकर सम्मानपूर्वक उनको घर में लाते तथा षोडशोपचार से उनकी पूजा करते हैं । सपत्नीक पुनः चरण पकड़ कर कहते हैं कि सेवक के घर स्वामी का आगमन ही अमंगल का नाश करने वाला तथा मंगल का मूल है फिर भी उचित यही था कि मुझ सेवक को ही स्वामी ने बुला लिया होता । स्वामी ने स्वामित्व-भाव को त्याग कर स्नेह से इस घर को पवित्र कर दिया है । जो भी आज्ञा हो उसका पालन करूँ जिससे सेवक को स्वामी की सेवा का अवसर मिले :—

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ।।
अयो० १-६

सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले रामु कमल कर जोरी ।।
अयो० २-६

× × ×

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आज यह गेहू ।।
आयसु होइ सो करौं गोसाईं । सेवक लहइ स्वामि सेवकाईं ।।
अयो० ४-६

श्रीराम को अपने गुरु तथा उनकी कृपा-सामर्थ्य में अमोघ विश्वास है । वे कहते हैं कि जिनका प्रेम गुरु चरणों में है वे लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टियों से भाग्यवान हैं —

जे गुरु पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी ।।
अयो० ३-२५६

चित्रकूट में भरत को समझाते तथा आश्वासन देते श्रीराम कहते हैं कि पिता की अनुपस्थिति में एकमात्र गुरु की कृपा ने ही हम लोगों

१०

को विनाश से बचा रखा है। पिता की असामयिक मृत्यु के परिणाम-स्वरूप होने वाले संभावित उत्पात से गुरु वशिष्ठ तथा मिथिलापति जनक जी ने ही हमें बचा लिया है। वे बड़े ही विश्वास के साथ अनुज भरत को आश्वस्त करते हैं कि राज-कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी तथा घर सभी की रक्षा गुरु का प्रभाव करेगा और अन्ततः परिणाम शुभ ही होगा :—

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी।
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू।।
अयो० ३-३०५

तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा।।
अयो० ४-३०५

राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम।। अयो० ३०५

लंका-विजय के बाद अयोध्या लौटने पर श्रीराम दौड़ कर गुरु के चरणकमलों को पकड़ लेते हैं। गुरु के कुशल समाचार पूछने पर कहते हैं कि आपकी कृपा ही हमारी कुशलता है।

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया।।
उत्तर २-५

अपनी लंका-विजय का कारण भी श्रीराम, गुरु की कृपा को ही मानते हैं। उनका यह विश्वास इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि वे गुरु में कितनी प्रगाढ़ श्रद्धा रखते हैं :—

गुरु बसिष्ट कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे।।
उत्तर ३-८

श्रीराम, गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही अपनी जटाओं को सुलझा कर स्नान करते हैं। इससे स्पष्ट है कि महत्वपूर्ण बातों में ही नहीं सामान्य बातों में भी वे गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं :—

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुरु अनुसासन मागि नहाए।।
उत्तर ४-११ (क)

राजसिंहासनासीन होने के बाद एक समय गुरु वशिष्ठ श्रीराम के पास आए। श्रीराम ने उनका बहुत अधिक सम्मान किया तथा उनके चरणों को धोकर चरणामृत लिया :—

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुख धाम सुहाए ।।
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा ।।
उत्तर १-४८

श्रीराम, माता, पिता तथा गुरु की आज्ञाओं का तो अनुमान करते ही हैं, साथ ही साथ अन्य गुरुजनों को भी सम्मान देते तथा आज्ञा का पालन करते हैं। श्वसुर महाराज जनक को वे बहुत अधिक सम्मान देते हैं। चित्रकूट में भरत के पहुँचने के बाद राजा जनक भी वहीं पहुँच जाते हैं। श्रीराम, भाई, मंत्री, गुरु तथा अन्य अयोध्या-वासियों के साथ उनकी अगवानी करते हैं :—

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा ।।
अयो० १-२७५

राम को अयोध्या लौटा ले जाने के प्रयास में भरत संलग्न हैं। गुरु वशिष्ठ श्रीराम को सभी बातों को समझ-बूझ कर उचित निर्णय लेने को कहते हैं। महाराज जनक और भरत के बीच में हुए बिचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए श्रीराम करबद्ध हो निवेदन करते हैं कि आप तथा मिथिलेश्वर यहाँ विद्यमान हैं आप लोगों की उपस्थिति में मेरा कुछ भी कहना अनुचित होगा। वे सशपथ कहते हैं कि आप तथा महाराज जनक की जो भी आज्ञा होगी वही सभी को शिरोधार्य होगी :—

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू ।।
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई ।।
अयो० ४-२६६

श्रीराम सासु तथा अन्य ऋषियों-मुनियों एवं ब्राह्मणों की पद-बन्दना कर उन्हे चित्रकूट से विदा करते हैं :—

सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई ।।
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली ।।
अयो० ३-३१९

श्रीराम माता-पिता संबंधियों तथा गुरु के प्रति ही श्रद्धा एवं आज्ञाकारिता का भाव नहीं रखते अपितु कैकेयी के संकेत पर सुमंत्र श्रीराम को बुलाने के लिए उनके पास आते हैं। श्रीराम सुमंत्र का आदर पिता के समान करते हैं :—

राम सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ।।
अयो० ३-३६

बन से सुमंत्र को लौटाते समय श्रीराम उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि -आप भी पिता की ही भाँति मेरे हितैषी हैं । आपका हर प्रकार से वही कर्तव्य होगा जिससे कि पिता हमारी चिन्ता से दुखी न हों :—

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें । बिनती करउँ तात कर जोरें ।।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें । दुख न पाव पितु सोच हमारें ।।
अयो० १-६६

श्रीराम ने अपने मर्यादापूर्ण जीवन में सदैव ही गुरुजनों का सम्मान तथा उनकी आज्ञाओं का निष्ठापूर्वक पालन किया है । यदि समाज उनके इन जीवनादर्शों से अनुप्राणित हो उसे व्यवहार में लाने का प्रयास करे तो हमारी अनेक वर्तमान समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जायगा क्योंकि श्रीराम ने अपने जीवन में जिन मानव-मूल्यों को मान्यता दी थी वे शाश्वत होने के नाते आज भी उतने ही उपयोगी तथा प्रभावी है जितने कि तत्समय थे ।



सहज स्वभाव सुशील राम

श्रीराम का स्वभाव अकृत्रिम तथा सहज है। वे मन, वचन एवं कर्म में एक रस है। इसका एक मात्र कारण है कि वे कोई ऐसा काम ही नहीं करते जिसमें संकोच, लज्जा, अथवा भय का अवसर उपस्थित हो। जनक की पुष्प-वाटिका में सीता के साक्षात्कार से उनके मन पर जो भी प्रभाव प्रड़ता है उसका यथातथ्य विवरण वे अनुज लक्ष्मण के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। सीता की अलौकिक शोभा से उत्पन्न अपने पवित्र मन के क्षोभ की बात बताते हुए कहते हैं कि इसका वास्तविक कारण तो भगवान ही जानें पर मेरे शुभांगों में फड़कन हो रही है। रघुवंशियों का स्वभाव ही ऐसा है कि हमारा मन कुमार्ग पर जाता ही नहीं। मुझे अपने उस मन पर पूर्ण विश्वास है जिसने कभी भी परस्त्री पर कुदृष्टि नहीं डाली।

श्रीराम इतने सहज स्वभाव तथा सरल हृदय हैं कि उन्होंने जनक की पुष्प-वाटिका में हुए सीता-दर्शन की सारी बातें ज्यों की त्यों निश्छल भाव से गुरु विश्वामित्र से कह दीं :—

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

बाल० १-२३७

राम के स्वभाव में स्थायी सहजता है। प्रत्येक परिस्थिति में उनकी यह सहजता बनी रहती है। धनुध-यज्ञ में धनुष उठाने की बात कौन कहे उसे कोई राजा तिल भर खिसका भी नहीं सका। महाराज जनक क्षुब्ध हैं यह जानकर कि अब सीता को कुमारी ही रहना पड़ेगा। वे स्वयंवर-सभा में कहते हैं कि मैंने जान लिया कि पृथ्वी वीरों से खाली है। उनकी यह बात लक्ष्मण जी को अखर जाती है और वे बहुत कुछ कह जाते हैं पर श्रीराम शांत बने रहते हैं। जब गुरु विश्वामित्र आज्ञा देते हैं तब सहज स्वभाव से उठ खड़े होते हैं :—

ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृग राजु लजाएँ॥

बाल० ४-२५४

धनुर्भंग के घोर शब्द को सुनकर परशुराम जी स्वयंवर-सभा में पहुँच जाते हैं। धनुष के खण्डों को देखकर परशुराम जी महाराज जनक से पूछते हैं कि "कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा"। सभी राजागण भयभीत होकर चुप हो जाते हैं पर लक्ष्मण जी से यह सब सहन नहीं हो पाता और वे परशुराम जी की बातों का प्रतिवाद करते हैं। बात बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ जाती है और परशुराम का क्रोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब श्रीराम सहज भाव से कहते हैं कि हे नाथ ! शंभु धनुष को तोड़ने वाला आप का कोई दास ही होगा। कहें मेरे लिए क्या आज्ञा है ? परशुराम ने कहा कि शिवधनुष तोड़ने वाला सहस्त्रबाहु की भाँति मेरा शत्रु है। उसको अलग कर दिया जाय अन्यथा सभी राजा मारे जायेंगे। इस पर लक्ष्मण ने पुनः चुटकी ली। परशुराम तथा उनमें वाद-विवाद प्रारंभ हो गया। श्रीराम ने देखा कि यह विवाद एक सीमा छूने वाला है तब उन्होंने अत्यंत विनम्रता पूर्वक कहा कि हे स्वामी ! सीधे, अज्ञान बालक पर क्रोध न करें। यदि वह आपके प्रभाव को जानता तो बराबरी न करता। इस प्रकार उन्होंने परशुराम को शांत करने हेतु अनेक प्रार्थनाएँ कीं। श्रीराम के विनम्र वचनों को सुन परशुराम कुछ शान्त हुए :—

नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ।।
आयसु कहा करिअ किन मोही। सुन रिसाइ बोले मुनि कोही ।।

बाल १-२७१

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ।।
जौं पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना ।।

बाल० १-२७१

परशुराम कुछ शांत होते हैं पर लक्ष्मण जी के मुस्काराने पर वे पुनः भड़क उठते हैं। श्रीराम नेत्रों के संकेत से लक्ष्मण को चुप कराते हैं। वे प्रतिकूल वार्ता बन्द कर गुरु विश्वामित्र के पास चले जाते हैं। श्रीराम ने करबद्ध हो अत्यंत विनम्र मधुर तथा शीतल वाणी में परशुराम जी से प्रार्थना की कि वे बालक की बातों को ध्यान में न लावें क्योंकि बालकों एवं बरें का एक सा स्वभाव होता है। संतगण इनको कभी भी दोष नहीं देते फिर उसने तो कुछ बिगाड़ा

भी नहीं है। धनुष तोड़ने का अपराध तो मुझसे हुआ है। कृपा, क्रोध, बध अथवा बंधन आप जो कुछ भी करना चाहें मेरे ऊपर दास की तरह करें। वही उपाय करें जिससे आपका क्रोध शांत हो सके। और आगे वे कहते हैं कि हे स्वामी मुझे दास जानकर वही कहिए जिसके करने से आपका क्रोध शांत हो सके। आपके हाथ में फरसा है और मेरा सिर आपके आगे है।

बररै बालक एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
बाल० २-२७६

कृपा कोपु बधु बधब गोसाईं। मोपर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिसि जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥
बाल० ३-२७६

× × ×

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिसि जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपुन अनुगामी॥
बाल० ४-२८१

श्रीराम, परशुराम के युद्धाह्वान को लक्ष्य कर के सहज स्वभाव से कहते हैं कि स्वामी तथा सेवक में कैसा युद्ध? आपके वीर वेष को देखकर ही लक्ष्मण ने कुछ बातें कहीं हैं। उसका भी कोई दोष नहीं है। आप क्रोध का त्याग करें। अज्ञानी की भूल को क्षमा करें। विप्र के हृदय में कृपा का भाव अत्यधिक होना चाहिए। हे बिप्रवर! हम हर प्रकार से आपसे हारे हुए हैं। हमारे अपराधों को क्षमा करें :—

प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्र बर रोसु॥
बेषु बिलोकें कहेसि कुछ बालकहू नहिं दोसु॥ बाल० २८१

× × ×

छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी॥
बाल० २-२८२

× × ×

सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥
बाल० ४-२८२

इतनी विनम्रता तथा अनुनय-विनय पर भी जब परशुराम का क्रोध

शांत नहीं होता तब श्रीराम कहते हैं कि हे मुनि ! विचार कर कहें, मेरा अपराध बहुत छोटा सा है पर आप क्रोध बहुत अधिक कर रहे हैं। छूते ही पुराना धनुष टूट गया तो मैं किस बात का अभिमान करूँ ? यह सब कहने में भी उन्होंने अपनी सहज विनम्रता को बनाए रखा :—

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी।।
छुअतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।।
बाल० ४-२८३

श्रीराम के स्वभाव में संकोच कितना है इसका पता इससे चलता है कि जब महाराज दशरथ के बारात लेकर पहुँचने की सूचना श्रीराम को मिलती है तो उनके मन में स्वाभाविक रूप से पिता के दर्शनों की इच्छा उत्पन्न होती है पर वे संकोच वश इस बात को विश्वामित्र से कह नहीं पाते। गुरु विश्वामित्र को जब इस बात का पता चलता है तो वे श्रीराम की विनम्रता तथा सुशीलता से अत्यधिक संतुष्ट होते हैं :—

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मनमाहीं।।
विस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु विसेषी।।
बाल ३-३०७

राम का राज्याभिषेक संपन्न होने वाला है। इस बात को जान कर उनके बाल सखा दस-पाँच के समूह में मिल कर अपनी शुभ-कामनाएँ देने हेतु उनके पास जाते हैं। इन लोगों से श्रीराम सहज एवं सुन्दर ढंग से मिलते हैं तथा कुशल-क्षेम पूछते हैं। श्रीराम से समाहीत हो बालकों के समूह पर उनके बड़प्पन, शील तथा स्वभाव की ऐसी छाप पड़ती है कि श्रीराम की भाँति संसार में इनका निर्वाह करने वाला अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं है :—

बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं।।
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूँछहि कुसल खेम मृदुबानी।।
अयो० १-२४

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई।।
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा।।
अयो० २-२४

दैवयोग से मंथरा की बुद्धि परिवर्तित हो गई। उसने कुटिलता की अनेक बातें कर कैकेयी की भी मति फेर दी। कैकेयी ने अपने दो सुरक्षित वर महाराज दशरथ से माँग लिए। एक से भरत के लिए युवराज-पद तथा दूसरे से राम के लिए चौदह वर्षों का वनवास। महाराज दशरथ सहम गए। उन्हें सहसा विश्वास नहीं हो पा रहा है कि कैकेयी परिहास कर रही है अथवा सचमुच राम को बन भेजना चाहती है। इस पर महाराज कैकेयी से जो कुछ कहते हैं उससे श्रीराम के शांत एवं सहज स्वभाव पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। महाराज दशरथ कहते हैं कि तुम राम के लिए बनवास उनके किस अपराध के लिए माँग रही हो। क्रोध त्याग कर इस बात को बताओ। सभी लोग राम को बहुत बड़ा साधु बताते हैं। इतना ही नहीं तुम भी राम की प्रशंसा करती तथा उन पर स्नेह रखती हो। जिसका स्वभाव शत्रुओं के भी अनुकूल ही रहता है वह माता के प्रतिकूल कोई भी कार्य कैसे करेगा :— .

जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला।।
अयो० ४-३२

श्रीराम स्वभाव से ही निर्लोभ हैं। उन्हें युवराज पद दिये जाने की योजना थी। इसके स्थान पर उनको अयोध्या छोड़ कर बन जाना है। यह परिवर्तन उनके मन पर तनिक भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल पाता अपितु वे तो राज्य भार से वंचित होने को बंधन मुक्ति मान कर अधिक प्रसन्न हो रहे हैं :—

नवगयंदु रघुबीर मन राजु अलान समान।
छूट जानि वन गबनु सुनि उर अनन्दु अधिकान ।। अयो० ५१

श्रीराम की शीलता तथा संकोच-वृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है उनके गंगा पार करने के प्रसंग से। वे अनुज लक्ष्मण तथा पत्नी सीता सहित गंगा के किनारे खड़े हैं और नाव चाहते हैं पार जाने के लिए पर भक्ति-भाव से ओत-प्रोत केवट नाव नहीं लाता। आज ही उसे अवसर मिला है अपने भाग्य को सँवारने का। अपने ही क्यों सात पीढ़ी ऊपर तथा साथ पीढ़ी नीचे के पूर्वजों एवं वंशजों के भाग्य को सुधारने का। वह नाव नहीं लाता इस आधार पर कि श्रीराम की चरण-धूलि मनुष्य-निर्माण की जड़ी है तथा उसकी नाव भी अहल्या की

ही भाँति स्त्री बन जायगी। परिणामस्वरूप वह साधनहीन एवं विपन्न हो जायगा। अस्तु जब तक श्रीराम अपने चरणों को धुलवा कर धूलि-मुक्त नहीं कर लेंगे तब तक वह उन्हें नाव पर नहीं चढ़ावेगा। सहज-स्वभाव-सुशील राम केवट के इन प्रेम-युक्त वचनों को जो कि सुनने में अटपटे लग रहे थे, सुनकर लक्ष्मण तथा सीता की ओर देख कर हँस पड़े। मुस्करा कर श्रीराम ने केवट से कहा कि वही करो जिससे तुम्हारी नाव बनी रहे। शीघ्र ही पानी लाकर पैर धो लो, विलंब हो रहा है पार उतार दो : -

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लषन तन ॥ अयो० १००
कृपा सिंधु बोले मुसकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पाय पँखारू। होत बिलंब उतारहि पारू ॥
अयो० १-१०१

श्रीराम के चरणों को धोकर केवट ने उन्हें सीता एवं लक्ष्मण सहित पार उतार दिया। श्रीराम लक्ष्मण-सीता तथा निषादराज उतर कर गंगा जी की रेत में खड़े हो गए। केवट ने भी नाव से उतर कर श्रीराम को दण्डवत् की। श्रीराम के मन में स्वाभाविक रूप से इस भावना से संकोच उत्पन्न हुआ कि उतराई के उपलक्ष्य में इसे कुछ भी नहीं दिया गया। पति के भाव को समझाने में निपुणा सीता ने इसे जान कर प्रसन्नतापूर्वक अपनी मणि-जटित अँगूठी उतार कर श्रीराम के हाथों में रख दी। श्रीराम ने केवट से कहा कि उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर श्रीराम के चरण पकड़ लिए :—

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहि कछु दीन्हा ॥
अयो० १-१०२
पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥
अयो० २-१०२

श्रीराम का स्वभाव ऐसा है कि वे स्वाभाविक स्नेह की अवमानना नहीं कर सकते। गंगा पार करने के बाद वे निषाद को घर लौटने को कहते हैं पर निषाद साथ चलने देने की प्रार्थना करता है और कहता

है कि जिस बन में आप जाकर रहेंगे वहाँ आपकी पर्णकुटी बनाऊँगा। उसके बाद जो आज्ञा देंगे उसे शिरोधार्य करूँगा। निषाद के सहज प्रेम को देख श्रीराम ने उन्हें साथ चलने की अनुमति दे दी :—

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥

अयो० ४-१०४

बनवास काल में चलते हुए श्रीराम, मुनि भरद्वाज के आश्रम में पहुँचते हैं। वे श्रद्धा सहित मुनि को दण्डवत् करते हैं। श्रीराम के आगमन को ज्ञात कर ब्रह्मचारी, तपस्वी मुनि, सिद्ध, उदासी सभी प्रयाग निवासी उनके दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं। श्रीराम सभी को प्रणाम करते हैं और वे लोग नेत्रसुख प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं। अत्यधिक सुखानुभूति से वे श्रीराम को आशीर्वाद देकर उनकी सुन्दरता की सराहना करते हुए अपने-अपने स्थानों को वापस हो गए :—

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू ॥
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई ॥

४-१०८

श्रीराम इतने विनम्र हैं कि उनको मार्ग दिखाने वाले जब उन्हें मार्ग बता देते हैं तो उन्हें भी सविनय विदा करते हैं :—

बिदा किए बटु विनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम ॥ अयो० १०६

श्रीराम बाल्मीकि के आश्रम में पहुँचते हैं। दण्ड, प्रणाम तथा स्वागत-सत्कार के बाद श्रीराम उनसे कहते हैं कि पिता के वचनों का पालन, माता का हित भरत जैसे भाई का राजा होना तथा आपका दर्शन यह सब मेरे पुण्य का प्रभाव ही है। आपके चरणकमलों के दर्शन से हमारे सारे पुण्य सफल हो गए हैं। अब जहाँ आपका आदेश हो तथा जहाँ मेरे रहने से किसी भी मुनि को उद्विग्नता न हो वह स्थान बतावें क्योंकि जिस के रहने से मुनि तथा तपस्वी दुखी हों वह राजा बिना अग्नि के ही भस्म हो जाता है। श्रीराम की सहज एवं सरल बातों को सुनकर वाल्मीकि जी ने धन्य-धन्य शब्द का उच्चारण किया और कहा कि भला आप ऐसा क्यों न कहेंगे क्योंकि आप वेद-मर्यादा के रक्षक हैं :—

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उद्‌बेगु न पावै कोई ॥
अयो० १-१६२

× × ×

सहज सरल मुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥
अयो० ४-१२६

× × ×

चित्रकूट में महाराज जनक भरत जी से कहते हैं कि हे तात ! तुम्हें श्रीराम के स्वभाव का तो ज्ञान है ही वे सत्यव्रती धर्मशील तथा सब के शील एवं स्नेह का ध्यान रखने वाले हैं वे अपने संकोचशील स्वभाव के कारण कष्ट सहन कर रहे हैं :—

राम सत्यव्रत धरम रत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत संकोच बस कहिअ जो आयसु देहु ॥ अयो० २९२

श्रीराम स्वभाव से ही अपने सहायकों के प्रति अत्यधिक स्नेह रखते हैं। रावण-संहार के बाद जब इन्द्र उनके पास आते हैं तो वे इन्द्र से युद्ध में मारे गए बानर-भालुओं को जीवित करने को कहते हैं—

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जो मारे ॥
मम हित लागि तजे इन प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना ॥
लंका १-२१४ (क)

वे ही राम जिनका ध्यान मुनि गण न पा सकने के कारण उनको नेति नेति कहते हैं कपियों के साथ अनेक प्रकार से विनोद कर रहे हैं। विभीषण द्वारा आकाश से गिराए गए वस्त्राभूषणों को पहन-पहन कर वे श्रीराम के पास आते हैं। श्रीराम इन विभिन्न कपियों को देख कर बार-बार हँसते हैं। वे सब की ओर देख कर उन पर कृपा की दृष्टि करते हैं और मधुर बाणी में कहते हैं कि तुम लोगों के बल पर ही मैं रावण का संहार कर, विभीषण को लंका की गद्दी पर बिठा सका। यह है श्रीराम की विनम्रता की चरम सीमा :—

मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह वेद।
कृपा सिन्धु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद ॥
लंका ११७(क)

× × ×

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए।
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा।।
लंका १-११८ (क)
चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया।
तुम्हरें बल मै रावनु मार्यो। तिलक विभीषन कहँ पुनि सार्यो।।
लंका २-११८ (क)

श्रीराम का चित्त वज्र से भी कठोर तथा कुसुम से भी कोमल है, फिर भला उसे कैसे समझा जा सकता है? उसको तो समझने का एक ही मूल-मंत्र है वह है निर्विकार भाव से अपने को पूर्णतया उन्हें समर्पित कर देना। आज के साधकों की यही सब से बड़ी समस्या है कि वे सब कुछ प्राप्त करना चाहते हैं बिना उसका कोई भी मूल्य दिए हुए। श्रीराम तो स्वयं ही सहज स्वभाव एवं सुशील हैं पर किसके लिए जो उसी सहजता एवं अकृत्रिमता से उनके समक्ष प्रस्तुत हो अन्यथा तो वे वज्र से भी कठोर तथा कुसुम से भी कोमल हैं :—

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।।
उत्तर १९ (ग)



अहैतुक कृपालु राम

संसारिक नियमों के अनुसार पारस्परिक प्रेम, कृपा अथवा उपकार की बात चलती है। अकारण ही कोई किसी की सहायता नहीं करता। इतना ही नहीं देवता तथा मुनिगण भी स्वार्थ के ही कारण प्रेम करते हैं पर श्रीराम का आचरण इस व्यवस्था से सर्वथा परे हैं। वे तो बिना किसी हेतु के ही कृपा करते हैं। उनकी कृपा का हेतु उनकी कृपा ही होती है। वे तो अपराधी तथा शत्रु पर भी ऐसी कृपा करते हैं जो कि जन्म-जन्मान्तर के प्रयास से भी लोगों को अन्यथा सुलभ नहीं हो पाती।

इन्द्र पुत्र अत्यन्त अज्ञान एवं अहंकार के वशीभूत हो सीता के चरणों को आहत करता है, श्रीराम के बल की परीक्षा लेने हेतु। श्रीराम उसे लक्ष्य कर एक सींक का बाण संधानित कर देते हैं, फिर तो वह तीनों लोकों तथा चौदहों भुवनों में घूम आता है पर कहीं भी उसे संरक्षण नहीं मिलता। निराश होकर वह पुनः श्रीराम के पास आता है और कहता है कि मैंने जैसा कर्म किया उसका फल प्राप्त हुआ। अब मैं आप की शरण में आया हूँ। श्रीराम ने उसकी आर्त-वाणी को सुनकर उसे क्षमा कर दिया जब कि पिता इन्द्र तक ने भी उसकी सहायता नहीं की थी। उसने मोहवश द्रोह किया था जिसका उचित दण्ड उसका बध ही था पर श्रीराम ने दया करके उसे जीवन-दान दे दिया। उनके समान कृपा करने वाला अन्य कोई भी नहीं है —

कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहिकर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुवीर सम॥ अर० २ (क)

श्रीराम, सखा सहायकों तथा मित्रों पर तो कृपा करते ही हैं वे बिना किसी हेतु के शत्रुओं पर भी कृपालु हैं। शूर्पणखा की गुहार पर खरदूषण अपनी सेना लेकर आ जाते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण को सीता की रक्षा में सन्नद्ध कर स्वयं अकेले ही उनका सामना करते हैं। क्षण भर में ही श्रीराम के उपाय से वे सभी मारे जाते हैं। वे स्वयं एक-दूसरे को राम समझ कर मार देते हैं पर अंत के समय में राम-

राम शब्द का उच्चारण करते हैं। फलस्वरूप श्रीराम उन्हें मुक्ति दे देते हैं। इससे अधिक अहैतुक कृपालुता क्या होगी कि जिन्होंने जीवन भर सदैव गो, ब्राह्मण, ऋषियों तथा मुनियों को सताया हो उन्हें भी मुक्ति का बिना प्रयास किए हुए ही मुक्ति मिल रही है :—

राम राम कहि तनु तर्जाहि पार्वाहि पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान ।। अरण्ड २० (क)

सीता हरण की योजना की संपन्नता के लिए रावण मारीच के पास उपस्थित होता है और उससे कपट-स्वर्ण-मृग बन, सहायता के लिए कहता है। मारीच को श्रीराम के बल एवं शौर्य का पूर्व ही ज्ञान था, मुनि विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के समय की घटना से। अस्तु उसने रावण को समझाया पर वह कब समझता उसने मारीच को बहुत ही भला बुरा कहा। इस प्रकार मारीच को यह बात स्पष्ट हो गई कि उसके प्राण जाने हैं, चाहे वह राम के हाथों मारा जाय अथवा रावण के हाथों। श्रीराम के प्रभाव से भली-भाँति परिचित होने के कारण उसने राम के बाणों से ही प्राण-त्याग का निश्चय किया। इस निश्चय से ही उसके मन में राम के प्रति अटूट प्रेम की उत्पत्ति हुई जिसे उसने रावण को नहीं बताया और यह अभिलाषा लेकर उसके साथ चल पड़ा कि आज श्रीराम के दर्शन सुलभ होंगे।

कपट रूप स्वर्ण-मृग मारीच छलपूर्वक श्रीराम को उनकी कुटी से दूर ले गया। तब श्रीराम ने लक्ष्य करके कठिन बाण का संधान किया। परिणामस्वरूप घोर शब्द करता हुआ वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण की योजनानुसार पहले तो उसने लक्ष्मण जी का नाम लिया फिर मन से श्रीराम का स्मरण किया। प्राण-त्याग करते समय उसने अपने वास्तविक रूप को प्रकट किया तथा प्रेम सहित श्रीराम का स्मरण किया। श्रीराम ने भी उसके आंतरिक प्रेम को पहचान कर वह मुक्ति प्रदान की जो कि साधनारत मुनियों को भी दुर्लभ है। इससे अधिक अहैतुकता क्या हो सकती है कि सीता हरण के प्रमुख निमित्त को भी श्रीराम ने मुक्ति प्रदान कर दी :—

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ।।
अर० ६-२७

बिपुल सुमन सुर बरर्षाहि गार्वाहि प्रभु गुनगाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबन्धु रघुनाथ ।। अर० २७

श्रीराम एक ही बाण से बालि को धराशायी कर देते हैं। उनको आगे देख कर मृत्यु के पूर्व वह उठ बैठता है तथा प्रश्न करता है कि 'धर्म हेतु अवतेरउ गोसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं ॥' इसके उत्तर में श्रीराम उसका ध्यान उसके कुकर्मों की ओर आकृष्ट करते हैं और कहते हैं कि तुमने अत्यधिक अहंकार के वशीभूत हो, अपनी पत्नी के अनुरोध को भी नहीं सुना तथा सुग्रीव को मेरे बल के आश्रित जानते हुए भी तुझ अधम तथा अभिमानी ने उसको मार डालना चाहा। बालि ने इसके उत्तर में कहा कि आप स्वामी से मेरी चालाकी नहीं चल पायेगी पर अन्तकाल में आपकी शरण पाने वाला मैं क्या अब भी पापी ही रह गया। इन विनम्र वचनों को सुन कर श्रीराम ने अपने हाथों से बालि के शिर का स्पर्श किया और कहा कि तुम प्राण मत छोड़ो मैं तुम्हारे शरीर को स्वस्थ किए देता हूँ। पर बालि इस सुखद एवं महत्वपूर्ण अवसर को छोड़ने को तैयार नहीं होता क्योंकि यह अवसर करोड़ों जन्मों तक प्रयास करने पर भी मुनियों तक को नहीं मिलता। जिसके बल पर भगवान शंकर, काशी में प्राण-त्याग करने वालों को मुक्त करते हैं जब साक्षात् वही उसके सम्मुख है तब वह देह का मोह क्यों करे। अन्ततः अहैतुक कृपालु श्रीराम ने बालि को भी अपने धाम भेज दिया :—

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना ॥

किष्किंधा १-१०

× × ×

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा ॥

किष्किंधा १-११

लंका में हनुमान तथा अंगद युद्ध रत हैं। दोनों वीर राक्षसों का बुरी तरह संहार कर रहे हैं। इस संहार में वे प्रमुख लोगों को मारने के बाद श्रीराम की ओर फेंक देते हैं। श्रीराम इतने अहैतुक कृपालु हैं कि उन्हें भी मुक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीराम इतने अधिक करुणामय हैं कि ब्राह्मणों का मांस खाने वाले नरभक्षी दुष्ट राक्षसों को भी वह परम गति प्रदान करते हैं जो कि साधना पर मुमुक्षु योगियों को भी दुर्लभ है। ऐसा तो कोई कृपालु है ही नहीं :—

महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा ॥
लंका १-४५

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी ॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव मोहि सुमिरत निसिचर ॥
लंका २-४५

देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी ॥
लंका ३-४५

रावण ने अपनी संपूर्ण शक्ति तथा सामर्थ्य से श्रीराम का विरोध किया। उसने राम के विरुद्ध होने वाले युद्ध में अपनी सेना तथा सगे-संबंधियों को झोंक दिया। कुंभकरण तथा रावण घोर युद्ध करते हुए श्रीराम के ही हाथों मारे जाते हैं। श्रीराम उन्हें भी अहैतुक कृपालुता के कारण मुक्ति प्रदान करते हैं :—

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुनि मुनि सबहिं अचंभव माना ॥
लंका ४-७१

× × ×

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
लंका ५-१०३

रावण-बध के बाद विभीषण का स्वाभाविक भ्रातृ-प्रेम जागृत हो जाता है और वे बहुत ही दुखी होते हैं। श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण जी ने विभीषण को अनेक प्रकार से समझाया। विभीषण श्रीराम के पास पुनः आए। श्रीराम ने करुणापूर्वक उनकी ओर देखा तथा कहा कि शोक-त्याग कर भाई की क्रिया करो :—

बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा ॥
लछिमन तेहि बहु विधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो ॥
लंका ३-१०५

कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका ॥
लंका ४-१०५

रावण-बध के पश्चात् सुरगण श्रीराम के पास आकर उनकी

स्तुति करते हैं और कहते हैं कि जब-जब देवताओं को दुख मिला तब-तब आप अनेक रूप धारण करके आए और आपने उनके कष्टों को दूर किया। उन्हें इस बात पर बड़ा आश्चर्य है कि रावण जैसे मलिन व्यक्ति को जो कि देवताओं का शत्रु तथा काम, लोभ एवं मद में संलग्न और क्रोधी था उस महा अधम को भी मुक्ति मिल गई :—

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिस्मय आवा॥
लंका ५-११०

काकभुशुण्डि जी श्रीराम की अहैतुक कृपालुता बताते हुए कहते हैं कि इन्द्र ने राम-रावण दोनों दलों पर सुधा की वर्षा की। मृत बानर तथा भालु, सुधा के प्रभाव से जीवित हो गए पर राक्षस नहीं। राक्षसों के जीवित न होने का रहस्य यह था कि मृत्यु के समय उनके मन रामाकार हो गए थे जिसके परिणामस्वरूप वह मुक्त हो गए तो फिर पुनर्जीवित कौन होता ? वे कहते हैं कि श्रीराम की भाँति दीन-दुखियों का हितसाधन करने वाला कौन है ? उन्होंने अनेक राक्षसों को मुक्त कर दिया। दुष्ट, पापी के घर तथा कामी रावण को वह गति मिली जो कि श्रेष्ठ मुनियों को भी नहीं मिलती : –

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की ईछा॥
लंका ४-११४ (क)

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी॥
लंका ५-११४ (क)

श्रीराम की अहैतुक कृपा से सद्‌गति अथवा मुक्ति मिलती है। मनुष्य एकमात्र निष्ठापूर्वक प्रयास ही कर सकता है पर यदि उसे यह भ्रम हो जाय कि वह अपने प्रयत्न या उपाय के बल पर ईश्वर की प्राप्ति कर लेगा तो ऐसा सोचना एकमात्र उसका अहंकार तथा अज्ञानता ही होगी क्योंकि जब तक परम प्रभु स्वतः कृपा न करें तब तक उनका दर्शन या उनकी अनुभूति संभव नही है। यह कृपा किसी जप, तप, ध्यान, धारणा अथवा योगाभ्यास पर निर्भर नही अन्यथा

अनेक जन्मों तक प्रयास करने वाले लोग कोरे के कोरे ही न रह जाते।

प्रयास तो साधक का अपना कर्तव्य है। वह उसे गुरु-निर्देश एवं अपनी सामर्थ्य के अनुसार करना ही चाहिए पर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भगवान की अहैतुकी कृपा पर ही निर्भर रहना चाहिए। जब तक उनकी अहैतुकी कृपा न होगी तब उनको जानना अथवा प्राप्त करना संभव न होगा ।

प्रबोधक राम

रामचरित मानस में अनेक अवसरों पर विभिन्न प्रसंगों में गोस्वामी जी ने लोगों के उद्बोधन की योजना रखी है। इनमें जो उद्बोधन शाश्वत सत्यों से संबंध रखते हैं, वे अधिकांशतः श्रीराम के मुख से ही कराए गए हैं। सामयिक परिस्थितियों के अनुसार श्रीराम ने वस्तुस्थिति को बहुत ही सहज, सरल रूप में प्रस्तुत किया है। ये स्थल इतने मार्मिक एवं महत्वपूर्ण हैं कि इन्हें राम-गीता के नाम से जाना जाता है।

भगवान की माया बड़ी प्रबल है। बड़े-बड़े योगी तथा मुनि भी उसके चक्कर में पड़ जाते हैं। एक बार महामुनि नारद भी माया के घेरे में आ गए। भगवान ने भक्त की रक्षा के अपने प्रण का निर्वाह किया। परिणामस्वरूप नारद जी पर माया का अनिष्टकारी प्रभाव नहीं पड़ा और विश्वमोहिनी उनका वरण नहीं कर सकी। नारद ने क्रोधावेश में भगवान को भला-बुरा कहा तथा श्राप दे दिया कि आपने मेरी आकृति बानर की कर दी थी, बानर ही आपकी सहायता करेंगे। प्रभु ने जब अपनी माया का आकर्षण कर लिया और नारद जी प्रकृतस्थ हुए तो उन्होंने भगवान से क्षमायाचना की और कहा कि हमारा शाप मिथ्या हो जाय पर भगवान ने उसे अंगीकार कर लिया। नारद के यह पूछने पर कि मेरा यह पाप कैसे मिटेगा ? भगवान ने बताया कि शंकर के शतनाम का जप करो। उससे तुरन्त ही हृदय शान्त होगा। इस विश्वास को भूल कर भी न छोड़ना कि शिव के समान मुझे कोई भी प्रिय नहीं है। शंकर जी जिस पर कृपा नहीं करते हे मुनि ! उसको मेरी भक्ति नहीं मिलती। भगवान ने कहा कि ऐसा विचार हृदय में धारण कर पृथ्वी पर विचरण करो अब माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी। मुनि को अनेक प्रकार ज्ञान देकर भगवान अदृश्य हो गए। नारद मुनि भी श्रीरामचन्द्र जी का गुणगान करते हुए ब्रह्मलोक को चले गए :—

बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान ।। बाल० १३८

श्रीराम बन जाने को तैयार हैं। सीता जी भी साथ जाना चाहती हैं। माता कौसल्या की इच्छानुसार श्रीराम सीताजी का प्रबोधन कर रहे हैं जिससे कि वे बन जाने का विचार त्याग दे। वे सीता जी से कहते है कि हमारा और अपना यदि कल्याण चाहती हो तो हमारी बात मान कर घर पर ही रहो। मेरी आज्ञा घर पर रह कर सास की सेवा करने की ही है। इसी में सब प्रकार की भलाई है। आदरपूर्वक सास तथा ससुर के चरणों की पूजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी धर्म नहीं है। माता जी जब जब मेरा स्मरण कर प्रेम-विह्वल हों तब-तब तुम सुन्दर प्राचीन कथाएँ मृदुवाणी में कह कर उन्हें समझाना। यदि तुम मेरी बात मान लोगी तो तुम्हें बिना कष्ट के ही गुरु एवं वेद सम्मत धर्मफल की प्राप्ति हो जायगी अन्यथा हठवश बन जाने पर गालव मुनि तथा राजा नहुष की ही भाँति कष्ट सहन करना पड़ेगा।

अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए श्रीराम कहते हैं कि बन बड़ा ही कष्टदायक है। वहाँ ताप, शीत, वर्षा, तथा हवा सभी भयानक होते हैं। रास्ते में कुश-काँटे तथा कंकड़ों की बाधाएँ है और चलना पादत्राण के बिना ही है। तुम्हारे चरण बहुत ही कोमल हैं मार्ग में बड़े-बड़े अगम पर्वत हैं। नदियाँ-नदी-नाले-गुफाएँ तथा पर्वतीय दर्रे इतने अगम, अगाध और भयानक हैं कि उनकी ओर देखा नहीं जाता। भालू, बाघ, भेड़िए तथा सिंह ऐसी गर्जना करते हैं कि उसे सुन कर धैर्य छूट जाता है। भूमि पर सोना होगा, वस्त्र के नाम पर वल्कल ही मिलेगा और भोजन के लिए कंद, मूल तथा फल ही उपलब्ध होंगे। ये भी यथासमय ही मिलेंगे सब समय नहीं। मनुष्य-भक्षी राक्षस विचरण करते रहते हैं। वे अनेक प्रकार के कपट-वेष धारण कर लेते हैं। पहाड़ी पानी भी बहुत लगता है। इस प्रकार बन की विपत्ति का वर्णन संभव नहीं है। बन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी तथा नर-नारी-हर्ता राक्षसों के समूह रहते हैं। तुम भीरु स्वभाव की हो। बन का स्मरण आने पर तो धैर्यवान भी डर जाते हैं। तुम बन जाने के योग्य नहीं। तुम्हें साथ बन ले जाने की बात को सुनकर लोग

मुझे दोष लागावेंगे। इन सब बातों को समझ कर घर पर ही रहो क्योंकि बन में बहुत कष्ट है। अपनी शिक्षा को नैसर्गिक सिद्धान्तों से पुष्ट करते हुए श्रीराम कहते हैं कि जो स्वभावतः ही हितचिंतक गुरु तथा स्वामी की शिक्षा को शिरोधार्य कर उसे स्वीकार नहीं करता उसके हितों की हानि होती है तथा उसे अत्यधिक पश्चात्ताप करना पड़ता है।

श्रीराम को जब यह अनुमान हो जाता है कि "हठि राखें नहि राखिहिं प्राना" तो वे सीता से कहते हैं कि आज का समय दुख का नहीं है चिन्ता त्याग कर शीघ्र ही बन चलने की तैयारी करो :—

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा।।
नहि बिषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू।।
अयो० २-६८

भरत, माता गुरु तथा अन्य सभी लोगों के अनुरोधों को अस्वीकार कर श्रीराम को अयोध्या लौटा लाने हेतु चित्रकूट में पहुँच गए हैं। श्रीराम उनके प्रेम, विनय तथा भक्ति से अत्यधिक प्रभावित हैं पर पिता के वचन को मिटा कर अयोध्या नहीं लौटना चाहते। वे चिन्तित एवं दुखी अनुज भरत का अत्यन्त स्नेहसिक्त एवं भावपूर्ण वाणी में प्रबोधन कर रहे हैं। श्रीराम कहते हैं कि जिन के लिए तुम चिन्तित हो उस राजकार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म पृथ्वी तथा घर सभी का प्रतिपालन गुरु की कृपा के प्रभाव से स्वयमेव होगा और उसका परिणाम भी शुभ ही होगा। गुरु जी का प्रभाव ही घर बन सभी स्थानों में हमारी तथा तुम्हारी रक्षा करेगा माता, पिता, गुरु तथा स्वामी की आज्ञाकारिता संपूर्ण पृथ्वी का भार वहन करने में शेष के समान है। हे तात! तुम स्वयं वही करो और मुझसे भी कराओ तुम सूर्यवंश के पालनकर्ता बन जाओ। साधक के लिए यह आज्ञाकारिता ही सम्पूर्ण सिद्धि-दायिका-कीर्ति, सद्‌गति और ऐश्वर्य को प्रदान करने वाली, त्रिवेणी है। इसे विचार कर भारी कष्ट झेल कर भी प्रजा तथा परिवार को सुख दो। सभी लोगों ने मेरी इस विपत्ति में हाथ बटाया है। तुम्हें तो चौदह वर्षों तक बड़ी कठिनाई है ही। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है कि मैं तुम्हें कोमल जानते हुए भी कुसमय के कारण तुमसे कठोर बातें कह रहा हूँ। बुरे समय में अच्छे बन्धु ही सहायक होते हैं

जैसा कि बज्र के आघात भी हाथ से ही रोके जाते हैं।

भरत का प्रबोधन करते हुए श्रीराम आगे कहते हैं कि हे तात! तुम्हारी मेरी परिवार, अयोध्या तथा वन सभी की चिन्ता महाराज जनक तथा गुरु वसिष्ठ को है। हमारे और तुम्हारे संरक्षक जब गुरु वसिष्ठ मुनि विश्वामित्र तथा महाराज जनक हैं तो हमें तुम्हें किस बात की चिन्ता ? इसके द्वारा श्रीराम ने गुरुजनों में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया है और स्पष्ट किया है कि इनके आश्रित रहने वालों को कष्ट नहीं होता। वे कहते हैं कि हमारा और तुम्हारा सबसे बड़ा पुरुषार्थ यही है कि हम दोनों भाई, पिता की आज्ञा का पालन करें। पिता की आज्ञा पालन में ही स्वार्थ की पूर्ति यश, धर्म तथा परमार्थ की प्राप्ति और लोक एवं वेद दोनों में भलाई है। सारी चिन्ता छोड़ कर अयोध्या जाकर मेरे वनवास की अवधि तक उसका पालन यह मान कर करो कि गुरु, माता-पिता तथा स्वामी की शिक्षानुसार चलने पर यदि पैर कुमार्ग पर पड़ें तो भी पतन नहीं होता। राज्य, कोष, कुटुम्ब तथा परिवार सभी का पालन तो गुरु वशिष्ठ की कृपा से ही होगा तुम्हें तो गुरु वशिष्ठ, माताओं तथा मंत्रियों की सम्मति के अनुसार राज्य, प्रजा और नगर का पालन भर करते रहना है। इस प्रकार श्रीराम ने भाई भरत को अनेक विधि समझाया—

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की।।
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू।।
अयो० १-३१५

× × ×

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुरु पद रजहिं लाग छरुभारू।।
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।
अयो० ४-३१५

गोस्वामी जी ने अति सहज रूप में अभिव्यक्त किया है कि साधक को किस प्रकार और किन परिस्थितियों में गुरु अथवा सिद्ध व्यक्ति से प्रश्न करना चाहिए। एक बार जब श्रीराम सुख पूर्वक बैठे हुए थे तो लक्ष्मण जी ने छल-रहित बात कही। साधक को सहज रूप में अपनी शंका का निवारण करने के लिए ही बात करनी चाहिए—

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना।।

सुर नर मुनि सचराचर साईं । मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥
अर० ३-१४

लक्ष्मण जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और माया के संबंध में जिज्ञासा की और यह भी पूछा कि ईश्वर और जीव में क्या भेद है ? लक्ष्मण जी का यह प्रश्न संभवतः जगत के सभी साधकों का प्रश्न है । श्रीराम ने संक्षेप में ही समझा कर इन प्रश्नों का उत्तर दिया है । सर्वप्रथम उन्होंने माया का स्पष्टीकरण किया है । वे कहते हैं कि हे तात ! मन तथा चित्त लगाकर सुनो । मैं और मेरा, तू और तेरा का यह भाव ही माया है । इसी के वशीभूत सारे जीव हैं । इन्द्रिय, विषय तथा जहाँ तक मन की गति है सभी माया है । माया भी दो प्रकार की है विद्या माया तथा अविद्या माया । अविद्या माया दुखरूपा है तथा उसी के कारण जीव संसार में पड़ा हुआ है । दूसरी विद्या माया गुणों से युक्त है । यही सृष्टि की रचना करती है पर प्रभु के बल से न कि अपने बल से—

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया ॥
अर० १-१५
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । बिद्या अपर अविद्या दोऊ ॥
अर० २-१५ ॥
एक दुष्ट अतिसम दुख रूपा । जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
अर० ३-१५

आगे श्रीराम, ज्ञान की विवेचना करते हैं : जिस व्यक्ति में मान अथवा अहंकार तनिक भी न हो और जो सभी में समान रूप से ब्रह्म को देख रहा है वही ज्ञानी है । जिसने सत, रज तथा तम तीनों गुणों और सिद्धियों को तिनका समझ कर त्याग दिया हो वही परम विरागी है :—

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ।
कहिअ तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥
अर० ४-१५

बहुत ही संक्षेप में पर निर्भ्रांत रूप से ईश्वर तथा जीवन के अन्तर को

समझाया गया है। जो, माया, ईश्वर तथा अपने स्वरूप तीनों को नहीं जानता उसे जीव कहते हैं। जो जीव को उसके कर्मानुसार बंधन तथा मोक्ष का प्रदाता सबसे परे एवं सृष्टि की रचना हेतु माया को प्रेरित करने वाला है वही ईश्वर है :—

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव।। अर० १५

श्रीराम इनका पारस्परिक संबंध बताते हुए कहते हैं कि वेदों का मत है कि धर्माचरण से वैराग्य तथा योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ज्ञान मोक्ष का हेतु हैं। हे भाई! जिससे मैं तुरन्त द्रवित होता हूँ वह भक्तों को सुख देने वाली मेरी भक्ति ही है। यह भक्ति किसी के आश्रित न होकर स्वतंत्र है। ज्ञान और विज्ञानादि इसी के अधीन हैं। भक्ति अनुपम तथा सुखाधार है इसकी प्रगति संतों की कृपा से ही होती है :—

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छ प्रद बेद बखाना।।
जातें बेगि द्रवौ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदायी।।
अर० १-१६

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना।
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो सन्त होइँ अनुकूला।।
अर० २-१६

श्रीराम भगवान की प्राप्ति के साधनों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भक्ति का एक सुगम मार्ग है। इससे पहले ब्राह्मणों के चरणों में अत्यधिक प्रेम हो पुनः वैदिक रीति के अनुसार अपने कर्मों में लगा रहे। इससे विषयों से वैराग्य और उसके परिणामस्वरूप भागवत धर्म में प्रेम उत्पन्न होगा तब श्रवणादि नौ, प्रकार की भक्ति दृढ़ होगी तथा मेरी लीलाओं के प्रति मन में दृढ़ प्रेम होगा। जिस व्यक्ति का संतों के चरणों में प्रेम हो और उसका मन बचन कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो और वह मुझको ही गुरु पिता, माता, भाई, पति देवता सब कुछ मान कर मेरी ही सेवा में दृढ़ रहे, मेरे गुणगान में उसका शरीर पुलकित, वाणी गद्गद तथा नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे, जिसमें काम, मद तथा दंभादि न हों मैं सदा उसी के वश में रहता हूँ। जो पूर्णतया मेरे प्रति ही समर्पित हो मन, वचन तथा कर्म

से जिनको मेरी ही गति हो और जो निष्काम भाव से मेरे भजन में संलग्न हों उन्हीं के हृदय में मैं सदैव निवास करता हूँ।

श्रीराम ने निश्छल भाव से लक्ष्मण जी द्वारा पूछे गए प्रश्नों का बड़ा ही सटीक उत्तर दिया है। इनकी विशेषता यह है कि इसमें ईश्वर-प्राप्ति के उपायों, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट व्याख्या की गई है। अन्ततः भक्ति को सरल एवं सुगम बताया गया है।

सीता-हरण तथा कबंध-संहार के पश्चात श्रीराम अनुज लक्ष्मण सहित शबरी के आश्रम में पहुँचे। शबरी अपने गुरु के बचनों पर विश्वास कर श्रीराम के आगमन की दीर्घकाल से प्रतीक्षा कर रही थी। प्रसन्नतातिरेक से शबरी श्रीराम और लक्ष्मण के चरणों में लिपट जाती है। पाद-प्रक्षालन तथा आसन-प्रदान के बाद शबरी सुन्दर चुने हुए फल खाने को देती है जिनकी अनेक बार प्रशंसा कर प्रभु ने उन्हें खाया। शबरी ने अत्यंत विनम्रता पूर्वक श्रीराम की स्तुति की। श्रीराम ने कहा कि मैं तो एकमात्र भक्ति का ही नाता मानता हूँ। जाति-पाँति, कुल, धर्म, ऐश्वर्य, बड़प्पन, धन, बल, कुटुंब, गुण तथा चतुरता रखने वाला भक्तिहीन व्यक्ति ऐसा ही अस्तित्व हीन एवं व्यर्थ लगता है जैसा कि जलविहीन बादल।

श्रीराम ने श्रद्धा एवं विश्वासमयी शबरी के स्नेह-भाव को देख कर उसे नवधा भक्ति का उपदेश किया। भक्ति के नौ प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि इन नौ प्रकार की भक्ति में से जिनमें एक प्रकार की भी भक्ति होती है वह मुझे अत्यंत प्रिय होता है फिर तुममें तो सभी प्रकार की भक्ति विद्यमान है।

उन्होंने कहा कि पहली भक्ति संतों का संग तथा दूसरी मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम है। तीसरी भक्ति निरंहकारिता पूर्वक गुरु के चरणों की सेवा। चौथी भक्ति निश्छलता पूर्वक मेरा गुणगान है। पाँचवीं भक्ति मुझमें दृढ़ विश्वास तथा मेरे नाम का जाप है। छठवीं भक्ति है इन्द्रिय-निग्रह, सदाचरण तथा वैराग्य। सातवीं भक्ति है सारे विश्व को मुझसे परिव्याप्त देखना और संतों को मुझसे भी अधिक मानना। आठवीं भक्ति है जिस दशा में हो उसी में संतुष्ट रहना तथा स्वप्न में भी दूसरों के दोषों पर ध्यान न ले जाना। नवीं भक्ति है सरलता

एवं निश्छलता तथा हर्ष एवं विषाद से मुक्त हो एक मात्र मेरा ही भरोसा रखना :—

प्रथम भक्ति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
अर० ४-३५

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥ अर० ३५
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा॥
छठ दमसील विरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥
अर० १-३६

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा॥
अर० २-३६

नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
अर० ३-३६

श्रीराम ने योगियों को भी दुर्लभ गति, शबरी को प्रदान की और कहा कि मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव को अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। अपने स्वरूप की प्राप्ति ही आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर प्राप्ति है।

सीता जी के विरह में श्रीराम विरही जैसा नाट्य करते हुए बन में घूम रहे हैं। सारे प्राकृतिक दृश्य काम के सहायक जैसे प्रतीत हो रहे हैं। अनुज लक्ष्मण को संबोधित करते हुए श्रीराम काम के प्रभाव का वर्णन करते हैं। इसको जानकर धीर साधक को अपनी साधना में दृढ़ता लाने में सहयोग मिलेगा। वे कहते हैं कि कामदेव की इस सेना को देख कर भी जो लोग उसके प्रभाव में नहीं आते और दृढ़ता पूर्वक अपने साधना मार्ग पर डटे रहते है वे ही धैर्यवान है तथा संसार में वीरों के रूप में वे ही प्रतिष्ठित हैं।

श्रीराम कहते हैं कि इस कामदेव का सब से बड़ा बल या सहारा नारी है। इससे जो बच जाय वही सबसे बड़ा योद्धा है। वे कहते हैं कि हे लक्ष्मण! काम, क्रोध तथा लोभ साधक के बहुत ही प्रबल शत्रु हैं। साधारण लोगों की बात कौन कहे ये विज्ञानी मुनियों के मन को भी पल भर में क्षुब्ध कर देते हैं। आगे वे बताते हैं कि तीन प्रबल शत्रुओं

के आधार क्या हैं । लोभ का आधार इच्छा और दंभ का आधार एक मात्र स्त्री तथा क्रोध का आधार कठोर बचन हैं, ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने विचार पूर्वक कहा है :—

लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ।।
एहि के एक परम बल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ।।
अर० ६-३८ (क)

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विग्यान धाम मन करहि निमिष महुँ छोभ ।।
अर० ३८ (क)

लोभ के इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष वचन बल मुनिवर कहहिं विचारि ।।
अर० ३८ (ख)

श्रीराम ने यह स्पष्ट किया है कि काम क्रोध तथा लोभ ये तीन ही प्रमुख विषय हैं जो कि जीव को उसके स्वरूप-ज्ञान में बाधा पहुँचाते हैं । इनके आधारों का भी उन्होंने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है ।

श्रीराम को बिरह-दुख-कातर देख, नारद मुनि उनके पास पहुँचते है । स्वागत सत्कार के बाद नारद मुनि श्रीराम को अत्यन्त प्रबल जानकर उनसे पूँछते है कि जब आप की माया ने मुझे मोहित कर दिया था तब मैं विवाह करना चाहता था तो आप ने विवाह क्यों नहीं करने दिया ? श्रीराम ने समझाते हुए नारद मुनि से कहा कि जो अन्य सभी आशाओं और भरोसों को छोड़ कर एक मात्र मुझे ही भजते हैं अर्थात मुझ पर ही आश्रित रहते है मैं उनकी रक्षा उसी प्रकार करता हूँ जिस प्रकार माता बालक की रक्षा करती है । छोटा बालक अज्ञानतावश अग्नि अथवा साँप को पकड़ने की चेष्टा करता है तो माता उसे ऐसा न करने देकर उसे अलग रख कर उसकी रक्षा करती है । वह बालक की रक्षा में इतनी तत्पर और सावधान रहती है कि उसकी भूल से भी उसे हानि नहीं होने देती है । वही बालक जब प्रौढ़ हो जाता है तो भी माता उस पर प्रेम रखती है पर पूर्व की भाँति हर प्रकार से उसकी रक्षा में तत्पर नहीं रहती क्योंकि वह जानती है कि अब उसका पुत्र स्वयं अपनी रक्षा में सचेष्ट है और उस पर उस सीमा तक निर्भर नहीं करता जैसा कि पहले निर्भर करता था । ज्ञानी, प्रौढ़

पुत्र तथा निरहंकारी दास्य भाव वाला भक्त, शिशु के समान है। मेरा सेवक पूर्णतया मेरे ही आश्रित रहता है जब कि ज्ञानी को अपनी सामर्थ्य का भरोसा रहता है। दोनों के लिए काम तथा क्रोध शत्रु हैं। इस विचार से बुद्धिमान व्यक्ति मेरा ही भजन करते हैं तथा ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति का त्याग नहीं करते—

तब विवाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
अर० २-४३

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई ॥
अर० ३-४३

प्रौढ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥
अर० ४-४३

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम, क्रोध-रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥
अर० ५-४३

नारद मुनि को विवाह न करने देने के प्रश्न का स्पष्टीकरण करते हुए श्रीराम ने आगे कहा कि काम, क्रोध, लोभ तथा मदादि अज्ञान को बढ़ाने वाले हैं। इन सब में भी काम का आधार स्त्री, माया की साक्षात् मूर्ति ही है। यह कठिन दुख देने वाली है। पुराणों, वेदों तथा संतों के अनुसार स्त्री अज्ञान को बढ़ाने वाली है। स्त्री, साधना के साधनों—जप, तप तथा नियमादि को समाप्त कर देती है। स्त्री के सहयोग एवं सान्निध्य से काम, क्रोध, मद तथा मत्सर वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसके प्रभाव से कुवासनाएँ जागृत होती हैं। धर्म का नाश तथा ममता का विकास होता है। स्त्री के संयोग से पाप की बृद्धि होती है तथा बुद्धि, बल, शील और सत्य का नाश होता। निष्कर्ष निकालते हुए श्रीराम ने कहा कि युवती अवगुणों की मूल, कष्ट-दायिका सब दुखों की खान है। इस बात को हृदय में समझ कर ही मैंने आप को विवाह नहीं करने दिया क्योंकि मुझे आपकी रक्षा करनी थी :—

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ।। अर० ४४

नारद मुनि द्वारा सन्तों का लक्षण बताने की प्रार्थना करने पर श्री रामने उनको बताया कि हे मुनि सुनो ! मैं संतों के उन गुणों का वर्णन कर रहा हूँ जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ। संत, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर षट् विकारों पर विजय प्राप्त किए हुए पाप एवं कामना हीन, निश्छल अकिंचन, बाहर भीतर दोनों से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानी, इच्छाहीन, मिताहारी, सत्य-निष्ठ, कवि, विद्वान, योगी सावधान, अन्य लोगों को सम्मान देने वाले निर-हंकारी तथा धैर्यवान होते हैं। वे धर्म की जानकारी और उसके आचरण में अत्यंत कुशल होते हैं। संतगण गुणी, सांसारिक दुखों से मुक्त, संशयहीन होते हैं। उनकी प्रीति मेरे चरणों में ही होती है। उन्हें न तो शरीर प्रिय होता है और नहीं घर :—

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह तें मैं उनके बस रहऊँ ।।
अर० ३-४५

षट विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ।।
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी ।।
अर० ५-४५

गुनागार संसार दुख रहित विगत सन्देह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।। अर० ४५

श्रीराम संतो के गुणों पर प्रकाश डालते हुए आगे कहते हैं कि संत अपने गुणों का वर्णन सुनकर संकुचित तथा दूसरों के गुणों का वर्णन सुनकर विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं। वे सदैव सम तथा शीतल रहते हैं और नीति का कभी उल्लंघन नहीं करते। उनका स्वभाव सरल होता है तथा वे सभी से प्रेम करते हैं। वे साधना के विभिन्न कार्य-क्रमों जप, तप, ब्रत, दम, संयम और नियमों में लगे रहते हैं। वे गुरु ईश्वर तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया तथा मुदिता के भाव होते हैं तथा वे माया रहित हो मेरे चरणों में प्रेम रखते है। उन्हें वैराग्य, विवेक, विनम्रता, विज्ञान तथा वेद एवं पुरान का वास्तविक ज्ञान होता है। वे दंभ, गर्व और मद कभी भी नहीं करते और नहीं भूलकर कभी भी कुमार्ग पर ही चलते

हैं। वे सदैव ही मेरी लीला का गायन तथा श्रवण करते हैं। वे बिना किसी हेतु के ही दूसरों के हित में संलग्न रहते हैं। अंत में श्रीराम ने कहा कि सन्तों के गुण इतने अपरिमित हैं कि शारदा एवं शेष भी उनका वर्णन नहीं कर सकते—

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीति॥
अर० १-४६ (क)

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविन्द बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
अर० २-४६ (क)

विरति विवेक विनय विग्याना। बोध जथारथ वेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ॥
अर० ३-४६ (क)

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रतसीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥
अर० ४-४६ (क)

सुग्रीव द्वारा भेजे गए हनुमान, श्रीराम तथा लक्ष्मण से मिलते हैं। मिलते समय हनुमान ने ब्राह्मण वेष बना रखा था पर वे अपने प्रभु श्रीराम को पहचान कर अनेक विधि प्रार्थना कर उनके चरणों में गिर पड़ते हैं तथा अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाते हैं। श्रीराम उनका प्रबोधन करते हुए कहते हैं कि हे कपि तुम अपने मन में हीनता का भाव मत आने दो। तुम मुझे लक्ष्मण से दुगने प्रिय हो। मुझे लोग सभी पर समान भाव रखने वाला मानते हैं पर मुझे सेवक प्रिय है वह भी अनन्य-गति, जो कि पूर्णतया मुझे ही समर्पित हो। हे हनुमान! अनन्य वही है जो अपने इस विचार में दृढ़ और अचल है कि वह सेवक है तथा विश्व में जड़ चेतन जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है वह उसके प्रभु का ही रूप है—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥
किष्किधा ४-३

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।। किष्किंधा ३

श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता हो जाने पर सुग्रीव अपनी सारी कथा राम को सुना देते हैं। श्रीराम सुग्रीव को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि मैं बालि को एक ही बाण से मार दूँगा। ब्रह्मा और शंकर की शरण में जाने पर भी वह बच न पावेगा। श्रीराम सुग्रीव से मित्र के सम्बन्ध में बताते हुए कहते हैं कि जो लोग अपने मित्र के दुख से दुखी नहीं होते वे इतने बड़े पापी हैं कि उनको देखने से ही बड़ा पाप लगता है। मित्र वही है जो कि अपने पर्वत के समान बड़े दुख को तो धूल की तरह माने और मित्र के धूल के समान दुख को पर्वत की तरह समझे। जिन लोगों की बुद्धि में यह बात स्वाभाविक रूप से ही नहीं आ जाती वे दुष्ट हठ पूर्वक व्यर्थ में ही मित्रता करते हैं। मित्र का यह धर्म है कि वह अपने मित्र को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर चलावे। उसके गुणों का प्रकाशन तथा अवगुणों का गोपन करे। मित्र से आदान-प्रदान में हिचकिचाहट न रखे। अपनी सामर्थ्य के अनुसार सदैव उसकी सहायता करे तथा विपत्ति के समय में तो उसका प्रेम सौगुना हो जाय। वेदों के अनुसार अच्छे मित्रों के यही गुण हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र क दुख रज मेरु समाना।।
किष्किंधा १-७

जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा।।
किष्किंधा २-७।।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
विपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।
किष्किंधा ३-७

श्रीराम आगे कुमित्रों के सम्बन्ध में कहते हैं कि वे समक्ष तो बना-कर मधुर बात करते हैं पर पीठ पीछे बुराई करते तथा मन में कुटि-लता रखते हैं। जिस मित्र का आचरण सर्पगति की भाँति कुटिल हो ऐसे कुमित्र को त्याग देने में ही कल्याण है। दुष्ट सेवक, कृपण राजा, कुलटा स्त्री तथा कपटाचारी मित्र ये चारों पीड़ा दायक होते हैं। वे

सुग्रीव को पूर्ण रूपेण आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि हे मित्र ! तुम मेरे बल पर सारी चिन्ता छोड़ दो मैं हर प्रकार से तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा ।

पति के संहार से दुखी तथा विह्वल तारा को समझाते हुए श्रीराम उसकी माया का हरण कर उसे ज्ञान देते हैं । वे कहते हैं कि यह अधम शरीर पाँच तत्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु से संघटित है । यह शरीर तो प्रत्यक्षतः तुम्हारे सामने ही पड़ा है फिर तुम क्यों रो रही हो ? यदि तुम जीव के लिए रो रही हो तो वह तो नित्य है उसका कभी नाश होता ही नहीं अस्तु उसके लिए दुख करने का कोई भी कारण नहीं है :

तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान हर लीन्हीं माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधम सरीरा ॥
किष्किधा २
प्रकट सो तनु तब आगें सोवा । जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा ॥
किष्किधा ३

सुग्रीव के सिंहासनासीन होते-होते वर्षा ऋतु आ गई । श्रीराम प्रवर्षण गिरि पर निवास कर रहे हैं । इस काल में श्रीराम अनुज लक्ष्मण से भक्ति, वैराग्य, ग्यान और राजनीति की अनेक बातें करते हैं । वे लक्ष्मण जी से कहते हैं कि देखो बादलों को देख कर मोरगण उस प्रकार से नाच रहे हैं जैसे विरागी गृहस्थ किसी विष्णु भक्त को देखकर प्रसन्न हो उठता है । बिजली की चमक बादलों में उसी प्रकार नहीं ठहरती जैसे कि दुष्टों की प्रीति स्थायी नहीं होती । बादल पृथ्वी के निकट आकर उसी प्रकार बरस रहे हैं जैसे कि बुद्धिमान व्यक्ति विद्या पाकर विनम्र हो जाते हैं । वर्षा की बूँदो के आघात को पर्वत उसी प्रकार सहन कर रहे हैं जैसे कि संत गण दुष्टों के बचनों को सह लेते हैं । छोटी नदियाँ अपने किनारों को तोड़ कर उफन कर उसी प्रकार चल रही हैं जैसे कि दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति थोड़े ही धन की प्राप्ति से विवेक को खो देता है । वर्षा का जल पृथ्वी पर पड़ते ही वैसे ही मलिन हो रहा है जैसे कि संसार में आते ही शुद्ध जीव को माया प्रभावित कर लेती है । पानी के एकत्र होने से तालाब वैसे ही

भर रहा है जैसे कि सज्जन पुरुष में धीरे-धीरे सभी अच्छे गुण आ जाते हैं। पृथ्वी घास से हरी हो गई है परिणामस्वरूप मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहे हैं कि पाखण्डियों के मत प्रचार से सदग्रंथ लुप्त हो जाते हैं :—

> हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
> जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ।। किष्किधा १४

श्रीराम आगे कहते हैं कि मेढकों की ध्वनि चारों ओर इस प्रकार सुन्दर लग रही है कि मानो विद्यार्थियों का समुदाय वेदपाठ कर रहा हो। मदार तथा जवास के पत्ते वैसे ही झड़ गए हैं जैसे कि सुव्यवस्थित राज्य में दुष्टों के उद्योग असफल हो जाते हैं। खोजने पर भी धूल कहीं दिखाई नहीं दे रही है। यह स्थिति वैसे ही है जैसे क्रोधी से धर्म दूर हो जाता है। शस्य-सम्पन्न पृथ्वी ऐसी शोभा पा रही है जैसे कि परोपकारी की संपत्ति अन्य लोगों के कल्याण में व्यय होने से सुशोभित होती है। रात्रि के घने अंधकार में जुगनू यत्र-तत्र उसी प्रकार चमक रहे हैं जैसे कि जहाँ-तहाँ पाखण्डियों का समाज अपना पाखण्ड फैलाता रहता है। अत्यधिक वर्षा से खेतों की क्यारियाँ उसी प्रकार फूट चली हैं जिस प्रकार स्वच्छन्द होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान अपने खेतों की निराई उसी प्रकार से कर रहे हैं जिस प्रकार विद्वान लोग मोह, मद तथा मान का त्याग कर देते हैं। चक्रवाक पक्षी वैसे ही नहीं दिखाई दे रहे हैं जैसे कि कलियुग में धर्म लुप्त हो जाता है। वर्षा, ऊसर में भी हो रही है पर वहाँ तृण नहीं उग रहा है जैसे कि हरिभक्त के हृदय में काम-विकार उत्पन्न नहीं होता। पृथ्वी विविध प्रकार के जीवों से भर कर वैसे ही सुशोभित हो रही है जैसे कि अच्छे राज्य में प्रजा की वृद्धि होती है। यत्र-तत्र थककर अनेक पथिक वैसे ही विश्राम कर रहे हैं जैसे कि साधक में ज्ञान की उत्पत्ति से उसकी इंद्रियाँ शिथिल हो वासनाहीन हो जाती हैं। यदा-कदा प्रचण्ड वायु के बहने से बादल नष्ट जाते हैं जैसे कि कुल में किसी कुपूत के उत्पन्न होने पर सद्धर्म नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी दिन में भी अंधकार छा जाता है और कभी सूर्य निकल आता है। यह परिवर्तन उसी प्रकार से होता रहता है जैसे कि अच्छा संग मिलने से ज्ञान उत्पन्न तथा बुरा संग मिलने से नष्ट हो जाता है।

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं।।
किष्किधा १५ (क)

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।।
किष्किधा १५ (ख)

वर्षा ऋतु लगभग समाप्त-प्राय है तथा शरदागम हो रहा है। श्रीराम लक्ष्मण जी से कहते हैं कि अगस्त्य तारे ने निकल कर मार्ग के जल को सोख लिया है जैसे कि लोभ को संतोष सोख लेता है। नदियों और तालाबों का जल निर्मल हो, शोभा को प्राप्त हो रहा है जैसे कि संत का हृदय काम एवं मद के निकल जाने से शुद्ध हो सुशोभित होता है। नदियों तथा तालाबों का जल धीरे-धीरे वैसे ही सूख रहा है जैसे कि ज्ञानी पुरुष धीरे-धीरे ममता को त्याग देते हैं। शरद ऋतु का ज्ञान कर खंजन पक्षी आ गए हैं। पृथ्वी की शोभा वैसी ही हो रही है जैसी कि नीतिज्ञ राजा के कृत्य की। जल के घट जाने से मछलियाँ उसी प्रकार व्याकुल हो रही हैं जैसे कि अज्ञानी तथा धनहीन कुटुंबी धनाभाव में व्याकुल हो जाता है। धनहीन निर्मल आकाश ऐसी शोभा पा रहा है जैसे कि भगवान का भक्त सभी आशाओं से मुक्त होकर सुशोभित होता है। कहीं शरद काल की अल्प बृष्टि उसी प्रकार हो रही है जिस प्रकार किसी किसी को मेरी भक्ति मिल जाती है। राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिक्षुक प्रसन्न होकर अपने-अपने कार्यों की सिद्धि हेतु नगर छोड़कर चल पड़े जिस प्रकार भगवान की भक्ति प्राप्त कर ब्रह्म-चर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास चारों आश्रमों के लोग साधना के श्रम को छोड़ देते हैं—

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहि आश्रमी चारि।।
किष्किधा १६

आगे समझाते हुए श्रीराम कहते हैं कि जहाँ अथाह जल है वहाँ मछलियाँ सुखी हैं जिस प्रकार भगवान की शरण में पहुँचने वाले जीव को फिर कोई भी बाधा नहीं रह जाती। कमलों के पुष्पित हो उठने से तालाब वैसी ही शोभा पा रहा है जैसी कि निर्गुण ब्रह्म

सगुण होने पर पाता है। भौंरे अनुपम गुंजार कर रहे हैं। पक्षिगण नाना प्रकार के शब्द कर रहे हैं। रात्रि को देखकर चक्रवाक के मन में उसी प्रकार से दुख हो रहा है जिस प्रकार दुर्जन दूसरे की सँपत्ति को देखकर दुखी होता है। चातक जल की रटन लगाए हुए है, उसको अत्यधिक प्यास उसी प्रकार से है जिस प्रकार से शंकर-द्रोही सुख के लिए सदैव व्याकुल रहता है। शरद-कालीन ताप को रात्रि में चंद्रमा उसी प्रकार हर लेता है जिस प्रकार संतो का दर्शन पाप को हर लेता है। चकोरों के समूह चंद्रमा को एकटक वैसे ही देख रहे हैं जैसे कि भगवद्भक्त अपने भगवान को पाकर निर्निमेष नेत्रों से उनका दर्शन करते हैं। वर्षा ऋतु में पृथ्वी जीवों से भर गई थी वे जीव अब शरद ऋतु में वैसे ही नष्ट हो गए हैं जैसे कि सद्गुरु के मिलने से संदेह एवं भ्रम का पूर्णरूपेण निराकरण हो जाता है—

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।।
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा।।
किष्किधा १-१७

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा।।
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी।।
किष्किधा २-१७

देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा।।
किष्किधा ४-१७

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही।।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।।
किष्किधा ३-१७

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।। किष्किधा १७

विभीषण श्रीराम की शरण में पहुँचते हैं। सुग्रीव राक्षसों की माया को ध्यान में रखकर उनका विश्वास न करने का परामर्श देते हैं तथा कहते हैं कि विभीषण को बाँध कर रखा जाय। श्रीराम उनके विचार को नीति के अनुसार ठीक मानते हुए भी उसे स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनका प्रण शरणागत की रक्षा करने का है। वे कहते

हैं कि अपने हिताहित का विचार कर जो लोग शरणागत का त्याग करते हैं वे तुच्छ तथा पापी हैं और उन्हें देखने में भी पाप लगता है। शरणागत की रक्षा के दृढ़ निश्चय को अभिव्यक्त करते हुए श्रीराम कहते हैं जिसे करोड़ों ब्राह्मणों के बध का पाप लगा हो वह भी यदि शरण में आ आये तो मैं उसका भी त्याग नहीं करूँगा। जीव ज्यों ही मेरे सामने आता है उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। सामने आने की बात को और स्पष्ट करते हुए श्रीराम आगे कहते हैं कि पापी को स्वभावतः ही मेरा भजन प्रिय नहीं लगेगा। यदि विभी-षण हृदय से दुष्ट होता तो वह मेरे सामने आ ही नहीं सकता था। निर्मल मन वाला व्यक्ति ही मुझे प्राप्त करता है। मुझे कपटाचरण, छल और परदोष-दर्शन अच्छा नहीं लगता। यदि रावण ने हमारा भेद लेने के लिए भेजा हो तो भी किसी भय अथवा हानि की संभावना नहीं है। संसार में जितने भी राक्षस हैं लक्ष्मण उनको क्षण भर में मार सकते हैं। यदि विभीषण भयभीत होकर मेरी शरण में आया है तो मैं उसे प्राणों की तरह सुरक्षित रखूँगा।

विभीषण के शरणागत होकर आत्मनिवेदन करने पर श्रीराम उनसे कहते हैं कि हे सखा सुनो ! मैं तुम्हें अपने स्वभाव की बात बताता हूँ। उसे काकभुशुण्डि, शंकर जी तथा पार्वती जी भी जानती हैं। चाहे कोई व्यक्ति संसार के चराचर सभी का द्रोही ही क्यों न हो यदि वह मद, मोह तथा नानाप्रकार के छल-कपट को त्याग कर भय-भीत हो मेरी शरण में आ जाय तो मैं उसे तुरन्त साधु के समान बना देता हूँ। जो व्यक्ति माता, पिता, भाई, पुत्र, पत्नी, शरीर, धन, घर, मित्र तथा परिवार के ममत्वरूपी धागे को बटोर कर और उन सब को एक डोरी में बट कर उसके द्वारा मन को मेरे चरणों में बाँध देता है, जो सभी में समान दृष्टि रखता है तथा जिसकी कोई भी इच्छा नहीं है और नहीं उसमें हर्ष शोक अथवा भय ही है ऐसा सज्जन व्यक्ति मेरे हृदय में उसी प्रकार निवास करता है जैसे कि लोभी के हृदय में धन रहता है। तुम्हारी तरह के संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी अन्य कारण से शरीर नहीं धारण करता। जो सगुणोपासक हैं, परोप-कार में रत रहते हैं नीति एवं नियमों के पालन में दृढ़ हैं और जो ब्राह्मणों के चरण सेवी हैं वे व्यक्ति मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं :—

जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ।।
सुन्दर० १-४८

तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।।
जननी जनक बंधु सुत दारा । तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ।।
सुन्दर० २-४८

सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं । हरष सोक भय नहिं मन माहीं ।।
सुन्दर० ३-४८

अस सज्जन मम उर बस कैसें । लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ।।
तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरें । धरउँ देह नहि आन निहोरें ।।
सुन्दर० ४-४८

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ।। सुन्दर० ४८

विभीषण तो श्रीराम के सान्निध्य में रह कर उनकी अनपायनी भक्ति के ही अभिलाषी है पर श्रीराम का दर्शन तो अमोघ है। अस्तु वे विभीषण को उसकी इच्छा न होते हुए भी लंका का वह राज्य संकोच सहित सौंप देते हैं जिसे रावण ने अपने शिरों को भगवान शंकर को अर्पित कर प्राप्त किया था। इससे स्पष्ट है कि वे करुणा-वरुणालय कितने शरणागत-वत्सल हैं :—

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ।।
सुन्दर० ५-४९ (क)

विभीषण की सम्मति से श्रीराम समुद्र तट पर तीन दिनों से कुशासन पर बैठे उससे मार्ग की याचना कर रहे हैं पर समुद्र ने उनकी प्रार्थना सुनी ही नहीं। बाध्य होकर वे लक्ष्मण से धनुष और बाण मँगाकर अग्नि बाण छोड़ समुद्र को सुखा देने की बात करते हैं क्योंकि बिना भय के प्रेम नहीं उत्पन्न होता है। वे कहते हैं कि दुष्ट से विनय करना व्यर्थ है क्योंकि उस पर विनय का कोई भी प्रभाव पड़ेगा ही नहीं। इसी प्रकार कुटिल के साथ प्रेम तथा जो स्वभाव से ही कृपण है उससे सुन्दर नीति की बातें नहीं चल पावेंगी। जो व्यक्ति ममता में आबद्ध है उसके ऊपर ज्ञानकथा का कोई भी प्रभाव न होगा और अति लालची व्यक्ति से वैराग्य का कथन निरर्थक हो जायगा। क्रोधी से

शान्ति एवं कामी से भगवत् कथा कहना उसी प्रकार से निरर्थक होगा जिस प्रकार ऊसर में बीज बोने की बात :—

लछिमन बान सरासन आनू । सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ।।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ।।
सु० १-५०

ममता रत सन ग्यान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ।।
क्रोधिहिं सम कामिहि हरि कथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ।।
सु० २-५८

युद्ध-क्षेत्र में रावण को रथी तथा श्रीराम को विरथ देख कर विभीषण का धैर्य छूट गया और श्रीराम के प्रति अधिक प्रेम होने के कारण उनके मन में इस बात का संदेह उत्पन्न हो गया कि इस विषम स्थिति में बलवान रावण पर श्रीराम कैसे विजय प्राप्त कर सकेंगे ? उनके संदेह का निराकरण करते हुए श्रीराम ने जो कुछ कहा है वह अति महत्वपूर्ण तथा मानव-जीवन के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धान्त है । वे कहते हैं कि हे सखा ! जिस रथ से विजय की प्राप्ति होती है उसमें युद्ध क्षेत्र में उतरने वाले व्यक्ति के शौर्य एवं धैर्य के दो पहिए लगे होते हैं । उसकी सत्यता तथा सदाचार का भाव ही रथ की दृढ़ ध्वजा तथा पताका है । बल, कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय का विवेक, इन्द्रिय-जयता और परोपकार ये चार उसके रथ के चार घोड़े हैं । ये घोड़े क्षमा, दया, तथा समानता की डोरी से रथ में जुड़े हुए हैं । ईश्वर का भजन ही इस वास्तविक विजय-रथ को चलाने वाला सारथि है । इस विजयरथ पर सवार विजयाभिलाषी का वैराग्य-भाव उसकी ढाल, संतोष तलवार दान फरसा, बुद्धि, प्रचण्ड शक्ति तथा श्रेष्ठ विज्ञान ही कठिन धनुष है । मलरहित और स्थिर मन तरकस, शम, यम तथा नियम अनेक बाण और ब्राह्मणों तथा गुरु की पूजा ही अभेद्य कवच हैं । श्रीराम ने स्पष्ट किया कि विजयाभिलाषी मनुष्य विभिन्न गुणों के बल पर ही विजय प्राप्त कर सकता है न कि रथ के साधन-बल पर । आगे वे कहते हैं कि इस प्रकार के सद्गुणों का रथ जिसके पास होगा उसकी किसी से शत्रुता ही न होगी फिर किसी को विजय करने का प्रश्न ही नहीं उठेगा । आगे के कथन से वे सारे प्रसंग को आध्यामित्मकता का स्वरूप प्रदान कर देते हैं यह कह कर कि जिस

व्यक्ति के पास ऐसा दृढ़ रथ होगा वह वीर इस संसार को जो कि बहुत ही अजेय है जीत सकता है, रावण पर विजय प्राप्त करना तो अपेक्षाकृत बहुत ही सरल है :—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना ।।
लंका० २-८० (क)

सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।।
बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ।।
लंका० ३-८०

ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना !।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ।।
४-८० (क)

अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा । एहि सम विजय उपाय न दूजा ।।
लंका ५-८० (क)

सखा धर्ममय अस रथ जाकें । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ।।
लंका ६-८० (क]

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ।। लंका ८० (क)

श्रीराम ने विभीषण की आशंका का समाधान कर उसे निर्मूल कर दिया है कि रावण की साधन-संपन्नता के कारण उस पर विजय प्राप्त करना संभव न होगा । प्रकारान्तर से इसमें यह बात स्पष्ट की गई है कि वास्तविक शत्रु तो संसार की यह सांसारिकता ही है जिसमें फँस कर मानव अपने जीवन के मूल लक्ष्य को सर्वथा भूल ही जाता है । यदि उसको सम्यक् बोध हो तो किसी अन्य व्यक्ति से शत्रुता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । यदि कहीं विजय प्राप्त करने की कोई बात है तो वह है स्वयं अपनी चित्तवृत्ति पर जो कि आत्म-साक्षात्कार में बाधक है । किसी भी वीर को इसी पर विजय प्राप्त करना है ।

भरत जी की जिज्ञासा पर श्रीराम वेद-पुराण प्रसिद्ध संतों का लक्षण बताते हैं । संतों एवं असंतों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि संत एवं असंत चन्दन एवं कुल्हाड़ी के समान होते हैं ।

कुल्हाड़ी तो चन्दन को काटने का काम करती है पर चन्दन प्रतिकूल प्रतिक्रिया न कर उसे सुगंधित कर देता है। भाव यह है कि संत गण अपने प्रति किए गए उपकार का प्रतिकार न कर अपने स्वभाव के अनुसार ऐसे लोगों का उपकार ही करते हैं। संत विषयों से लिप्त नहीं होते, वे शील एवं सद्गुण के भण्डार होते हैं। उनमें वास्तविक सहानुभूति इतनी अधिक होती है कि वे दूसरे के दुख से दुखी तथा सुख से सुखी होते हैं। वे सुख-दुख से परे साम्यावस्था में रहते हैं। उनकी किसी से भी शत्रुता नहीं होती। लोभ, क्षोभ, हर्ष तथा भय उनमें नहीं होता। वे चित्त से कोमल तथा दीनों के प्रति दयालु होते हैं। वे मन, कर्म तथा बचन से मेरी निर्मल भक्ति करते हैं। ऐसे लोग मेरे लिए प्राणों के समान हैं जो कि सब को तो सम्मान देते हैं पर स्वयं सम्मान-रहित होकर रहते हैं। काम-वासनाहीन ये लोग मेरे नाम के परायण, शान्ति, विनम्रता, वैराग्य तथा प्रसन्नता के घर होते है। उनमें शीतलता, सरलता, मैत्री-भाव तथा ब्राह्मणचरणों में प्रेम होता है जिससे कि धर्म की उत्पत्ति होती है। वे कभी भी कठोर बात नहीं कहते और नहीं शम, दम, नियम तथा नीति से ही कभी विचलित होते हैं। संत, निन्दा तथा स्तुति दोनों परिस्थितियों में समान भाव रखते हैं अर्थात् न तो निन्दा से दुखी होते हैं और नही स्तुति से प्रसन्न। गुणवान एवं सुख-राशि ऐसे संतगण मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं :—

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥
उत्तर० ४-३७

× × ×

विषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख-सुख देखे पर।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
उत्तर १-३८

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
उत्तर० २-३८

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥

सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
उत्तर ३-३८

सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥
उत्तर० ४-३८

निन्दा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मन्दिर सुख पुंज ॥ उत्तर० ३८

आगे श्रीराम असन्तों का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि दुष्टों के हृदय में संताप विशेष रूप से होता हैं। वे दूसरों की संपत्ति को देख कर सदैव ईर्ष्याग्नि से जलते रहते हैं। दूसरों की बुराई उनको इतनी प्रिय होती है कि इसे सुनकर वे ऐसे प्रसन्न होते हैं मानों उनको अनायास ही मार्ग में पड़ा हुआ खजाना मिल गया हो। वे काम, क्रोध, मद तथा लोभ के परायण निर्दयी, कपटी, कुटिल तथा पापों के घर होते हैं। वे अकारण ही सभी से शत्रुभाव रखते हैं तथा जो उनका हितसाधन करने वाला होता है उसका भी अहित ही करते हैं :—

खलन्ह, हृदयँ अति ताप बिसेषी । जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई । हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
उत्तर २-३९

काम, क्रोध, मद, लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
उत्तर ३-३९

असंत गण, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असत्य का ही आश्रय लेते हैं उनके वचन एवं कर्म की स्थिति मोर की जैसी होती है जो कि बोलता तो बहुत मधुर है पर खाता है महा विषधर सर्प को। वे दूसरों में द्रोह करने वाले पराये धन, परायी स्त्री तथा निन्दा में रत रहते हैं। ऐसे पापी मनुष्य शरीर धारण किए हुए भी राक्षस ही होते हैं। वे अति लोभी तथा नरक-भय से मुक्त पशुवत् आहार एवं मैथुन के वशीभूत हैं। दूसरों की प्रशंसा दुखी तथा विपत्ति सुखी बनाती है। वे स्वार्थी, परिवार विरोधी, लंपट, कामी, लोभी तथा अति क्रोधी होते हैं। वे लोग सम्मानीय माता, गुरु तथा ब्राह्मणों को भी यथोचित मान्यता नहीं देते। वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं दूसरों को भी नष्ट कर देते हैं। मोह के वशीभूत हो वे अन्य लोगों से द्रोह करते हैं तथा

सन्तों का संग एवं भगवत्कथा उन्हें अच्छी नहीं लगती। वे दुर्गुणों के समुद्र, दुर्बद्धि, कामी, वेद-निन्दक और दूसरों के धन का अपहरण करने वाले होते हैं। वे दूसरों से द्रोह करते ही हैं पर ब्राह्मणों से विशेष द्रोह करते हैं। उनका वेष तो सुन्दर होता है पर उनका हृदय अहंकार एवं कपट से परिपूर्ण रहता है। ऐसे दुष्ट व्यक्ति सतयुग और त्रेता में नहीं होंगे। द्वापर में कुछ पर कलियुग में बहुत होंगे।

श्रीराम मानव के कर्त्तव्य की ओर इंगित करते हुए कहते हैं कि दूसरों के उपकार के समान अन्य कोई भी धर्म नहीं है तथा दूसरों के अपकार के समान कोई अधर्म नहीं हैं। मनुष्य शरीर पाकर जो लोग दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं वे महा सांसारिक कष्ट अर्थात् जन्म-मरण के कष्ट को झेलते रहते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थी हो अनेक पाप करता है तथा सांसारिक स्वार्थों में रत होकर परमार्थ को नष्ट कर लेता है ऐसे लोगों के लिए मैं कालरूप हूँ तथा उनके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार उन्हें फल देने वाला हूँ। संसार के बुद्धिमान लोग इस संसार को दुख-रूप जान कर मेरा ही भजन करते हैं। वे शुभाशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का त्याग कर देवताओं, मनुष्यों तथा मुनियों के स्वामी मुझको ही भजते हैं। जो लोग संतों तथा असंतों के लक्षणों को जानते हैं, वे आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ते। भरत का प्रबोधन करते हुए श्रीराम कहते हैं कि ये अनेक गुण-दोष सब माया के ही द्वारा सृजित हैं। इनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। गुण यही है कि न तो गुण को मान्यता दी जाय और न दोष को ही। इनको मान्यता देना अविवेक ही है :—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ॥ उत्तर ४१

एक बार श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ, ब्रह्मणों तथा सभी नगर-निवासियों को बुला कर कहा कि आप लोग मेरी बात सुनें। मैं यह बात न तो हृदय की ममता के कारण कह रहा हूँ न इसमें कोई अनीति ही है और न प्रभुता का भाव ही। आप सुनें और यदि अच्छी लगे तो इसको कार्य रूप में परिणित करें। वही मेरा सेवक है वही मेरा प्रिय है जो कि मेरी आज्ञा का पालन करे। यदि मैं कोई भी अनीति की बात करूँ तो भयमुक्त होकर मुझे टोक देना।

श्रीराम मनुष्य के कर्तव्य और उस में मानव शरीर के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि बड़े भाग्य से ही मनुष्य का शरीर मिलता है। यह शरीर इतना महत्वपूर्ण है कि देवताओं को भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है, ऐसा ही सद्ग्रंथों ने कहा है। यह शरीर ईश्वर-प्राप्ति के साधन का आधार और इस प्रकार मुक्ति का द्वार है। इसे पाकर भी जो आत्म-साक्षात्कार नहीं कर लेता वह इस लोक को छोड़ कर अन्य लोक में जाने पर दुख पाता है—क्यों कि उसने इस लोक में प्राप्त मनुष्य-शरीर का सदुपयोग नहीं किया। अब वह मिथ्या रूप से ही अपने आलस्य और प्रमाद को छिपाने के लिए काल, कर्म तथा ईश्वर को दोष देता है। वे अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इस शरीर का फल वासनाओं की पूर्ति नहीं है। सुकर्मों के प्रतिफल स्वरूप मिला स्वर्ग भी बहुत थोड़े समय के लिए ही होता है। उसकी समाप्ति पर पुनः दुख ही शेष रह जाता है। मनुष्य शरीर पाकर जो लोग वासना में मन लगाते हैं उनका यह कार्य वैसा ही अविवेकपूर्ण होता है जैसे कोई भी व्यक्ति अमृत को गिरा कर उसके स्थान पर विष ले ले। यह कार्य वैसी ही अज्ञानता एवं मूर्खता का कार्य होगा जैसे कि कोई व्यक्ति पारस मणि को त्याग कर उसके स्थान पर घुँघुची को धारण कर ले। यह अविनाशी जीव, माया की प्रेरणा से चारखानों एवं चौरासी लाख योनियों में काल, कर्म, गुण एवं स्वभाव से घिरा हुआ, भ्रमण करता रहता है। कभी करुणाकर करुणार्द्र हो कर बिना किसी कारण के ही इस जीव को मनुष्य शरीर प्रदान कर देते हैं :—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥
उत्तर ४-४३

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥ उत्तर ४३

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
उत्तर १-४४

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

आकर चार लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥
उत्तर २-४४

फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥
उत्तर ३-४४

श्रीराम मनुष्य शरीर की उपादेयता बताते हुए कहते हैं कि यह मनुष्य शरीर संसार रूपी सागर को पार करने के लिए जहाज की तरह है । जिस प्रकार जहाज की गति अनुकूल वायु से बढ़ जाती है तथा प्रतिकूल से उसके संकट में पड़ने का भय हो जाता है उसी प्रकार मेरी कृपा इस मनुष्य शरीर रूपी जहाज के लिए अनुकूल वायु की भाँति है । सद्‌गुरु ही इस जहाज के खेने वाले हैं । इस प्रकार मुक्ति के दुर्लभ साधन इस मानवशरीर के आधार पर सुलभ हो गए हैं । यदि ऐसे साधन पाकर भी मनुष्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर पाता तो वह कृतघ्न और मन्द बुद्धि है क्योंकि भगवान ने अहैतुकी कृपा करके उसे जो मनुष्य शरीर प्रदान किया उसका उसने सदुपयोग नहीं किया । वह उस गति को प्राप्त होता है जिसे आतमघाती प्राप्त होते हैं :—

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सद्‌गुरु दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
उत्तर ४-४४

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निन्दक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥ उत्तर ४४

आगे अपनी भक्ति के सुलभ एवं सुखद मार्ग की बात बताते हुए श्रीराम कहते हैं कि यदि संसार एवं परलोक दोनों में सुख चाहते हो तो मेरी बातों को सुनकर उसे दृढ़तापूर्वक हृदय में धारण कर लो । भक्ति का यह मार्ग सरल तथा सुखद है । ज्ञान का मार्ग अगम है और उसमें अनेक विघ्न हैं । उसका साधन अपेक्षाकृत कठिन है क्योंकि उसमें मन के टिकाने का कोई आधार नहीं मिलता । बहुत कष्ट पूर्वक प्रयास करने पर कुछ लोग उसे प्राप्त भी कर लेते हैं पर वह भी भक्ति रहित होने के कारण मुझे प्रिय नहीं होता । भक्ति स्वतंत्र तथा सभी गुणों की खान है । इस भक्ति को मनुष्य संतों के सत्संग के बिना प्राप्त नहीं कर सकता । जब तक पुण्य समूह का उदय नहीं होता तब

तक संतों का मिलना ही संभव नहीं होता। सत्संग ही मनुष्य को आवागमन से मुक्त करने वाला है। संसार में एक ही पुण्य है दूसरा नहीं। वह है मन, कर्म तथा वाणी से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा क्योंकि जो भी निष्कपट हो ब्राह्मणों की सेवा करता है उस पर मुनि तथा देवता सभी कृपालु रहते हैं :—

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोर पुरान श्रुति गाई॥
उत्तर १-४५

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥
उत्तर २-४५

भक्ति सुतंत्र सकल गुन खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहि न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥
उत्तर ३-४५

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करइ द्विज सेवा॥
उत्तर ४-४५

श्रीराम ने यह बात बहुत ही स्पष्ट ढंग से समझाई है कि ब्राह्मणों के चरणों की पूजा से पुण्य का उदय होता है और पुण्य समूहों के उदय से ही संतों का संग मिलता है। संतों के संग से ही भक्ति का मार्ग मिलता है और उससे सरलतापूर्वक आत्मसाक्षात्कार संभव होता है।

भव-सागर से पार होने के संबंध में श्रीराम, नगर-निवासियों को अत्यंत विनम्रतापूर्वक एक और रहस्य की बात बताते हुए कहते हैं कि शंकर के भजन बिना किसी भी मनुष्य को मेरी भक्ति नहीं मिलती है। वे आगे कहते हैं कि भला बताओ तो भक्ति मार्ग में किस प्रयास की आवश्यकता होती है ? इसमें योग, यज्ञ, जप, तप, उपवास किसी की अपेक्षा नहीं होती। इसमें एक मात्र सरल स्वभाव, निर्मल तथा अपनी स्थिति में ही संतुष्टि की अपेक्षा होती है। उसे पूर्णतया मुझ पर ही निर्भर रहना चाहिए। इस प्रकार आचरण करने वाले के ही वश में मैं रहता हूँ :—

औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजनु बिना नर भगति न पावइ मोरि ॥ उत्तर० ४५

कहहु भगति पथ कौन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥
उत्तर० १-४६

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥
उत्तर० २-४६

आगे श्रीराम कहते हैं कि साधक के किसी से बैर करे न झगड़ा करे न किसी से कुछ प्राप्त करने की आशा ही रखे और न भयभीत ही हो। फल की इच्छा से कार्य न करे। घर, परिवार की ममता में न फँसे। मानहीन, पापरहित और क्रोध-मुक्त रहे। जो निपुण तथा विज्ञानी हैं, सत्संग जिसे सदा प्रिय है, जो सभी विषयों से मुक्त हैं, यहाँ तक कि उसे स्वर्ग की भी कामना नहीं है उसे भी वह तृणवत्‌ही मानता है। जो स्वयं तो भक्ति-पक्ष पर दृढ़तापूर्वक रहता है पर दूसरों के मतखंडन की मूर्खता नहीं करता और उसने सभी प्रकार के तर्कों को दूर कर लिया है अर्थात् संशयरहित हो गया है, जो मेरे गुणों तथा नाम के परायण हैं और ममता, मद तथा मोह से रहित हैं उसके सुख को अनुभूति उन्हीं को हो सकती है जिनको आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति हो चुकी है :—

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥
उत्तर० ३-४६

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहि सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥
अर० ४-४६

मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानन्द सन्दोह। उत्तर ०-४६

काकभुशुण्डि को श्रीराम वरदान माँगने को कहते हैं। वे श्रीराम से उनकी भक्ति का ही वर माँगते हैं जिससे श्रीराम बहुत प्रभावित होते हैं और कहते हैं कि मैं तुम्हारी चतुरता से अतिप्रसन्न हुआ। अब

मेरी कृपा से सभी शुभ गुण तुम्हें प्राप्त हो जायेंगे। तुम्हें साधन करने का कष्ट किए बिना ही भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग सभी रहस्य मेरी कृपा से ही ज्ञात हो जायगा। अब माया से उद्भूत होने वाले भ्रम तुम्हें नहीं व्यापेंगे। तुम मुझे अनादि, अजन्मा, गुणातीत और गुणों की खान ब्रह्म मानना। यह विचार कर मेरे चरणों में अटल प्रेम रखना कि भक्त मुझे निरन्तर प्रिय हैं।

श्रीराम और आगे कहते हैं कि अब वेदादि के द्वारा वर्णित मेरी सत्य, सुगम तथा निर्मल वाणी को सुनो! मैं अपना सिद्धान्त तुम्हें बता रहा हूँ। इसे सुन कर मन में धारण कर सभी कुछ त्याग कर मेरा ही भजन करो। यह संसार मेरी माया से ही उद्भूत है। इसमें अनेक प्रकार के चर तथा अचर जीव हैं। ये सभी मेरे उत्पन्न किए हुए तथा मुझे प्रिय हैं पर सर्वाधिक प्रिय मनुष्य हैं। इनमें भी ब्राह्मण, ब्राह्मणों में भी वेद के ज्ञाता, वेद ज्ञाताओं में भी उन पर आचरण करने वाले तथा उनमें भी विरक्त मुझे प्रिय हैं। विरक्तों में भी ज्ञानी, ज्ञानियों में भी विज्ञानी और विज्ञानियों में भी मुझे मेरे वे दास अधिक प्रिय है जो कि पूर्णतया मुझ पर ही निर्भर हैं। मैं तुमसे बार-बार यह सत्य बात कहता हूँ कि मुझे सेवक के समान कोई भी प्रिय नहीं हैं। भक्ति हीन ब्रह्मा भी मुझे उतने ही प्रिय हैं जितने कि अन्य जीव परन्तु अति नीच प्राणी भी यदि वह भक्त है तो मुझे प्राण की तरह प्रिय है :—

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥
उत्तर० २-८४

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ नियम धरम अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त मुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥
उत्तर० ३ ८६

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
उत्तर० ४-८६

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय अस मम बानी॥
उत्तर० ५-८६

श्रीराम ने काकभुशुण्डि को सुनने के लिए सावधान करते हुए कहा कि पवित्र, सुशील एवं सुबुद्धि सेवक सभी को प्रिय होता है, ऐसा वेद पुराण की नीति कहती है। एक पिता के अनेक पुत्र विभिन्न गुणों तथा आचरणों वाले होते हैं। उनमें से कोई विद्वान, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई वीर, कोई दानी, कोई सर्वज्ञ और कोई धर्म परायण होता है। गुणों की इन विभिन्नताओं के होते हुए भी पिता का स्नेह सब पर समान रूप से ही होता है। यदि कोई पुत्र मन, वचन तथा कर्म से पितृ-भक्त हो और पूर्णतया उसी पर निर्भर हो, अन्य किसी का अवलंब न हो तो भले ही वह सब प्रकार से अज्ञानी क्यों न हो पिता को प्राण के समान प्रिय होता है। इसी प्रकार पशु-पक्षी, देवता, मानव, और राक्षसों सहित जितने भी चेतन एवं जड़ जीव हैं इनसे परिपूर्ण यह समग्र विश्व मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है और सब पर मेरी दया बराबर ही है पर इनमें से जो मद और माया छोड़कर मुझे मन, वचन तथा शरीर से भजता है, वह चाहे पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चराचर का कोई अन्य जीव हो यदि निष्कपट भाव से मुझे भजता है तो वह मुझे परम प्रिय है। आगे श्रीराम काकभुशुण्डि से पुनः कहते हैं कि पवित्र सेवक मुझे प्राणों के समान प्रिय होता है। इस पर विचार कर उसे अन्य आश्रय और विश्वास को छोड़ कर मेरा ही भजन करना चाहिए। इससे काल का प्रभाव कभी भी तुम्हें नहीं व्यापेगा। तुम निरन्तर मेरा भजन और स्मरण करते रहना :—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।। उत्तर ८७(क)
सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस विचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब।। उत्तर ८७ (ख)
कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरन्तर मोही।।
उत्तर १-८८ (क)

श्रीराम के द्वारा विभिन्न अवसरों पर किए गए प्रबोधन आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर अग्रसर होने वाले पथिक को इनमें चिन्तन एवं मार्ग-दर्शन की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होगी।

□

सीतापति राम

श्रीराम के अनेक रूपों में सीतापति राम भी उनका एक रूप है। श्रीराम का यह रूप बहुत ही महत्वपूर्ण है क्यों कि परब्रह्म परमेश्वर जब भी सक्रिय होता है तो उसकी सक्रियता आदि शक्ति अथवा उसकी माया जो भी कहें के माध्यम से ही संभव होती है। जब मनु और शतरूपा ने भगवान के समान सुत की याचना की थी तभी उन्होंने कहा था कि जब तुम अवध के राजा होगे तभी मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में अपने अंशों सहित अवतार लूँगा। संसार को उत्पन्न करने वाली मेरी माया भी अवतरित होगी।

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोर यह माया ॥
बाल० २-१५२

इस प्रकार भगवान अपने पूर्व निश्चय तथा मनु-शतरूपा को दिए गए वर के अनुसार राजा दशरथ के गृह में अवतरित होते हैं। आदि शक्ति सीता, राजा जनक के घर की शोभा बढ़ाती हैं।

सीताराम का संबंध एवं प्रेम पुरातन है। इस बात को अन्य लोग नहीं जानते पर सीता तथा श्रीराम दोनो को इसका समुचित ज्ञान है। जनक जी की पुष्प वाटिका में एक सखी जो कि दूसरों से बिलग हो गई थी आकर राम तथा लक्ष्मण की शोभा का वर्णन करती है तब सीता उसी सखी को आगे कर अन्य सखियों सहित श्रीराम के दर्शनार्थ जाती हैं।

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥
बाल० ४-२२६

नारद के पूर्व बचनों, जिनमें उन्होंने श्रीराम के मिलने की बात कही थी के स्मरण से पवित्र प्रेम की उत्पत्ति होती है :—

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकत सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥ बाल० २२६

सीता-स्वयंवर में शिव-धनुष को तोड़ने को सीतावरण का आधार रखा गया है। श्रीराम तथा लक्ष्मण, गुरु विश्वामित्र के साथ जनकपुर की धनुषयज्ञ-शाला में पहुँचते हैं। श्रीराम के रूप को देख कर कुछ लोग कहते हैं कि यदि जनक इन्हें देख लेंगे तो स्वतः ही अपना प्रण-त्याग कर सीता को इन्हें ब्याह देंगे। इस पर कुछ अविवेकी राजा कहते हैं कि धनुष तोड़ने पर भी व्याह होना संभव नहीं है क्योंकि एक बार हम सीता के लिए काल को भी युद्ध में परास्त करने का दम रखते हैं। विवेकी राजागण उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि हमारी पवित्र शिक्षा को सुन कर सीता को जगदंबा तथा श्रीराम को जगत्पिता मान कर अच्छी तरह से उनकी शोभा को देख लो—

सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥
बाल० १-२४६

जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
बाल० २-२४६

श्रीराम की जनकपुर में आई हुई बारात का सीता जी अपनी महिमा से स्वागत-सत्कार करती हैं। इस बात को तो अन्य लोग नहीं जान पाते पर श्रीराम जान लेते हैं तथा इसके हेतु की अनुभूति से अति प्रसन्न होते हैं। यह हेतु इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि सीता जी परब्रह्म परमेश्वर की ही शक्ति हैं। वे अपने शक्तिस्रोत की सेवा का प्रयास कर रही हैं—

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बुलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥
बाल० ४-३०६

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥
बाल० २-३०७

सीतापति श्रीराम परंपरा का पालन एवं स्वस्थ आदर्शों के स्थापन में अग्रणी हैं। गुरु वसिष्ठ, राज्याभिषेक के पूर्व महाराज दशरथ के अनुरोध पर श्रीराम के निवास स्थान में पहुँचते हैं, उन्हें आवश्यक शिक्षा एवं निर्देश देने हेतु। श्रीराम उन्हें ससम्मान अपने भवन में लाकर सीता सहित पुनः उनके चरणों की वन्दना करते हैं—

गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले रामु कमल कर जोरी ।।
अयो० २-६

श्रीराम के राज्याभिषेक की बात जान कर उनके बाल सखाण उनसे मिलने आते हैं । श्रीराम के व्यवहार से उनके सखा इतने प्रसन्न एवं प्रभावित होते हैं कि वे भगवान से यह याचना करते हैं कि कर्म के वशीभूत हो जिन-जिन योनियों में जन्म लें वहाँ ईश्वर उन्हें यह सुविधा दे कि वे सभी सेवक हों तथा सीतापति राम उनके स्वामी हों । यह संबंध बराबर अन्त तक निभता रहे—

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ।।
सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नाथ यह ओर निबाहू ।।
अयो० ३-२४

श्रीराम बन जाने की तैयारी कर रहे हैं । वे माता कौसल्या से विदा लेने आते हैं । सीताजी भी वहीं आ जाती हैं और बन में श्रीराम के साथ जाना चाहती हैं । माता की इच्छानुसार श्रीराम, सीताजी के घर पर रहकर ही सासु-ससुर की सेवा की शिक्षा देते है पर सीता तैयार नहीं होती क्योंकि पति-वियोग जैसा भीषण दुख उन्हें अन्य नहीं दीखता । श्रीराम को जब यह आभास हो जाता है कि यदि सीता को हठ पूर्वक घर में ही छोड़ा जायगा तो वे अपना प्राण ही दे देंगी । अस्तु पति-धर्म का निर्वाह करते हुए वे कहते हैं कि आज चिन्ता करने का कोई भी कारण नहीं है; शीघ्र ही बन चलने की तैयारी करो—

कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ।।
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू । बेगि करहु बन गवन समाजू ।।
अयो० २-६८

श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण के साथ बन में चले जा रहे हैं । सीता भी उनके साथ चल तो रही हैं पर अनभ्यास के कारण थक गई हैं । श्रीराम ने सीता को विश्राम देने के उद्देश्य से एक घड़ी भर वट-वृक्ष की छाया में विश्राम किया । इससे ग्रामीणों को इनके रूप की अलौकिक शोभा को देखने का सुअवसर मिला—

जानी श्रमित सीय मन माहीं । घरिक बिलंब कीन्ह बट छाहीं ।।
मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ।।
अयो० २-११५

श्रीराम अपनी प्रिया सीता का निरन्तर ध्यान रखते हैं। जब भी वे उन्हें थकी हुए देखते हैं, छाया, जल और कन्दमूल फलादि के साधन और सुविधा को देखकर वहीं रात्रि निवास करते हैं। कन्दमूल फल खा कर रात्रि बिता देते हैं। प्रातःकाल स्नान कर आगे चलते हैं—

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥
अयो० २-१२४

श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण को बन जाते हुए देखकर गाँव की महिलाएँ बहुत ही अनुनय-विनय के साथ उनसे श्रीराम के संबंध में जिज्ञासा करती हैं। सीताजी संकोच सहित संकेत से उन्हें यह समझा देती हैं कि वे सीतापति राम हैं। यह जान कर ग्राम बधुएँ बहुत ही प्रसन्न हुईं—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु विधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
अयो० ३-११७
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥
अयो० ४-११७

महामुनि बाल्मीकि के सुझाव पर सीतापति श्रीराम सीता तथा अनुज लक्ष्मण सहित चित्रकूट पहुँचे। वहाँ एक अच्छा स्थान देख कर लक्ष्मण को रहने की व्यवस्था करने को कहा। वहाँ सीतापति श्रीराम सीता तथा लक्ष्मण के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानों कामदेव मुनिवेष बनाकर पत्नी रति और बसन्त ऋतु के साथ सुशोभित हो :—

लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदन मुनि वेष जनु रति रितुराज समेत॥ अयो० १३३

लक्ष्मण, श्रीराम की सेवा, मन, वचन तथा कर्म से कर रहे हैं। वे प्रत्येक क्षण सीता तथा सीतापति राम के चरणों को देख, तथा अपने ऊपर उनका स्नेह जान कर स्वप्न में भी माता, पिता, भाई तथा घर का स्मरण नहीं करते। अयोध्या, कुटुम्बियों तथा घर की याद को भूल कर सीता जी प्रतिक्षण पति के चन्द्रवदन को देखते हुए उनके साथ सुखपूर्वक रह रही हैं। अपने प्रियतम का स्नेह अपने ऊपर

बढ़ता हुआ देखकर सीता बहुत ही प्रसन्न रहती हैं। सीता का मन श्रीराम के चरणों में लगा हुआ है परिणामस्वरूप बन, उन्हें सैकड़ों अवध के समान प्रिय प्रतीत होता रहा है। उन्हें पर्णकुटी, प्रियतम के साथ प्रिय लगती है। बन के पशु तथा पक्षी पारिवारिक जनों, मुनि एवं उनकी पत्नियाँ स्वसुर एवं सासु की तरह प्रतीत होते हैं। कंदमूल फल का भोजन अमृत के समान प्रतीत हो रहा है। श्रीराम के साथ कुश एवं पल्लवों की सेज शत कामदेवों की सेज के समान सुखदायी है। जिनके दर्शन मात्र से जीव लोकपाल बन जाते हैं उनको क्या भोग-विलास मोहित कर सकते हैं? जिन श्रीराम का नाम लेते ही भक्त-गण विविध भोगों को तृणवत् त्यागने में समर्थ हो जाते हैं उन राम-प्रिया के लिए जो कि जगज्जननी है भोगों का त्याग आश्चर्य-जनक नहीं है :—

सुमिरत रामहि तजहि जन तृन सम विषय बिलासु।
रामप्रिया जगजननि सिय कछु न आचरज तासु ॥ अयो० १४०

श्रीराम सीता एवं लक्ष्मण के सुख का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। वे वही सब कुछ करते हैं जिससे कि ये लोग सुखी रहें। सीता एवं लक्ष्मण श्रीराम की प्रतिच्छाया की ही भाँति आचरण करते हैं। कभी अयोध्या की सुधि में यदि श्रीराम दुखी होते हैं तो ये लोग भी व्याकुल हो जाते हैं। इनकी व्याकुलता को दूर करने हेतु श्रीराम पवित्र कथाएँ कहते हैं जिनको सुन कर सीता और लक्ष्मण सुखी होते हैं। श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ पर्णकुटी में इस प्रकार सुशोभित होते हैं जैसे कि इन्द्र अमरावती में अपनी पत्नी शची तथा पुत्र जयन्त के साथ सुशोभित होता है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता की सार-संभार इस प्रकार करते हैं जैसे कि पलकें नेत्रगोलकों की करती हैं। उधर सीता और लक्ष्मण श्रीराम की सेवा उस तन्मयता से करते हैं जैसे कि विवेक-हीन पुरुष शरीर को ही सब कुछ मान कर उसकी सेवा करता है :—

जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें ॥
सेवहि लखन सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि ॥
अयो० १-१४२

श्रीराम, सीतापति के रूप में आचरण करते हुए सीता की प्रसन्नता का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। स्नेह से सीता की प्रसन्नता हेतु श्रीराम

ने पुष्पों का चयन कर उनसे विविध प्रकार के आभूषण बनाए। स्फटिक शिला पर बैठ कर श्रीराम ने पुष्पों से बने हुए इन आभूषणों को सादर सीता जी को धारण कराए। इससे यह बात स्पष्ट है कि श्रीराम अपने सीतापति के दायित्वों के प्रति भी पूर्णरूपेण जागरूक हैं तथा उसका निर्वाह भी तत्परतापूर्वक कर रहे हैं :—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर॥
अर० २-१

सुरपति-सुत जयन्त अपनी मूढ़ता वश श्रीराम के बल-परीक्षण हेतु पुष्पाभूषणों से सुसज्जा सीता के चरणों पर चोंच-प्रहार करता है। श्रीराम, चोंच के प्रहार से रक्तस्राव का ज्ञान होते ही मंत्र-प्रेरित ब्रह्म-सर संधान करते हैं। इस प्रकार वे धृष्ट जयन्त को समुचित शिक्षा का विधान कर अपने पति-दायित्व का निर्वाह करते हैं :—

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥ अर० १-२

आश्रम में अनुसुइया जी सीता जी को दिव्य वसनाभूषण पहना कर उनसे नारि-धर्म की बात कहती हैं। अन्त में वे कहती हैं कि ये बातें तो मैंने जगत-कल्याण के लिए कही हैं तुम्हारे लिए नहीं क्योंकि तुमको तो तुम्हारे पति श्रीराम प्राणों के समान प्रिय हैं। तुम्हारे तो नाम में इतना प्रभाव है कि स्त्रियाँ उसका स्मरण कर पतिव्रत का पालन करती हैं :—

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥ अर० ५ (ख)

सीतापतिराम, सीता की रक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। चित्रकूट में श्रीराम एवं भरत की भेंट होने पर जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि गुरु वसिष्ठ, माताएँ तथा अन्य गण्यमान नगर निवासी भी भरत के साथ श्रीराम को अयोध्या वापस ले जाने के लिए आए हैं तो वे उनकी अगवानी करते हैं। अगवानी के लिए जाने के पूर्व वे सीता जी की रक्षा हेतु शत्रुघ्न को उनके पास छोड़ जाते हैं :—

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपु दवनू॥
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरम धुरि दीनदयाला॥
अयो० १-२४३

शूर्पणखा के विकट रूप को देख कर जब सीता भयभीत होती हैं तभी श्रीराम लक्ष्मण को संकेत करते हैं उसे समुचित दण्ड देने हेतु :-

सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥

अर० १०-१७

शूर्पणखा की प्रेरणा से खरदूषण अपनी विशाल वाहिनी के साथ श्रीराम पर चढ़ाई करता है। श्रीराम अकेले ही युद्ध करने का निर्णय लेते हैं। युद्ध में संलग्न होने के पूर्व वे सीता की सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध करते हैं। वे लक्ष्मण को बुला कर कहते हैं कि राक्षसों की भयंकर सेना आ गई है। अस्तु सीता को रक्षा की दृष्टि से गिरि-कंदरा में ले जाओ। वहाँ सावधान रहना। श्री लक्ष्मण हाथों में धनुष-बाण लेकर गिरि-गुहा में चले गए :—

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी ॥

अर० ६-१८

श्रीराम सीता की सुरक्षा का सदैव ही ध्यान रखते हैं। स्वर्णमृग के पीछे धनुष-बाण लेकर जाने के पूर्व श्रीराम ने लक्ष्मण को भली प्रकार समझा दिया था कि बन में अनेक राक्षस घूमते रहते हैं। अस्तु सीता की रक्षा सावधानीपूर्वक बुद्धि, विवेक तथा बल से समयानुसार करना :—

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥

अर० ४-२७

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥

अर० ५-२७

सीतापति श्रीराम लक्ष्मण को अपनी ओर आता देख सीता की सुरक्षा के संबंध में सशंक हो उठते हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि तुम मेरी बात की अवमानना कर सीता को अकेली छोड़ कर चले आये। राक्षसों के समूह बन में घूमते रहते हैं। मेरे मन में ऐसा विचार आ रहा है कि सीता आश्रम में नहीं है—

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली ॥

अर० १-३०

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं । मम मन सीता आश्रम नाहीं ।।
आर० २-३०

आश्रम में सीता को न पाकर सीतापति उनके वियोग-जन्य दुख से नितांत सामान्य व्यक्ति की ही भाँति दुखी होते हैं । श्रीराम विलाप करते हुए बन में स्थान-स्थान पर सीता को खोज रहे हैं । उनकी विकलता इतनी सघन हो चली है कि वे पशु-पक्षियों से ही नहीं लताओं से भी सीता के संबंध में पूँछते हैं । वे सीता के सौंदर्य का स्मरण कर के उनके एक-एक अंग की तुल्यता रखने वाले पशुओं, पक्षियों, लताओं, पुष्पों तथा चन्द्रमा आदि को प्रसन्न हुआ अनुभव कर रहे हैं जानकी के आश्रम से चली जाने के कारण । वे मानते हैं कि अभी तक ये सभी जानकी के प्रत्यंगों की शोभा से अपने को लज्जित अनुभव कर रहे थे पर अब प्रतिस्पर्धी के न रहने के कारण प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं । उनकी यह विकलता इस सीमा तक बढ़ गई है कि वे सीता को संबोधित करके कहते हैं कि भला यह स्पर्धा तुमसे कैसे सहन हो रही है तुम प्रकट क्यों नहीं होती ? सीतापति श्रीराम सीता जी की खोज, विलाप करते हुए इस प्रकार से कर रहे हैं कि मानो वे अत्यंत विरही तथा कामी हों :--

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं । प्रिया बेगि प्रकटसि कस नाहीं ।।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुँ महा ब्रिरही अति कामी ।।
अर० ८-३०

सीता को खोजते हुए सीतापति किष्किधा पहुँच गए हैं । बालिवध तथा सुग्रीव को सिंहासनारुढ़ कर वे प्रवर्षण गिरि पर रह कर वर्षाकाल व्यतीत कर रहे हैं । वहाँ भी सीता के वियोग-जन्य दुख से दुखी हैं । श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं कि देखो मोरगण बादलों को देख कर प्रसन्नता से नृत्य कर रहे हैं । बादल उमड़-घुमड़ कर घोर शब्दों में गरज रहे हैं पर प्रिया सीता के वियोग से मेरा मन भयभीत हो रहा है :—

घन घमंड गरजत नभ घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।।
किष्कि० १-१४

वर्षा तक तो श्रीराम उसकी निवृत्ति की प्रतीक्षा में थे, पर वर्षा ऋतु के व्यतीत हो जाने पर भी सीतान्वेषण का कोई भी प्रयास

न देख कर वे चिन्तामग्न हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि निर्मल ऋतु के आ जाने पर भी मुझे सीता का पता नहीं चल पाया है। वे अपने दृढ़ निश्चय तथा आत्मबल की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि यदि किसी प्रकार मुझे एक बार सीता का पता चल जाय तो मैं उसे काल को भी जीत कर उसके पंजे से क्षण भर में छुड़ा लाऊँगा। सीतापति के मन में सीता के प्रति कितना स्नेह है यह उनकी इस बात से ही प्रकट होता है कि वे कहते हैं कि सीता चाहे जहाँ भी हो पर यदि वे जीवित होंगी तो मै उन्हें यत्न करके ले ही आऊँगा। सुग्रीव ने भी राज्य, कोष नगर तथा पत्नी को पाकर मुझे विस्मृत कर दिया है। जिस बाण से मैंने बालि को मारा है उसी से मूर्ख सुग्रीव को भी कल मार दूंगा :—

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई ॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥
किष्कि० १-१८

कतउँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई ॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी ॥
किष्कि० २-१८

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ॥
किष्कि० ३-१८

हनुमान जी के परामर्श से सुग्रीव ने बानरों को बुलावा भेज दिया था। लक्ष्मण के साथ सुग्रीव श्रीराम के पास आए और उन्होंने अति-विनम्रतापूर्वक बातें कीं। इस पर श्री सीतापति ने मुस्करा कर कहा कि तुम मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हो। अब मन लगा कर ऐसा यत्न करो जिससे कि सीता का पता चल सके :—

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥
किष्कि० ४-२१

सीतान्वेषण में तत्पर हनुमान लंका में सीता को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि हे माता। अपना जी तनिक भी छोटा न करें। आप के हृदय में राम के प्रति जितना प्रेम है उसका दुगुना प्रेम राम के हृदय में आपके प्रति है :—

जनि जननी मानहुँ जियँ ऊना। तुम ते प्रेम राम कें दूना॥
सु० ५-१४

आगे वे श्रीराम का सन्देश सुनाते हैं, जिसमें श्रीराम ने कहा है कि हे सीता! तुम्हारे वियोग के परिणामस्वरूप जितनी भी हितकर चीजें थीं अब वे सभी प्रतिकूल परिणाम देने वाली हो गई हैं। वृक्षों के कोमल पत्ते अग्नि के समान दाहक, रात्रियाँ कालरात्रिवत् तथा शीतलता दायक चंद्रमा सूर्य की भाँति तपाने वाला हो गया है। कमलों का बन अब सुखद न रह कर भालों के समान छेदने वाला तथा बादल ज्वाला को शान्त करने वाले जल की वृष्टि करने वाला न होकर तप्त तेल बरसा कर जलाने वाला हो गया है। शीतल, मंद सुगंध वायु अब सर्पश्वास की भाँति विषयुक्त और उष्ण हो गया है। आगे वे कहते हैं कि लोगों का कथन है कि दुख कहने से भी घटता है पर मैं किससे कहूँ यह बात समझ में नहीं आती क्योंकि मेरे और तुम्हारे प्रेम के रहस्य को एकमात्र मेरा मन ही जानता है। अन्य किसी को भी इसका पता नहीं है। वह मन जो कि प्रेम रहस्य को जानता है वह सदैव तेरे ही पास रहता है इसी से तू मेरे प्रेम-रस-सार को समझ ले। श्रीराम के इस संदेश को सुनकर सीता इसमें इस प्रकार मग्न हो गईं कि उन्हें अपने शरीर की सुधि न रही :—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥
सु० १-१५

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
सु० २-१५

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सु० ३-१५

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥
सु० ४-१५

सीता का वृत्तांत लंका से लौट कर जब हनुमान जी सीतापति श्रीराम को सुनाते हैं तो उनके दुख का ज्ञानकर श्रीराम के भी नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं :—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना । भरि आए जल राजिव नयना ।।
सु० १-३२

रावण-वध एवं विभीषण के राजतिलक के बाद सीता जी को श्रीराम के पास शिविका में लाया जा रहा है। वानर एवं भालु उनके दर्शनार्थ दौड़ रहे हैं तथा शिविका-रक्षक उन्हें हटा रहे हैं। श्रीराम ने सीता को पैदल ही लाने का आदेश दिया जिससे कि उनके सहायक सीता का दर्शन पा सकें। वे बानरों एवं भालुओं से भी कहते हैं कि वे सीता को माता के ही भाव से देखें।

श्रीराम ने सीता को अग्नि में प्रविष्ट करवा दिया था। अब वे उन्हें प्रकट करना चाहते हैं। अस्तु उन्होंने सीता से कुछ कटुवचन कहे। सीता ने लक्ष्मण से अग्नि की व्यवस्था करवा कर उसमें प्रवेश कर लिया जिससे उनकी छाया तथा लौकिक कलंक सब जल गए एवं वास्तविक सीता प्रकट हो गईं :—

सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्हि चह अन्तर साखी ।।
लंका ७-१०८

अब सीता के सहित सीतापति अपरिमित शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। उन्हें देख बानर तथा रीछ अति प्रसन्न होकर उनकी जय बोल रहे है लंका से अयोध्या लौटते समय श्रीराम सीता को रणांगण के वे स्थल दिखा रहे हैं जहाँ राक्षसी सेना के प्रमुख-प्रमुख वीर मारे गए थे। फिर उन्होंने सेतुबंध तथा शंभु-स्थापना के स्थान को दिखाया जहाँ सीतापति ने सीता सहित भगवान शंकर को प्रणाम किया। वियोग-काल में श्रीराम ने जहाँ-जहाँ विश्राम किए थे वे सारे स्थल भी सीता को दिखाए। श्रीराम ने सीता सहित अयोध्या को प्रणाम किया।

गंगा पार कर वायुयान जब दूसरे किनारे पर आया तो निषाद राज ने सीता सहित सीतापति को देखा। प्रेमानन्द में वह पृथ्वी पर गिर गए तथा उन्हें अपने शरीर की भी सुधि न रह गई। श्रीराम ने उनके उत्कृष्ट प्रेम को देखकर उन्हें उठा कर हृदय से लगा लिया—

प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ।।
लंका ६-१२१ (क)

अयोध्या के राजसिंहासन पर सीतापति सीता सहित आसीन हैं । उनको देख कर मुनियों का समुदाय अति प्रसन्न हुआ और ब्राह्मणों ने वेद मंत्रों का उच्चारण किया तथा आकाश में ऋषियों-मुनियों ने उनका जय जयकार किया ।

सुखागार करुणाधाम भगवान प्रेम-भाव के ही वश में रहते है अस्तु ममता, अहंकार और मान को त्याग कर सीतापति श्रीराम का ही भजन करना उचित है :—

भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन ।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ।।
उत्तर ९२ (ख)



भक्त हितकारी राम

गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस भक्ति-भाव का अन्यतम ग्रंथ है। इसमें सभी आध्यात्मिक सिद्धान्तों एवं उनके मार्गों की समुचित विवेचना करते हुए भी भक्ति को ही सर्वाधिक श्रेयस्कर माना गया है। श्रीराम का अवतार भक्तों के दुख निवारणार्थ ही होता है। वे स्वयं कष्ट सहन करके भी भक्तों का हित-साधन करते हैं :—

राम भगत हित नर तनुधारी। सहि संकट किए साधु सुखारी।।
बाल० १-२४

श्रीराम शुद्ध प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता के लिए किसी बाह्याडंबर की अपेक्षा नहीं है। श्रीराम अपने भक्त के हृदय की बात जानते हैं :—

रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मन्द मलिनमति मोतें।।
बाल० ६-२८ (क)

× × ×

कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की।।
बाल० २-२९ (क)

श्रीराम का ध्यान भक्तों की कमियों पर नहीं जाता वे उनके हृदय के सुन्दर भक्ति संबंधी भावों को सैकड़ों बार स्मरण करते हैं। जिस पाप के परिणाम स्वरूप उन्होंने बालि को छिप कर ब्याध की भाँति मारा था वही पाप सुग्रीव तथा विभीषण ने भी किया पर श्रीराम ने उस पर ध्यान नहीं दिया। इसके सर्वथा प्रतिकूल भरत जी से मिलने के समय उनका सम्मान किया तथा राजसभा में भी उनके गुणों की प्रशंसा की :—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करति सुरति सयबार हिए की।।
जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
बाल० ३-२९ [क]

सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने । राजसभाँ रघुबीर बखाने ॥
बाल० ४-२६ (क)

श्रीराम ऐसे भक्त हितकारी हैं कि वे भक्त के स्तर का भी विचार नहीं करते। नहीं तो शाखाओं पर भ्रमण करने वाले बानर और कहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम। भाव यह है कि दोनों के स्तरों में बहुत बड़ा अन्तर है। बानरों को इतना भी ज्ञान नहीं है कि वह अपने प्रभु के साथ किस प्रकार मर्यादापूर्ण व्यवहार करें नहीं तो जिस वृक्ष के नीचे श्रीराम विराजमान हैं उसी की डालों पर वे न घूमते। फिर भी श्रीराम ने उन्हें उनके भक्ति-भाव को देख अपनाकर अपने समान बना लिया है। यह है उनकी भक्तहितकारिता। श्रीराम जी जैसा शीलवान स्वामी अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं :—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान ॥ बाल० २६ (क)

श्रीराम साधारण भक्तहितकारी नहीं हैं। वे ऐसे भक्तहितकारी हैं कि यदि भक्त अपनी अज्ञानतावश स्वेच्छा से भी अपना अहित करना चाहे तो वे उसका भी अहित नहीं होने देते। नारद को कामजय का अभिमान हो गया। वे भगवान शंकर से जब अपनी सारी कथा कह चुके तो उन्होंने शिक्षा दी कि जिस प्रकार यह कथा आपने मुझे सुनाई है भगवान श्री हरि को मत सुनाना। यदि इसका प्रसंग उपस्थित भी हो जाय तो इसे छिपा लेना। नारद जी को यह उपदेश अच्छा नहीं लगा और उन्होंने भगवान को भी सारी बात बता ही दी। भगवान ने कहा कि आपके स्मरण मात्र से ही दूसरों के मोह, काम, मद तथा अभिमान आदि दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं। नारद जी ने अभिमान पूर्वक कहा कि सब आप की ही कृपा है। भगवान ने इस बात को अच्छी प्रकार समझ लिया कि नारद जी में बहुत बड़ा अहंकार उत्पन्न हो गया है। भक्त-हितकारी भगवान भक्त की रक्षा हेतु यह निश्चय करते हैं कि मैं इस गर्व का नाश कर दूंगा। इसमें मुनि का कल्याण होगा तथा मेरी लीला होगी।—

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥
बाल० २-१२६

भगवान ने भक्त की रक्षा के उद्देश्य से नारद को अपना सुन्दर रूप तो प्रदान कर दिया पर उनका मुँह बानर का बना दिया जिससे कि विश्वमोहिनी उनका वरण न करे। नारद को जब यह तथ्य ज्ञात होता है तो वे भगवान पर कुपित होकर उन्हें श्राप दे देते हैं। भगवान जब अपनी माया दूर कर देते हैं तब नारद को अपनी भूल का पता चलता है और वे चाहते हैं कि उनका शाप मिथ्या हो जाय पर भगवान ने कहा कि यह सब उनकी इच्छानुसार ही हुआ है। नारद जी को मन की शान्ति हेतु शंकर के शतनाम के जप की सम्मति देते हैं तथा अनेक प्रकार से समझा कर अंतर्धान हो जाते हैं। नारद जी भी उनका गुण-गान करते हुए ब्रह्म लोक को चले जाते हैं :—

बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥
बाल० १३८

सीताहरण के बाद भगवान श्रीराम को विरही रूप में देख कर नारद मुनि के मन में चिन्ता होती है कि उनके शाप को अंगीकार कर श्रीराम अनेक कष्ट उठा रहे हैं। इस विशिष्ट अवसर पर वे श्रीराम का दर्शन करने की अभिलाषा से उनके पास पहुँचते हैं। वे श्रीराम की अनेक प्रकार से स्तुति कर उनको प्रसन्न जानकर एक वर की याचना करते हैं। श्रीराम उत्तर में कहते हैं कि आप तो मेरा स्वभाव जानते ही हैं। मैं अपने भक्तों से कुछ भी नहीं छिपाता। भला ऐसी कौन-सी प्रिय वस्तु है जिसे आप नहीं माँग सकते ? इस विश्वास को कभी भूलकर भी न छोड़ें कि मेरे लिए भक्त को कुछ भी अदेय नहीं है :—

जानहु मुनि तुम मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी॥
अर० २-४२ (क)
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
अर० ३-४२ (क)

नारद ने जो भी याचना की श्रीराम ने उसे प्रदान किया। इस प्रकार नारद ने श्रीराम को अति प्रसन्न जानकर मधुर वाणी में प्रश्न किया कि जब आप की माया से मोहित होकर मैं विवाह करना

चाहता था तो आपने विवाह क्यों नहीं करने दिया ? श्रीराम ने कहा कि जो मुझे, सभी भरोसों को छोड़ कर भजते हैं, उनकी रक्षा मैं सदैव उसी प्रकार करता हूँ जैसे कि माता बालक की रक्षा करती है। ज्ञानी भक्त, प्रौढ़ पुत्र तथा पूर्ण रूपेण समर्पित भक्ति-भाव के भक्त शिशु की तरह हैं। भाव यह है कि श्रीराम अपने भक्तों की पूर्ण रूपेण रक्षा उसी प्रकार से करते हैं जैसे कि माता अपने अबोध शिशु की रक्षा करती है। अन्त में श्रीराम ने नारद को बताया कि युवती स्त्री अवगुणों की मूल दुख देने वाली तथा सभी दुखों की खान है। यही समझ कर मैंने आप को विवाह नहीं करने दिया :—

अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निबारन मुनि मैं यह जिय जानि ॥ अर० ४४

इससे स्पष्ट है कि श्रीराम कितने भक्तहितकारी हैं।

श्रीराम, चतुर केवट द्वारा पदप्रक्षालन के बाद नाव से गंगा पार कर लेते हैं। उतराई देने का बहुत प्रयास करते हैं पर केवट कुछ भी स्वीकार नहीं करता। वह कहता है कि आज मुझे सब कुछ मिल गया। मेरे दोष दुख तथा दरिद्रता की अग्नि बुझ गई है। मैंने बहुत दिनों तक श्रम किया पर पूरा-पूरा पारिश्रमिक आज ही मिला है। आपकी कृपा से मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। लौटती बार आप जो कुछ भी देगें उसे आप का प्रसाद मान कर मैं श्रद्धा सहित स्वीकार कर लूंगा। श्रीराम लक्ष्मण तथा सीता के बहुत प्रयत्न करने पर जब केवट ने कुछ भी ग्रहण नहीं किया तब करुणाकर श्रीराम ने विमल भक्ति का वरदान देकर केवट को विदा किया :—

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ॥ अयो० १०२

भरत के प्रभाव तथा राम के संकोची स्वभाव को जान कर देवतागण घबड़ा उठे हैं कि कहीं वे राम को अयोध्या वापस ले जाने में सफल न हो जाँय। यदि ऐसा हुआ तो फिर राक्षसों का संहार तथा देवताओं का दुख-निवारण न हो सकेगा। इसी पृष्ट भूमि में वे सुरगुरु से कुछ छलप्रपच की रचना कर इस संभावना को समाप्त करने का आग्रह करते हैं। सुरगुरु स्पष्ट करते हैं कि श्रीराम अपने प्रति

किए गए अपराध से किसी से रुष्ट नहीं होते पर यदि कोई उनके भक्त के प्रति अपराध करता है तो वह श्रीराम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। श्रीराम का यह इतिहास लोक तथा वेद दोनों में प्रसिद्ध है। इस तथ्य को दुर्वासा जी भी जानते हैं :—

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।।
अयो० २-२१८

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।
लोकहुँ वेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा।।
अयो० ३-२१८

सुरगुरु, देवताओं को आगे समझाते हुए कहते हैं कि श्रीराम को भक्त परम प्रिय है। वे सेवक की सेवा से सुखी होते हैं तथा उसके साथ शत्रुता रखने वाले से शत्रुता मानते हैं। यद्यपि वे राग एवं दोष, पाप तथा पुण्य से परे हैं और जो जैसा कार्य करता है वैसा ही फल पाता है फिर भी श्रीराम भक्तों के साथ सम तथा अभक्तों के साथ विषम व्यवहार करते हैं। गुण तथा मान रहित एक रस होते हुए भी श्रीराम ने भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर ही सगुण रूप धारण किया है। वेद, पुराण, साधु और देवता इस बात के साक्षी हैं कि श्रीराम सदा अपने भक्तों की रुचि रखते हैं :—

सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहि सेवक परम पिआरा।।
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई।।
अयो० १-२१९

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।
अयो० २-२१९

तदपि करहिं सम विषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।।
अगुन अलेप अमान एक रस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस।।
अयो० ३-२१९

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी।।
अयो० ४-२१९

चित्रकूट में भरत जी श्रीराम से कहते हैं कि हे स्वामी! आप शरणागत भक्त का हित करने वाले समर्थ स्वामी हैं। आप गुणों का

आदर तथा अवगुणों एवं पापों का नाश करने वाले हैं। आप के समान अन्य कोई नहीं है, एकमात्र आप ही हैं। स्वामी के साथ द्रोह करने में मैं भी अन्यतम ही हूँ। ऐसा द्रोही अन्य कोई नहीं है। आपकी कार्य-पद्धति और स्वभाव की श्रेष्ठता संसार-प्रसिद्ध है और उसका गुणानुवाद वेद शास्त्रों ने भी किया है। वह यह है कि यदि आपके सामने क्रूर, कुटिल, दुष्ट, दुर्बुद्धि, कलंकी, नीच, निश्शील, नास्तिक, निश्शंक भी आ जायँ तो उन्हें भी सम्मुख आया जानकर आप एक बार प्रणाम करने पर ही अपना लेते हैं। उनके दोषों का विचार न कर उनके गुणों को सुनकर साधु समाज में आप ने उनका वर्णन किया है। आप जैसा, सेवक पर कृपा करने वाला कोई है ही नहीं। ऐसा कौन है जो कि सेवक का सारा साज-सामान स्वयं ही सजा दे ? अपने उपकार को कभी भी ध्यान में न लाकर उल्टे इस विचार में रहते हैं कि कहीं इससे सेवक को संकोच न हो। भरत जी आगे कहते हैं कि मैं प्रतिज्ञापूर्वक भुजा उठाकर इस बात को कहता हूँ कि ऐसा भक्तहितकारी स्वामी आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है :—

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
अयो० १-२६६

तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
अयो० २-२६६

को साहब सेवकहि नेबाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समझिउ सपनें। सेवक सकुच सोच उर अपनें॥
अयो० ३-२६६

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
अयो० ४-२६६

अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण को श्रीराम के बन आने की बात का ज्ञान होता है। वे अपने मन में चिन्तित हैं कि क्या श्रीराम अनुज लक्ष्मण सहित उन्हें दर्शन देंगे? उनके हृदय में इस बात का दृढ़ विश्वास नहीं है क्योंकि उनकी समझ से उनके मन में न तो भक्ति है, न ज्ञान और न वैराग्य ही। सत्संग, योग, जप, यज्ञ तथा श्रीराम

के चरणों में दृढ़ प्रीति भी नहीं है। उन्हें एकमात्र इसी बात का भरोसा है कि श्रीराम करुणानिधान हैं और उन्हें अनन्य भक्त प्रिय होता है। इसी विचार में वे इतने लीन हो गए कि उन्हें अपना ध्यान ही न रहा गया। यह भी ध्यान नहीं रहा कि वे कौन हैं तथा कहाँ जा रहे हैं। कभी वे पीछे लौट पड़ते हैं और कभी नृत्य करने लगते हैं। भक्त-हितकारी श्रीराम मुनि के इस प्रगाढ़ भक्ति-भाव को पेड़ की ओट से देख रहे हैं। भक्त के अत्यंत प्रेम को देख कर उसके सांसारिक भय अर्थात् आवागमन के भय को हरण करने वाले श्रीराम प्रकट हो गए। श्रीराम ने सुतीक्ष्ण मुनि को जगाने का अनेक प्रकार से प्रयास किया परन्तु ध्यान-जनित सुख में लीन होने के कारण वे नहीं जगे। तब श्रीराम ने अपने राजकुमार के रूप को छिपाकर मुनि के हृदय में अपने (भगवान के) चतुर्भुज रूप को प्रकट किया। अपने इष्ट के स्वरूप के अंतर्धान हो जाने के कारण वे व्याकुल हो जाते हैं। मुनि सुतीक्ष्ण ने श्रीराम को सीता तथा लक्ष्मण सहित अपने सम्मुख देखा और उनके चरणों में दण्ड की तरह गिर गए। श्रीराम ने अपनी विशाल भुजाओं में उनको उठा कर अति प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया :—

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
अर० ९-१०

× × ×

परेउ लकुट इव चरनन लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़ भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥
अर० ११-१०

चतुर भक्त सुतीक्ष्ण ने श्रीराम की विधिवत् स्तुति की और कहा कि हे भक्तहितकारी स्वामी श्रीराम, जो लोग आप को सगुण-निर्गुण तथा अन्तर्यामी के रूप में जानते हों, वे जानते रहें मेरे हृदय को तो कोसलपति कमल नयन श्रीराम ही अपना निवास स्थान बनावें। मेरे मन से यह अभिमान कभी भी निकल न पावे कि मैं सेवक हूँ तथा श्रीराम मेरे स्वामी हैं। इससे श्रीराम बहुत ही प्रसन्न हुए तथा उन्होंने सुतीक्ष्ण को पुनः हृदय से लगा लिया और कहा कि मैं आप

पर अत्यधिक प्रसन्न हूँ जो वर चाहें माँग ल । सुतीक्ष्ण ने वर माँगने में असमर्थता व्यक्त की और कहा कि आप जो उचित समझें दे दें। श्रीराम ने प्रगाढ़ भक्ति, बैराग्य, विज्ञान एवं समस्त गुणों का निधान होने का वर दिया। तब सुतीक्ष्ण ने कहा कि आपके द्वारा दिए गए वर मुझे प्राप्त हो गए अब जो मुझे अच्छा लगे वह दीजिए। यह कह कर उन्होंने याचना की कि अनुज तथा सीता सहित आप धनुष-बाण धारण कर मेरे हृदय में निरंतर निवास करें :—

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना ॥
अर० १०-११

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ॥
अर० ११-११

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही ॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा ॥
अर० १२-११

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥
अर० १३-११

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा ॥
अर० १४-११

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा निहकाम ॥
अर० ११

सीतान्वेषण में तत्पर श्रीराम तथा लक्ष्मण चिरकाल से प्रतीक्षारता शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं। शबरी श्रीराम को चुने हुए सरस फल खिलाती और कहती है कि मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ क्योंकि मैं तो अधमाधम नारियों में भी अति अधम और पापबुद्धि हूँ। भक्त-हितकारी श्रीराम कहते हैं कि मैं तो एकमात्र भक्ति का ही नाता मानता हूँ। मैं अन्य किसी भी बात पर विचार करता ही नहीं। भाव यह है कि भक्ति में पुरुष-स्त्री तथा अन्य किसी भी प्रकार की द्विविधा

का विचार भगवान को अमान्य है वे तो एक मात्र भक्ति की ही बात पर विचार करते हैं। श्रीराम आगे कहते हैं यदि कोई प्राणी अच्छी जाति, पाँति, कुल, धर्म, यश, धन, बल, परिवार गुण और चतुरता के होते हुए भी भक्ति-हीन है तो वह मेरे लिए वैसा ही निरर्थक है जैसे कि जलविहीन बादल।

शबरी को नवधा भक्ति का महत्वपूर्ण उपदेश दे श्रीराम ने कहा कि मेरे दर्शन का फल अनुपम है। इससे जीव अपने स्वाभाविक स्वरूप की प्राप्ति कर लेता है। भाव यह है कि संसार में आने के परिणाम-स्वरूप उसे जो माया घेर लेती है उससे मुक्त हो आत्म-साक्षात्कार में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार भक्तहितकारी श्रीराम ने एकमात्र भक्ति के बल पर हीन जाति की पापिनी शबरी को मुक्ति प्रदान कर दी :—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
अर० २-३५

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
अर० ३-३५

× × ×

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
अर० ५-३६

सीता का पता लगाने वाले बानरों का समूह क्षुधा एवं तृषा से व्याकुल एक विवर से ऐसे स्थान में पहुँच गया जहाँ एक तपस्विनी बैठी हुई थी। उसकी आज्ञा लेकर सब ने पानी पिया तथा फल खाया। उसने अपना सारा बृतांत कह कर श्रीराम के पास जाने के अपने निश्चय से अवगत कराया। उसकी बताई हुई विधि से बानर दल अप्रयास ही समुद्र तट पर पहुँच गया। वह स्वयं श्रीराम के सम्मुख उपस्थित हुई। उसने श्रीराम के चरण-कमलों में शिर झुकाया और अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। भक्तहितकारी श्रीराम ने उसे अपनी अनपायिनी भक्ति प्रदान कर दी। वह श्रीराम के ब्रह्मा एवं शंकर से वन्दित चरणों को अपने हृदय में धारण कर उनकी आज्ञा-नुसार बदारिकाश्रम को चली गई :—

सो मुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा ।।
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ।।
किष्किधा ४-२५

बदरी बन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि रामचरन जुग जे बन्दत अज ईस ।। किष्किधा २५

श्रीराम कितने भक्त-हितकारी हैं यह बात इस प्रसंग से ही स्पष्ट है कि वे एकमात्र भक्ति-भाव के भूखे हैं तथा अनायास ही भक्तों का हित-साधन करते रहते हैं।

सीता को खोजते हुए श्रीराम की भेंट जटायू से होती है। श्रीराम उनसे शरीर रखने को कहते हैं पर वे अवसर कीअनुकूलता के कारण शरीर-त्याग ही उचित समझते हैं। श्रीराम की अखण्ड भक्ति का वर-दान प्राप्त कर वे श्रीहरि के लोक को चले गए। भक्त-हितकारी श्रीराम ने गृधराज की अन्त्येष्टि क्रिया अपने हाथों से की। कोमल चित्त श्रीराम दीनों पर अकारण ही कृपा करने वाले हैं। मांसाहारी निकृष्ट गृध्र को दयालु राम ने वह गति दी जिसकी याचना योगी लोग किया करते हैं :—

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ।। अर० ३२

कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ।।
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ।।
अर० १-३३

किष्किधा की ओर आते हुए श्रीराम तथा लक्ष्मण से हनुमान जी सुग्रीव के संकेत पर उनका परिचय प्राप्त करते हैं। इस क्रम में उन्हें अपने प्रभु श्रीराम का ज्ञान हो जाता है तथा वे उनके चरणों में पड़ जाते हैं। हनुमान जी अपने प्रभु के रुचिर वेष को देख कर पुलकित हो गए। हनुमान जी अपने स्वामी को पहचान कर प्रसन्न हुए तथा उनकी स्तुति की और अपनी परिस्थितियों का वर्णन किया। वह सब कह कर व्याकुल होकर श्रीराम के चरणों में पड़ गए और अपने वास्तविक रूप को प्रकट किया। भक्त-हितकारी श्रीराम ने हनुमान को उठा कर हृदय से लगा लिया तथा अपने प्रेमाश्रुओं से सींच कर उन्हें शीतल कर दिया। श्रीराम ने कहा कि तुम अपने मन को छोटा

न करो तुम मुझे लक्ष्मण से भी दुगुने प्रिय हो। सब लोग मुझे समदर्शी कहते हैं पर मुझे अनन्य गति वाला सेवक प्रिय है। अनन्य को स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं कि जिसका मेरे अतिरिक्त अन्य किसी पर भी भरोसा न हो वही अनन्य है :—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहि बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥
किष्कि० ३-२

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथइ चीन्ही ॥
किष्कि० ४-२

× × ×

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥
किष्कि० ३-३

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ॥
किष्कि० ४-३

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त ॥ किष्किा० ३

श्रीराम कितने भक्त हितकारी हैं यह बात इस प्रसंग से स्पष्ट है कि हनुमान जी तो उनसे दुराव करते हैं—विप्र रूप धारण कर उनसे परिचय पूछते हैं पर श्रीराम उनकी इन सारी बातों को भूल कर ज्यों ही वे समर्पित होते हैं पूर्णतया अपना ही नहीं लेते अपितु कहते हैं कि तुम मुझे लक्ष्मण से भी दुगुने प्रिय हो।

श्रीराम उसी पर कृपा करते हैं जिसका अन्य कोई सहारा नहीं होता हनुमान जी सीता को खोजते हुए लंका के एक घर से दूसरे घर में सीता को ढूंढ़ रहे हैं। इसी बीच उनकी भेंट विभीषण से होती है। हनुमान को रामदूत जानकर विभीषण प्रश्न करते हैं कि तात ! क्या कभी श्रीराम मेरे ऊपर भी कृपा करेंगे, मुझे अनाथ जान कर ? वे आगे कहते हैं कि मेरा शरीर तमोगुणी है। मेरे पास ईश्वर-प्राप्ति का कोई भी साधन नहीं है और न भगवान के चरणों में मेरा प्रेम ही है। अब मुझे विश्वास हो गया है क्योंकि भगवान की कृपा के बिना संतों का दर्शन नहीं होता। भगवान की कृपा से ही आपने बरबस मुझे

दर्शन दिया है। उत्तर में हनुमान जी जो कुछ भी कहते हैं उससे पता चलता है कि श्रीराम की कार्य-पद्धति ही यही है कि वे सेवक पर सदैव ही प्रेम करते हैं। अपना स्वयं का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि मुझ जैसे अधम पर भी श्रीराम ने कृपा की यह कहते हुए उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से परिपूर्ण हो गए—

अस मै अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर ॥
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥ सुं० ७

श्रीराम विभीषण की भक्ति से प्रभावित होकर सुग्रीव की नीति को न मानकर उन्हें शरण ही नहीं देते अपितु लंका के उस राजपद का अधिकारी भी बना देते हैं जो कि रावण को शीश चढ़ाने से मिला था। श्रीराम विभीषण को अपना सच्चा भक्त मानकर कहते हैं कि तुम्हारी तरह के संत ही मुझे प्रिय होते हैं। मैं यह शरीर ही तुम जैसे लोगों के लिए धारण करता हूँ। इसका अन्य कोई भी हेतु नहीं है :—

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे ॥
सुं० ४-४८

भक्ति के वशीभूत होकर ही श्रीराम अयोध्या में आए हुए बानरों को अपने तथा अपने भाइयों के द्वारा वस्त्राभूषण पहना तथा पहनवा-कर ससम्मान विदा करते हैं।

श्रीराम के कार्य व्यापारों से यह बात स्पष्ट है कि वे अद्वितीय भक्त-हितकारी हैं।



जगतोद्धारक राम

भगवान की इस सृष्टि में अनेक प्रकार के प्राणी विद्यमान हैं। सृष्टि की रचनानुसार इसके प्राणियो में विभिन्न प्रवृत्ति तथा विचारों के लोग पाए जाते हैं। सद्वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वालों को देवता तथा असद् वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वालों को दानव के नामों से जाना जाता है। कभी देवताओं का प्राबल्य होता है तो कभी दानवों का। इनका पारस्परिक संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि सत एवं असत का यह संघर्ष विश्व में अबाध गति से अनादि काल से चलता चला आ रहा है। यदि मानव के पक्ष में इसे देखें तो प्रतीत होगा कि वह ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहाँ से वह दोनों ओर जा सकता है। वास्तविकता यह है कि सामान्य मानव में दोनों प्रकार की वृत्तियों के बीज विद्यमान रहते हैं। कभी एक प्रकार की वृत्ति प्रबल हो उठती है तो कभी दूसरे प्रकार की। सद्वृत्तियों को बढ़ाकर आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति करना ही मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के जप, योग, ध्यान तथा साधना संबंधी अन्य अनेक साधनों का अवलंब लिया जाता है।

जब दानवों का प्रभाव अधिक बढ़ जाता है, देवता, गौ, ब्राह्मण तथा सज्जन गण दुखी होते हैं तथा सामान्य व्यवस्था के अन्तर्गत उनकी पीड़ा का अन्त नहीं होता तो भगवान को किसी न किसी रूप में अवतरित होकर इस पीड़ा का अन्त करना ही होता है। श्रीराम का अवतार भी इसी संदर्भ एवं परंपरा की एक कड़ी है।

राक्षसों के अत्याचारों तथा कुकृत्यों से पीड़ित पृथ्वी, ब्रह्मा से अपने कष्ट का वर्णन करती है और उसमे मुक्ति की याचना करती है। ब्रह्मा जी अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए भगवान से ही एतदर्थ प्रार्थना करने की बात कहते हैं। समस्त देवता गण मिल कर प्रार्थना करते हैं। परिणामस्वरूप आकाशवाणी हुई कि हे मुनि, सिद्ध तथा देवगण ! आप लोग भयभीत न हों। आप लोगों के हित-साधन हेतु ही मैं मनुष्य रूप में उदार सूर्य वंश में अवतरित हूँगा :—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेषा ।।
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ।।
बाल० १-१८७

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान राम का अवतार जगतोद्धार के लिए ही होता है :—
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।
बाल ४-१२१

श्रीराम भक्तों को उनकी भावना के अनुसार मुक्ति-पथ पर अग्रसर होने में सहायता देते हैं। जो उनके सच्चे भक्त हैं तथा पूर्णतया उन्हीं पर निर्भर करते हैं उनको माया, मोह तथा अहंकार के वशीभूत हो जाने पर भी विपथगामी नहीं होने देते। नारद जी के मन में कामजय के कारण अहंकार की जो भावना उत्पन्न होती है उसे भगवान निर्मूल करके ही मानते हैं। सीताहरण के बाद मिलने पर नारद की जिज्ञासा को शान्त करते हुए श्रीराम ने कहा था :—

सुनि मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ।।
अर० २-४३
करउँ सदा तिन्ह के रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ।।
उर० ३-४३

दूसरा प्रसंग परशुराम का है। धनुर्भंग होने पर परशुराम अतिशय क्रुद्ध होकर जनक की सभा में प्रवेश करते हैं। उनका क्रोध जगविख्यात था। उन्हें देखते ही सभी राजाओं के होश उड़ जाते हैं। महाराज जनक चिन्तित हो उठते हैं। श्रीराम पहले तो बहुत ही विनम्रता से बात करते हैं पर परशुराम जी के अहंकार को निरन्तर बढ़ते हुए ही देखकर श्रीराम ने कहा कि यदि हम ब्राह्मण कह करके निरादर कर रहे हैं तो आप इस सत्य को सुन लें कि विश्व में ऐसा कौन है जिससे हम भयभीत होकर सिर झुकावें। उन्होंने अपनी बात बताते हुए और आगे कहा कि मैं अपना स्वभाव बता रहा हूँ कुल की प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ कि रघुवंशी युद्धक्षेत्र में काल से भी नहीं डरते। विप्र वंश की ऐसी प्रभुता है कि जो आपसे डरता है वह सब से निडर हो जाता है। श्रीराम की मृदु किन्तु रहस्यमयी बातों को सुनकर परशुराम जी का मोह-भंग हुआ और उन्होंने अपना धनुष श्रीराम को चढ़ाने को

देकर अपने भ्रम का पूर्णरूपेण निवारण कर लिया। वे श्रीराम की स्तुति कर तप करने चले गए। इस प्रकार श्रीराम ने अहंकार से उन्हें निवृत्त किया :—

कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहिं तप हेतू॥
बाल० ४-२८५

रामकाज में प्राण त्यागने वाले पक्षिराज जटायु को श्रीराम मुक्ति प्रदान करते हैं। यह उनकी भक्तवत्सलता ही है कि आमिषभोजी जटायु को वह भक्ति प्रदान करते हैं जो कि बड़े-बड़े मुनियों को भी कठिनाई से मिलती है :—

तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥
अर० ५-३१

अहल्योद्धार, श्रीराम, मुनि विश्वामित्र के संकेत पर करते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के पश्चात् श्रीराम एवं लक्ष्मण उनके साथ जनकपुर जा रहे हैं। मार्ग में एक आश्रम दिखाई पड़ता है जिसमें अहल्या अपने पति मुनि गौतम के शाप वश प्रस्तर मूर्ति बनी पड़ी है। श्रीराम की जिज्ञासा पर मुनि विश्वामित्र उन्हें सारे वृतान्त से अवगत कराते हुए अपनी चरण धूलि अहल्या को देने का अनुरोध करते हैं। श्रीराम का चरण-स्पर्श पाते ही अहल्या अपने पूर्व रूप में आ जाती है और उनकी अनेक विधि स्तुति कर पतिलोक को चली जाती है :—

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार-बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनन्द भरी॥
बाल० ४-२११

सीता की खोज में घूमते हुए श्रीराम तथा लक्ष्मण शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं। शबरी श्रीराम के दर्शनों की प्रतीक्षा में चिर काल से प्रतीक्षारता थी। प्रतिदिन वह इसी अभिलाषा को लेकर नींद त्याग करती थी कि आज उसे प्रभुराम के अवश्य ही दर्शन होंगे। अन्ततः श्रीराम दर्शन देते हैं। वे शबरी की जाति, कुल आदि का विचार न कर एकमात्र उसके भक्तिभाव को ही मान्यता दे कर उसके द्वारा दिए गए सुरस फलों को सराह-सराह कर खाते हैं। श्रीराम उसे

नवधा भक्ति का उपदेश करते हैं। वह उनके चरणों में अनेक प्रणति दे अपना सारा वृत्तांत कहती है। अन्त में उनके स्वरूप को हृदय में धारण कर योगाग्नि में शरीर को भस्म कर त्याग देती है और श्रीराम का वह पद प्राप्त कर लेती है जहाँ से लौटना नहीं होता।

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोक प्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥
अर० छन्द-३६

सीता जी की खोज में संलग्न दक्षिण दिशा में जाने वाला बानर-दल भूख-प्यास से व्याकुल हो घोर बन में भटक गया है। हनुमान जी के पीछे-पीछे समूचा बानर दल विवर से होकर एक उपवन में पहुँचता है। इस उपवन में विद्यमान तपस्विनी के प्रति सम्मान प्रकट कर उसकी अनुज्ञा से सारा बानर दल तृष्णा एवं क्षुधा दोनों को शान्त करता है। तपस्विनी अपना सारा वृतान्त बता श्रीराम के पास जाने का निश्चय करती है। वह श्रीराम के पास पहुँच कर उनके चरण कमलों में सिर झुका उनकी स्तुति करती है। प्रभु राम उसे अपनी अनपायनी भक्ति प्रदान करते हैं :—

नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥
किष्किधा ४-२५

अत्रि के आश्रम से आगे श्रीराम चलते हैं। मार्ग में उन्हें मुनि शरभंग जी मिलते हैं। वे अहर्निशि उनके आगमन की बाट जोह रहे थे। श्रीराम को देख कर वे संतुष्ट हो गए। वे श्रीराम से अनुज तथा सीता सहित उनके हृदय में निवास करने का वरदान प्राप्त कर अपने देह को योगाग्नि में भस्म कर देते हैं और इस प्रकार स्वर्ग सिधार जाते हैं :—

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥
अर० १-९

अपने बनवास काल में श्रीराम ऋषियों-मुनियों के आश्रमों में घूम-घूम कर उन्हें सान्त्वना देते हैं। वे भरद्वाज, बाल्मीकि, अत्रि सुतीक्ष्ण, अगस्त्य प्रभृति मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनकी वन्दना

कर उन्हें अभय करते हैं। उनकी साधना में विघ्न की समाप्ति के लिए ही वे प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से शून्य कर दूँगा :—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ अर० ९

मुनि वशिष्ठ श्रीराम के कुलगुरु हैं। प्रकट में श्रीराम उनकी आज्ञा से ही सारा कार्य करते हैं और अपनी सफलता का श्रेय भी वे गुरु-कृपा को ही देते हैं पर वास्तविकता तो यह है कि गुरु वसिष्ठ ने ब्रह्मा के इस आश्वासन पर ही पौरोहित्य कर्म स्वीकार किया था कि भगवान रघुकुल में अवतरित होंगे। उनका पौरोहित्य कर्म करके मैं वही सब फल प्राप्त कर लूँगा जिसे लोग योग, जप, यज्ञ और दान करने से प्राप्त करते हैं :—

तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन ॥ उत्तर ४८

इस प्रकार श्रीराम ने अवतरित होकर ऋषियों-मुनियों का भी अध्यात्म-हित-साधन कर उन्हें अपना धाम प्रदान किया।

भक्त, ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनि तो निरन्तर उनका ध्यान एवं स्मरण करते रहे अस्तु उन पर श्रीराम की कृपा हुई पर ऐसा नहीं कि अन्य लोगों पर उनकी कृपा-दृष्टि न हुई हो। वैरभाव से स्मरण करने वाले निशाचरों पर भी उनकी कृपा हुई। ताड़का, विराध, खरदूषण, त्रिशिरा, मारीच, कबंध, कुंभकरण तथा रावण प्रभृति अनेकानेक दुर्दान्त राक्षसों को भी उन्होंने अपने हाथ से वध कर उनका भी उद्धार कर दिया। श्रीराम की आज्ञा से इन्द्र ने रणस्थली पर सुधा वृष्टि की। यह सुधा-वृष्टि राम-रावण दोनों दलों पर हुई बानर-भालु तो जीवित हुए पर राक्षस नहीं। राक्षसों के जीवित न होने का एकमात्र रहस्य यह था कि उनके मन मृत्यु के समय रामाकार हो हो जाने के कारण सांसारिक बंधनों से मुक्त हो गए थे। इस प्रकार श्रीराम ने सभी राक्षसों को मुक्ति प्रदान कर दी।

सखा सुग्रीव की सहायता से श्रीराम ने एक ही बाण से बालि को मार दिया। इस प्रकार बालि का भी उद्धार हो गया :—

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा ॥
किष्किधा० १-११

दूसरे सखा विषीषण को लंका का राज्य प्रदान कर उन्हें अपनी अनपायनी भक्ति दे दी। लंका-विजय के बाद श्रीराम ने विभीषण से कहा कि तुम एक कल्प तक लंका में राज्य करना और मन में मेरा स्मरण करते रहना। अंत में जहाँ संतगण पहुँचते हैं मेरा वह धाम तुम्हें मिल जायगा :—

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मनमाहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥
लंका० ११६ (घ)

अयोध्या वासियों को बुलाकर तथा उपदेश कर श्रीराम ने कृतार्थ कर दिया :—

उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन रघुनायक जहँ भूप॥ उत्तर० ४७

यह तो श्रीराम के जगतोद्धार के कतिपय उदाहरण मात्र हुए। उनके संपर्क में जो भी आया चाहे वह मित्र-भाव से आया हो अथवा शत्रु-भाव से या अन्य किसी भाव से उसका उद्धार तुरन्त ही हो गया। इतना ही नहीं राम की महिमा का वर्णन तथा उनके गुणों का गुणानुवाद कर असंख्य लोगों का उद्धार उस कल्प में हुआ था और आज भी हो रहा है। भक्त गण श्रीराम के इसी यश का गान करके ही भवसागर से पार हो जाते हैं :—

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
बाल १-१२२

श्रीराम जगत के उद्धार हेतु ही अवतार लेते हैं उनकी सांसारिक लीलाओं से निरन्तर जगतोद्धार होता रहता है। चाहे कोई भक्त हो अथवा अभक्त कोई भी उनके सान्निध्य में आने पर उनकी कृपा से अछूता नहीं रह जाता।

□

अनुजस्नेही राम

श्रीराम अपने अनुजों के प्रति अत्यधिक स्नेह का व्यवहार करते हैं। भरत जी श्रीराम को अयोध्या वापस लौटा लाने के लिए चित्र-कूट पहुँच गए हैं। वहाँ वे जो कुछ कहते हैं उससे इस बात पर अच्छा प्रकाश पड़ता है कि श्रीराम के हृदय में अपने अनुजों के प्रति कितना स्नेह था ? वे कहते हैं कि मैं अपने स्वामी श्रीराम के स्वभाव को भली प्रकार जानता हूँ। वे अपराधियों पर भी क्रोध नहीं करते। मैंने खेलते समय भी कभी उन्हें क्रुद्ध होते नहीं देखा। मैं लड़कपन से ही उनके साथ हूँ। श्रीराम ने कभी मेरे मन के विपरीत कार्य नहीं किया। वे सदैव ही मेरा मन रखते रहे हैं। मैंने उनकी कृपा की रीति को अच्छी तरह हृदय से विचार कर परख लिया है। मेरी प्रसन्नता तथा मेरे मन को रखने के लिए वे हारे हुए खेल में भी मुझे जिता देते थे :—

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ ।।
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ।।
अयो० ३-२६०

सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ।।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोहीं। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ।।
अयो० ४-२६०

राजा दशरथ बारात लेकर जनकपुर पहुँचते हैं। श्रीराम तथा लक्ष्मण पहले ही वहाँ विद्यमान हैं। जब ये लोग भी बारात में पहुँचते हैं तो भरत जी श्रीराम को शत्रुघ्न के साथ प्रणाम करते हैं। श्रीराम उन्हें उठाकर स्नेहपूर्वक हृदय से लगा लेते हैं :—

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा ।।
बाल० ४-३०८

भरत ननिहाल में हैं। राम का राज्याभिषेक होने वाला है। श्री राम तथा सीता के शुभांगों में फड़कन हो रही है। इस शुभ सूचना का परस्पर विश्लेषण करते हुए वे यही अर्थ लगाते हैं कि भरत ननिहाल

से आने वाले हैं। श्रीराम के हृदय में भरत की चिन्ता उसी प्रकार हो रही है जिस प्रकार कछुए के हृदय में अपने अण्डे की चिन्ता बनी रहती है। यह है अनुज के प्रति वास्तविक स्नेह कि वे अपने राज्याभिषेक की तुलना में भी अनुज-मिलन को अधिक श्रेयस्कर एवं आनन्ददायक मानते हैं। अस्तु उसी की चिन्ता में मग्न हैं :—

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फल दूसर नाहीं।
रामहि बन्धु सोच दिनराती। अण्डन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती।।
अयो० ४-७

अपने भाइयों पर श्रीराम का इतना अधिक प्रेम है कि वे अपने युवराज पद के अभिषेक की सूचना से उतने प्रसन्न नहीं हैं जितने कि इस परम्परा से दुखी कि रघुवंश में सभी भाइयों को छोड़ कर एकमात्र बड़े भाई को ही राज्य पद दिया जाता है। श्रीराम की दृष्टि से रघुवंश में यह एक बड़ी अनुचित परंपरा है :—

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू।।
अयो० ४-१०

जिस समय श्रीराम अपने हृदय में यह विचार कर रहे थे उसी समय श्रीराम के राज्याभिषेक की बात सुनकर लक्ष्मण अत्यंत प्रसन्न एवं प्रेम में मग्न होकर उनके पास आए। श्रीराम ने अनेक प्रिय बचन कह कर उनका सम्मान किया।

तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद।। अयो० १०

कैकयी द्वारा भरत को राज्य तथा श्रीराम को चौदह वर्षों का बनवास माँगने पर महाराज दशरथ श्रीराम के अनुज-स्नेह के संबंध में कैकेयी को समझाते हुए कहते हैं कि श्रीराम को राज का लोभ नहीं है। भरत पर श्रीराम का अत्यधिक प्रेम है। मैं तो राजनीति के विचार से ही राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की बात सोच रहा था क्योंकि नीति में ऐसा ही कहा गया है कि सबसे बड़े पुत्र को ही राज्य दिया जाना चाहिए :—

लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचार जियँ करत रहेउँ नृपनीति।। अयो० ३१

भरत के प्रति राम का स्नेह चरम सीमा का है। सारा संसार तो श्रीराम के नाम का जप करता है पर वे भरत का नाम जपते रहते हैं अर्थात् इनका स्मरण निरन्तर करते हैं :—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम राम जप जेही ॥

अयो० ४-२१८

भरत के सेना सहित चित्रकूट आगमन की बात को जानकर श्रीराम क्षणिक चिन्ता में उद्विग्न हो जाते हैं पर शीघ्र ही भरत के शील-स्वभाव का स्मरण कर उनका समाधान हो जाता है कि भरत साधु हैं, विज्ञ हैं तथा मेरे आज्ञाकारी हैं। लक्ष्मण दुष्कल्पना से प्रभावित हो भरत के संबंध में अनेक कठोर बतें कह जाते हैं। उनका समाधान करते हुए श्रीराम जो कुछ कहते हैं उससे स्पष्ट होता है कि भरत के प्रति उनमें कितना स्नेह तथा उनके सद्गुणों के प्रति कितनी आस्था है ? वे लक्ष्मण से कहते हैं कि राजमद से वही व्यक्ति मतवाला होता है जिसे अच्छे लोगों का सत्संग प्राप्त नहीं हुआ होता है। भरत की तरह भला व्यक्ति ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया और न देखा ही गया है। भरत को साधारण राजपद की बात तो कौन कहे यदि उन्हें ब्रह्मा और शंकर का पद मिल जाय तो भी उनमें अहंकार न आवेगा। वे लक्ष्मण तथा पिता की शपथ लेकर कहते हैं कि भरत जैसा पवित्र एवं अच्छा भाई संसार में नहीं है। भरत के गुण, शील तथा स्वभाव का वर्णन करते हुए श्रीराम प्रेम में मग्न हो गए :—

जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधु सभा जेहिं सेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

अयो० ४-२३१

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ ॥

अयो० २३१

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥

अयो० २-२३२

कहत भरत गुन सील सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

अयो० ४-२३२

लक्ष्मण जी द्वारा यह सूचना पाते ही कि भरत जी प्रणाम कर रहे

हैं, श्रीराम उनसे मिलने के लिए उनके प्रेम से अधीर होकर उठ खड़े हुए। उन्हें अपने वस्त्र एवं आयुधों का भी ध्यान नहीं रह गया परिणाम स्वरूप उनके वस्त्र तरकस, धनुष तथा बाण विभिन्न स्थानों पर गिर पड़े :—

उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
अयो० ४-२४०

श्रीराम ने प्रणाम करते हुए भरत को सस्नेह बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया। दोनों भाई जिस प्रेम से परस्पर मिल रहे हैं उसका वर्णन संभव नहीं हो पा रहा है। दोनों भाई मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंभाव को भूलकर एक दूसरे से मिल रहे हैं। यह अहंबोध ही एक व्यक्ति को दूसरे से अलग करता है अन्यथा व्यक्ति व्यक्ति में अन्तर ही न हो। श्रीराम और भरत का यह प्रेम अगाध है, वहाँ तक ब्रह्मा विष्णु तथा महेश का भी मन नहीं पहुँचता :—

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपा निधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥ अयो० २४०
परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥
अयो० १-२४१
अगम सनेह भरत रघुबर को जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को॥
अयो० ३-२४१

मिलि सपेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥ अयो० २४१

श्रीराम को अयोध्या लौटा ले जाने के संबंध में होने वाली चर्चा में जब भरत अत्यधिक आत्म-ग्लानि तथा विनम्रता से अपनी भर्त्सना करते है तो श्रीराम उन्हें धैर्य तथा आश्वासन देकर उनका समाधान करते हुए कहते हैं कि मैं भगवान शंकर को साक्षी देकर सहज रूप में यह बात कह रहा हूँ कि यह पृथ्वी तुम्हारे सद्‌गुणों एवं सदाचारों से अपने स्थान पर स्थित है। तुम अकारण कुतर्क न करो क्योंकि कि बैर और प्रेम के भावों को छिपाया नहीं जा सकता है :—

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउर राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ॥
अयो० १-२६४

श्रीराम भरत से इतना अधिक स्नेह रखते हैं कि वे भरत से कहते

हैं कि मन की ग्लानि त्याग दो। प्रसन्न मन से सारे संकोचों को त्याग कर तुम आज जो कुछ भी कहोगे मैं वही करूँगा :—

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु ॥
सत्य संध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥ अयो० २६४

महाराज मिथिलेश, महारानी सुनयना से चित्रकूट में विचार-विमर्श करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मण अयोध्या लौट जायँ तथा भरत श्रीराम के साथ बन में रह जायँ इसी में सब का भला है और यही सब के मन में भी है परन्तु श्रीराम और भरत का पारस्परिक प्रेम एवं विश्वास कितना है इसका अनुमान लगाना संभव नहीं हैं ? श्रीराम शील एवं समता तथा भरत प्रेम और ममता की सीमा है :

देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की ॥
अयो० ३-२८६

चित्रकूट में एकत्र अयोध्या तथा मिथिलावासियों की सभा में भरत जी चित्रकूट आने में हुई अपनी भूल का वर्णन करते हुए प्रेम-विह्वल हो गए। उनके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह होने लगा। व्याकुल हो उन्होंने श्रीराम के चरण पकड़ लिए। श्रीराम ने सुन्दर वचनों से सम्मानित कर उन्हें हाथ पकड़कर अपने निकट बैठा लिया। भरत की विनम्रता तथा उनके स्वभाव को देखकर सारी सभा एवं स्वयं श्रीराम स्नेह से शिथिल हो गए :—

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी ॥
भरत बिनय सुनि देख सुभाऊ। सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ ॥
अयो० ४-३०१

श्रीराम से आश्वासन रूप उनके खड़ाऊँ प्राप्त कर भरत जी ने उनसे अयोध्या लौटने की अनुमति माँगी। प्रेम के वशीभूत श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। श्रीराम एवं भरत के इस प्रेम-मिलन के आनन्द का वर्णन करना संभव नहीं है। धैर्य की धुरी को धारण करने वाले श्रीराम ने धैर्य त्याग दिया है उनके शरीर मन तथा बचन तीनों से प्रेम उमड़ा पड़ रहा है और नेत्रों से अश्रुप्रवाह हो रहा है। मुनि गण, गुरु वसिष्ठ तथा महाराज जनक जैसे धैर्यवान, ज्ञानी लोग श्रीराम तथा भरत के अद्वितीय तथा अपार प्रेम को देख कर बैराग्य

एवं विवेक सहित तन, मन और वचन से उसमें निमग्न हो गए हैं: —

मागेउ बिदा प्रनाम करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥

अयो० ३१६

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु कहि न परत सो॥

अयो० २-३१७

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरन्धर धीरजु त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥

अयो० ३-३१७

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से॥

अयो० ४-३१७

तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥

अयो० ३१७

मेघनाद के शक्ति प्रहार से लक्ष्मण जी मूर्छित हो गए हैं। हनुमान जी संजीवनी बूटी लेने गए हैं पर अभी लौटे नहीं। अनुज लक्ष्मण को श्रीराम उठा कर हृदय से लगा लेते हैं और उनके गुणों का वर्णन करते हुए जिस विह्वलता तथा विकलता का परिचय देते हैं उससे पता चलता है कि वे अनुज लक्ष्मण को कितना अधिक स्नेह करते हैं :—

अर्ध राति गइ कपि नहि आयो। राम उठाइ अनुज उर लायो॥

लंका १-६१

लंका-विजय तथा विभीषण के राजतिलक के बाद विभीषण श्रीराम से आग्रह करते हैं कि उन्हें हर प्रकार स्वीकार कर उनको साथ लेकर ही श्रीराम अयोध्या जायँ पर राम को इसके लिए समय कहाँ ? भरत की दशा का स्मरण आते ही एक पल भी कल्प के समान लंबी अवधि का प्रतीत होता है। वे विभीषण से अनुरोध करते हैं ऐसा यत्न करने का जिससे कि वे शीघ्र भरत के पास जो कि निरन्तर उनके नाम का जप कर रहे हैं, पहुँच सकें। उन्हें भय है कि यदि वे चौदह वर्ष की अवधि बीत जाने पर जायेंगे तो अनुज भरत को जीवित न पावेंगे। भरत के प्रेम का स्मरण कर उनके शरीर में रोमांच हो रहा है :—

बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर ।।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ।।
लंका ११६(ग)

अयोध्या वापस पहुँचने पर भरत जी श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। वे उठाने से भी उठ नहीं रहे हैं। अनुज-स्नेही श्रीराम ने बलपूर्वक उनको उठाकर हृदय से लगा लिया। स्नेहातिरेक से उनके नेत्र अश्रुपूरित हो गए। श्रीराम और भरत के मिलने की शोभा अवर्णनीय है। इसके बाद प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम ने शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया :—

परे भूमि नहि उठत उठाए। बर करि कृपा सिंधु उरलाए ।।
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े ।।
उत्तर ४-५

पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ ।।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ।। उत्तर ५

श्रीराम का सभी भाइयों पर इतना अधिक स्नेह है कि वे तीनों भाइयों को अपने हाथों से स्नान कराते हैं। पहले तो वे तपस्वी रूप में जीवन बिताने वाले अनुज भरत की जटा को अपने हाथ से सुलझाते हैं फिर सभी को स्नान कराते हैं :—

पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे ।।
उत्तर २-११(क)

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई ।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।।
उत्तर ३-११(क)

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में यह चित्रित किया है कि श्रीराम का अपने अनुजों पर अपार स्नेह था। अनुज भी अग्रज श्रीराम के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का भाव रखते थे। आज समाज में इस आदर्श-प्रेम को जीवन में उतार कर ही वर्तमान विषमताओं से छुटकारा पाने की आशा की जा सकती है।

□

सखा-स्नेही राम

श्रीराम का सखा-स्नेह श्लाघनीय है। वे जिसको भी सखा-भाव से अपनाते हैं, अन्त तक उसका निर्वाह करते हैं। उनके इस स्नेह में जाति, पाँति, कुल तथा स्थान, कुछ भी बाधक नहीं हो पाता। निषाद, जिन्हें जातीय क्रम में श्रीराम की तुलना में बहुत नीचे माना जाता था, को भी श्रीराम ने सखा-रूप में स्वीकार कर लिया है। वे उन पर अपार स्नेह रखते हैं। निषाद भी राम के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा रखते हैं। गंगापार करते ही श्रीराम निषाद को घर वापस जाने को कहते हैं पर वे तैयार नहीं होते। अनुनय-विनय कर वे श्रीराम के साथ हो लेते हैं। वे कहते हैं कि आप जहाँ रहना चाहेंगे मैं वहाँ आप के रहने की व्यवस्था कर वापस आ जाऊँगा।

निषाद श्रीराम के स्नेह से इस प्रकार बँधे हैं कि जब भरत श्रीराम को अयोध्या वापस लौटा लाने हेतु चित्रकूट जाते हुए गंगातट पर पहुँचते हैं तो उन्हें दलबल सहित देखकर निषाद सशंकित हो जाते हैं। वे भरत का मार्ग रोकने का संकल्प करते हैं। संयोगवश यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भरत किसी दुर्भावनावश नहीं अपितु श्रीराम को अयोध्या वापस लाने हेतु ही जा रहे हैं। फिर तो निषाद मार्ग-दर्शक के रूप में भरत के दल के साथ हो लेते हैं। मुनिराज वसिष्ठ निषाद को श्रीराम का स्नेही-सखा जान कर उनसे मुदित मन से मिले। उनकी यह प्रसन्नता लक्ष्मण से मिलने की प्रसन्नता से भी अधिक थी।

श्रीराम अपने मित्रों तथा सहायकों को विदा करके अन्त में स्नेही-सखा निषाद को विदा करते हैं। विदा के पूर्व उन्हें भूषण, वस्त्र तथा प्रसाद प्रदान करते हैं और कहते हैं कि आप घर जाइए, मेरा स्मरण करते रहिएगा। आगे श्रीराम कहते हैं कि हे सखा! आप मेरे लिए भरत के समान हैं। आप निरन्तर अयोध्या आते-जाते रहिएगा :—

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥

उत्तर २-२०

दूसरे सखा सुग्रीव पर भी श्रीराम का अपार स्नेह है। वे सुग्रीव के लिए ही बालिबध की प्रतिज्ञा करते हैं।

श्रीराम सुग्रीव को मित्र का लक्षण विस्तार से बताते हैं और उन्हें आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि हे सखा! सारी चिन्ताओं का त्याग मेरे भरोसे पर कर दो। मैं हर प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा :–

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥
किष्किंधा ५-७

सुग्रीव को जब ज्ञान होता है तो वे श्रीराम से याचना करते हैं कि ऐसी कृपा कीजिए कि मैं सब कुछ त्याग कर दिन-रात आपका भजन कर सकूँ। पर राम भला मित्र के दुख को कैसे सह सकते। वे सुग्रीव के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते और एक ही बाण से बालि को मार देते हैं।

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ किष्किंधा ८

अयोध्या से विदा होते समय श्रीराम के आदेश से भरत जी सुग्रीव को अपने हाथों से वस्त्र धारण कराते हैं :—

सुग्रीवहि प्रथमहि पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए।
उत्तर ३-१७ (क)

तीसरे सखा विभीषण पर श्रीराम उन्मुक्त स्नेह की वृष्टि करते हैं। रावण से तिरस्कृत विभीषण राम की शरण लेने हेतु राम के शिविर में पहुँचते हैं। सुग्रीव राजनीतिक आधार पर उन्हें बाँध कर रखने की सम्मति देते हैं पर श्रीराम, विभीषण को सखा रूप में अंगीकार कर लेते हैं। वे विभीषण को लंका का वह राज्य एकमात्र सखा-भाव से अनायास ही दे देते हैं जिसे रावण ने अपने शिरों की आहुति दे, भगवान शंकर को प्रसन्न कर के प्राप्त किया था।

श्रीराम एक बार विभीषण को अपना लेने पर सदैव उनकी रक्षा करते हैं। राम-रावण का घनघोर युद्ध हो रहा है। रावण क्रुद्ध होकर श्रीराम के पार्श्ववर्ती विभीषण पर शक्ति का प्रहार करता है। सखा-स्नेही श्रीराम, स्नेह भाव से विभीषण की रक्षा के लिए उनको खींच कर अपने पीछे कर लेते हैं। परिणामस्वरूप वह शक्ति श्रीराम को ही लगती है, वे मूर्च्छित हो जाते हैं :—

पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचण्ड।
चली विभीषण सन्मुख मनहुँ काल कर दण्ड ॥ लंका ९३
आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥
लंका १-९४
लागि सक्ति मुरछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई ॥
लंका २-९४

श्रीराम प्रत्येक कार्य में स्नेही-सखा बिभीषण की सम्मति लेते हैं। विभीषण के परामर्श से ही वे समुद्र से मार्ग की याचना करते हैं। उनके परामर्श से मेघनाद तथा रावण द्वारा किए जाने वाले अपावन यज्ञों का विध्वंस करा देते हैं।

श्रीराम ने सुग्रीव से वार्ता करते हुए मित्र के जो लक्षमण बताए हैं व्यवहार में उन्होंने सदैव उन्हीं के अनुसार आचरण किया है। उन्होंने सदैव मित्रों को उनकी दुखद परिस्थितियों से उबारा है। उनकी समस्याओं के समाधान के बाद कहीं भी स्वयं लाभ उठाने अथवा उनका राज्य लेने की चेष्टा नहीं की।

श्रीराम अपने सखाओं को समुचित सम्मान देते हैं। अयोध्या पहुंचने पर वे उन्हें संकेत कर गुरु वसिष्ठ के चरणों में पड़ने को कहते हैं। फिर उनकी प्रशंसा वसिष्ठ जी से करते हुए कहते हैं कि युद्ध में इन लोगों ने मेरी भरपूर सहायता की। इन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों की भी बाजी लगा दी थी। ये लोग मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं। श्रीराम की प्रिय एवं प्रशंसायुक्त वाणी सुन कर उनके सखा प्रेम में अत्यधिक मग्न हो गए। क्षण-प्रतिक्षण उनको नवीन सुखों की अनुभूति होने लगी :—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ॥
उत्तर ४-८ (क)

□

अमित वीर राम

श्रीराम अमित वीर हैं। उनकी वीरता की थाह किसी को नहीं मिल पाई। तुलसी के राम की अमित वीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सामान्यतया जहाँ भी वे दिखाए गए हैं धनुष बाण उनके हाथों में हैं। जनश्रुति तो यह है कि गोस्वामी जी मथुरा में जब भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करने मंदिर में गए तो उन्होंने कहा कि 'तुलसी मस्तक तब नवै जब धनुष बान लेउ हाथ।' भाव यह है कि तुलसी ने राम के वीर रूप को प्रमुखता दी है। मुनि विश्वामित्र उनकी वीरता का अनुमान करके ही अपनी यज्ञरक्षा के लिए उन्हें राजा दशरथ से माँगते हैं। मुनि विश्वामित्र के साथ अनुज लक्ष्मण सहित जाते हुए वे सिंह की तरह दिखाई देते हैं। उनके नेत्र रक्तिम, वक्ष चौड़ा तथा भुजाएँ विशाल हैं। उनका शरीर नीले कमल तथा तमाल वृक्ष की तरह श्याम है। कटि में पीताम्बर और सुन्दर तरकस कसे हुए हैं। दोनों हाथों में सुन्दर धनुष तथा बाण हैं :—

पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल विस्व कारन करन॥

बाल० २०८ (ख)

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥

बाल० १-२०९

मुनि विश्वामित्र ने श्रीराम को ताड़का दिखा दी। वह क्रोध करके दौड़ी। श्रीराम ने एक ही बाण से उसका प्राण हर लिया। उन्होंने मुनियों को निर्भय कर दिया और कहा कि आप लोग जाकर यज्ञ करें और स्वयं यज्ञ की रक्षा करने लगे। मुनि-द्रोही मारीच, अपने सहायकों के साथ यज्ञ विध्वंस करने के लिए आया जिसे श्रीराम ने बिना फल वाले बाण से मार कर सौ योजन दूर समुद्र के पार भेज दिया। इधर लक्ष्मण ने मारीच की सारी निशाचर सेना का नाश कर दिया :—

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा॥

बाल० २-२१०

सीता-स्वयंवर की रंग-भूमि में देश-विदेश के राजे-महाराजे बैठे हुए हैं। उनमें श्रीराम अनुज लक्ष्मण सहित पहुँचते हैं। महान रणधीर राजागण श्रीराम के रूप को इस प्रकार देख रहे हैं मानो स्वयं वीर रस शरीर धारण करके आ गया हो। कुटिल राजाओं को वे भयानक रूप में दिखाई पड़े जिससे वे डर गए। छद्म वेषी राजाओं ने उन्हें काल रूप में देखा :—

देखहिं रूप महा रन धीरा। मनहुँ बीर रस धरें सरीरा।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।।
बाल० ३-२४१

रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रकट काल सम देखा।।
बाल० ४-२४१

श्रीराम की वीरता की परीक्षा तो धनुष यज्ञ में ही भली प्रकार हो जाती है। बड़े-बड़े योद्धाओं तथा प्रसिद्ध वीरों द्वारा धनुष उठाने और तोड़ने की बात कौन कहे वे उसे तिल भर खिसका भी नहीं पाते हैं। श्रीराम उसे इतनी शीघ्रता से चढ़ा कर तोड़ देते हैं कि वहाँ बैठे हुए लोग यह भी नहीं देख पाते कि कब उन्होंने उठाया और कब तोड़ दिया :—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सब ठाढ़े।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।
बाल० ४-२६१

धनुभंग के घोर शब्द को सुनकर श्री परशुराम जी आए। लक्ष्मण ने उनके परुष वचनों का प्रतिवाद किया पर श्रीराम विनम्रता पूर्वक ही बात करते रहे पर उनका क्रोध शान्त न हुआ। अन्ततः जब उन्होंने श्रीराम को भी भला-बुरा कहकर ललकारना शुरू किया तो उन्होंने कहा कि कोई भी रघुवंशी भयवश किसी को भी सिर नहीं झुकाता फिर जो आप को डरे वह अभय हो जाता है। उनकी रहस्यमयी बातों को सुनकर परशुराम जी को कुछ ज्ञान हुआ और उन्होंने अपना धनुष उन्हें चढ़ाने को दिया। श्रीराम के हाथों में आते ही धनुष अपने आप ही चढ़ गया और परशुराम अत्यन्त विस्मित हुए। वे तपस्या करने चले गए। जिन परशुराम से सारे राजे-महाराजे भयभीत हो थर-थर काँप रहे थे वे ही श्रीराम के वास्तविक स्वरूप तथा उनके शौर्य का ज्ञान कर वहाँ से चले गए।

महाराज दशरथ को श्रीराम के धनुर्भंग की सूचना देने वाले महाराज जनक के दूत कहते हैं कि श्रीराम ने उस धनुष को उठाया है जिसे उठाने का साहस सुमेर गिरि को उठाने वाला बाणासुर तथा खेल ही खेल में कैलाश पर्वत को उठाने वाला रावण भी नहीं कर सका। वहाँ रघुवंश शिरोमणि श्रीराम ने शिव धनुष को इतनी सरलतापूर्वक तोड़ दिया जितनी सरलता से हाथी कमल दण्ड को तोड़ देता है :—

सकइ उठाइ सुरासुर मेरू। सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू ॥
जेहिं कौतुक सिव सैल उठावा। सोउ तेहिं सभाँ पराभउ पावा ॥
बाल० ४-२६२

तहाँ राम रघुबंस मुनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल ॥ बाल० २६२

श्रीराम का शौर्य अतुलनीय है। जयन्त के पीछे एक सींक का बाण लगा कर वे उसकी ऐसी दशा कर देते हैं कि समग्र त्रिलोक में उसे कहीं भी शरण नहीं मिलती। किसी ने उसे बैठने को भी नहीं कहा। और तो और पिता इन्द्र ने भी शरण नहीं दी। किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं थी कि वह श्रीराम से द्रोह करने वाले की रक्षा कर सके :—

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥
अर० ३-२

श्रीराम बन में भ्रमण करते समय अस्थि-समूह को देख कर जिज्ञासा करते हैं। मुनि गण बताते हैं कि राक्षसों ने ऋषियों-मुनियों को खा-खाकर उन्हीं की अस्थियों का यह ढेर एकत्र कर दिया है। इस सूचना से पहले तो करुणा से उनके नेत्र अश्रुपुरित हो जाते हैं पर शीघ्र ही उनका वीरत्व प्रखर होता है और वे भुजा उठा कर पृथ्वी को निश्चरहीन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं :—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥
अर० ९

श्रीराम का अतुलनीय शौर्य दर्शनीय है। वे अकेले ही खरदूषण की सेना का सामना करते हैं, लक्ष्मण को भी साथ नहीं लेते। अगणित राक्षस एक साथ ही अपने विभिन्न आयुधों से श्रीराम पर प्रहार करते

हैं। वे उनके आयुधों को एक निमिष में ही काटकर उन्हें सावधान कर सभी राक्षस-नायकों को दस-दस बाण मारते हैं :—

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहिं डारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं ॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका ॥
अर० ३-२० (क)

श्रीराम कितने आत्मविश्वासी हैं इसका पता इस बात से चलता है कि जब गृध्रराज जटायु उनके प्रस्ताव पर अपना शरीर रखने को तैयार नहीं होते तो श्रीराम उनसे आग्रह करते हैं कि हे तात ! सीता-हरण की बात मेरे पिता दशरथ जी से न कहिएगा। यदि मैं वस्तुतः राम हूँ तो रावण अपने परिवार सहित मृत्यु को प्राप्त होकर यह सूचना उन्हें देगा :—

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ अर० ३१

इतना ही नहीं सुग्रीव को बालिवध में पर्याप्त सन्देह है। मित्रता होते ही श्रीराम उन्हें अभय कर विश्वास दिलाते हैं कि मैं बालि को एक ही बाण से मार दूँगा। ब्रह्मा तथा शंकर की शरण में जाने पर भी उसकी रक्षा नहीं हो सकेगी :—

सुनि सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ॥ किष्किंधा ६

सुग्रीव को श्रीराम के इस दृढ़ निश्चय से भी पूर्ण समाधान नहीं होता जब तक कि श्रीराम उनके द्वारा दिखाए गए दुंदुभि राक्षस की अस्थियों के ढेर तथा ताल के वृक्षों को ढहा नहीं देते। इससे सुग्रीव का राम के प्रति प्रेम और बढ़ जाता है उन्हें उनकी अमित वीरता का स्पष्ट आभास हो जाता है तथा उन्हें इस बात का विश्वास हो जाता है कि ये निश्चय ही बालि का बध करने में समर्थ होंगे :—

दुंदुभि अस्थि ताल दिखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥
किष्किंधा ६-७

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन भइ परतीती ॥
किष्किंधा ७-७

श्रीराम के संकेत पर सुग्रीव बालि के पास जाकर गर्जन करता है। उसकी गर्जना सुन कर बालि क्रुद्ध होकर दौड़ा। तारा ने अपने पति बालि का चरण पकड़ कर उन्हें समझाने का प्रयास करते हुए कहा कि जिन श्रीराम तथा लक्ष्मण से सुग्रीव ने मित्रता की है वे इतने अमित वीर हैं कि आपकी बात कौन कहे वे तो काल को भी युद्ध में जीत सकते हैं :—

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीत सकहिं संग्रामा।।
किष्किंधा १५-७

रावण द्वारा गुप्तचरी के लिए नियुक्त श्रीराम के शिविर से लंका लौट कर शुक, रावण को राम के दल का समाचार देता है। वह श्रीराम की सेना की प्रवलता का विस्तृत वर्णन करते हुए श्रीराम के शौर्य एवं उनकी वीरता का भी विवरण देता है। वह कहता है कि श्रीराम की सेना के बानर तथा भालु स्वभावतः ही वीर हैं। उनकी वीरता इस बात से और बढ़ गई है कि उनके संरक्षक श्रीराम हैं, जो कि करोड़ों कालों को भी युद्ध क्षेत्र में जीत सकते हैं। श्रीराम के तेज, बल और बुद्धि की विपुलता का वर्णन लाखों शेष भी नहीं कर सकते :—

सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम।। सु० ५५
राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई।
सु० १-५६

श्रीराम समुद्र तट पर आसन लगा कर मार्ग की याचना कर रहे थे पर समुद्र कहाँ सुनने वाला था। अन्ततः श्रीराम ने लक्ष्मणजी से धनुष मँगाकर कराल बाण का संधान समुद्र को लक्ष्य करके कर दिया। भयभीत समुद्र भेंट सहित विप्र रूप में श्रीराम के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने श्री रामकी अनेक विधि प्रशंसा कर क्षमायाचना की तथा समुद्र पर सेतु बंधन का सुझाव दिया। श्रीराम द्वारा इस सुझाव के स्वीकार कर लेने के पश्चात उसने अपने तट पर रहने वाले दुष्ट के बध की प्रार्थना की। श्रीराम ने उसका बध कर समुद्र की पीड़ा का हरण कर लिया। श्रीराम के बिपुल बल का परिचय पा कर सागर को अतीव प्रसन्नता हुई :—

एहि सर मम उत्तर तट बासी । हतहु नाथ खल नर अधरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहि हरी राम रनधीरा ॥
सुं० ३-६०

देखि राम बल पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सुं० ४-६०

समुद्र पार कर श्रीराम ने सुवेल पर्वत पर अपना युद्ध-शिविर स्थापित कर लिया है । वे सुग्रीव विभीषण तथा सेना के अन्य मुख्यों के साथ बिराजमान है । श्रीराम विभीषण को संबोधित करते हुए कहते हैं कि दक्षिण दिशा की ओर देखो बादल घुमड़ रहा है तथा बिजली चमक रही है कहीं ऐसा न हो कि ओला-वृष्टि हो । विभीषण ने वास्तविकता प्रकट करते हुए कहा कि न तो मेघ मालाएँ है और नहीं विद्युत । लंका के शिखर पर स्थित महल में रावण रागरंग का आनन्द ले रहा है । रावण ने जो छत्र धारण कर रखा है वही मेघमाला जैसा तथा मन्दोदरी के दोलायमान कर्णफूल ही विद्युत की चमक से प्रतीत हो रहे हैं । मधुर ध्वनि अनुपम ताल तथा मृदंग की है । श्रीराम रावण के अभिमान को समझ कर मुस्कराए और उन्होंने बाण का संधान करके एक ही बाण से रावण के छत्र, मुकुट तथा मन्दोदरी के कर्णफूल को काट कर गिरा दिया । लोगों के देखते ही देखते ये सब धराशायी हो गए पर इसका रहस्य किसी की समझ में नहीं आया । यह चमत्कार करके श्रीराम का बाण पुनः उनके तूणीर में आ गया । राम के बाण संधान-कौशल तथा उनकी बीरता पर इस घटना से अच्छा प्रकाश पड़ता है :—

छत्र मुकुट ताटंक सब हते एक ही बान ।
सबके देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ॥ लंका १३ (क)

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग ।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रस भंग ॥ लंका १३ (ख)

राम तथा रावण दोनों दल अपने-अपने स्वामियों की दुहाई देकर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे हैं । राक्षस जब सीधे युद्ध में पराजित होने लगते हैं तो वे माया का सहारा लेते हैं । वे विभिन्न प्रकार की माया का प्रसार कर श्रीराम की सेना को परेशान तथा भयभीत करते हैं । इन विषम परिस्थितियों में श्रीराम का बाहुबल और उनकी वीरता

ही काम आती है। वे हँसते हुए बाण संधान कर माया का निवारण कर देते हैं :—

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा ।।
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ।।
लंका २-४७

इसी प्रकार मेघनाद अपनी माया से श्रीराम की सेना के बानरों तथा भालुओं को व्याकुल कर देता है। श्रीराम उसकी इस माया को देखकर मुस्कराते हैं। उन्हें जब यह अनुमान होता है कि सभी बानर भयभीत हो गए हैं तब वे एक ही बाण के संधान से माया को नष्ट कर देते हैं। उनके कृपा पूर्ण अवलोकन से बानर और भालु इतने प्रबल हो जाते हैं कि वे रोकने से भी नहीं रुकते :—

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ।।
कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके ।।
लंका ४-५२

दुर्धर्ष कुंभकरण बानरों की सेना को तितर-वितर कर देता है। इस स्थिति को देखकर श्रीराम सुग्रीव, विभीषण तथा लक्ष्मण को सेना की रक्षा का भार सौंप कर कुंभकरण के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने अपने शौर्य का प्रदर्शन इस प्रकार किया कि क्षण भर में ही राक्षसों का संहार हो गया और उनके बाण पुनः उनके तरकस में वापस आ गए।

छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच ।। लंका ६८

अन्ततः श्रीराम ने क्रुद्ध होकर एक तीक्ष्ण बाण लिया तथा उसका संधान कर कुंभकर्ण के सिर को धड़ से अलग कर दिया :—

तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ।।
लंका २-७१

युद्ध-क्षेत्र में रावण ने अपनी माया का प्रसार कर रखा है। श्रीराम के अतिरिक्त सभी लोग यहाँ तक कि लक्ष्मण जी भी प्रभावित हुए। श्रीराम सबको थका हुआ जानकर, उन्हें अपने और रावण के बीच में होने वाले द्वन्द्व युद्ध को देखने की सम्मति देते हैं। इस प्रकार

की सम्मति श्रीराम जैसा अमित वीर ही दे सकता है। जिसको अपने बाहुबल पर भरोसा हो और पूर्ण निश्चय हो अपनी विजय का वही इस प्रकार का प्रस्ताव कर सकता है :—

बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वन्दजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर।।

लंका ८६

श्रीराम का समग्र जीवन ही संघर्षमय है। वे धरती का भार उतारने के लिए ही क्षत्रिय कुल में अवतरित हुए हैं। अस्तु उनके सारे कार्य-व्यापार में क्षत्रियोचित वीरता है। वे कुंभकरण तथा रावण जैसे विश्वविजयी योद्धाओं का संहार स्वयं करते हैं। रावण से होने वाले युद्ध में जहाँ भी परिस्थितियाँ गंभीर तथा भयावह दृष्टिगोचर होती हैं वे स्वयं आगे आते हैं। उनके शत्रु, मित्र तथा अन्यान्य लोग भी इस बात का अनुमान नहीं लगा सके कि उनमें कितना बल है क्योंकि भीषण से भीषण परिस्थितियों में भी उनकी वीरता सदा ही अजेय रही है। उनकी वीरता अतुलनीय तथा अमित है।



प्रजापालक राजा राम

श्रीराम का राज्य आदर्श था और वे आदर्श प्रजापालक राजा थे। यही कारण है कि रामराज्य सुराज का पर्यायवाची हो गया है। आज भी जब हम सुराज की कल्पना करते हैं तो बरबस ही रामराज्य का चित्र हमारे नेत्रों के समक्ष साकार हो उठता है। समय का अन्तराल भी आदर्श रामराज्य की स्मृति को तनिक भी धूमिल नहीं कर पाया है। विश्व में आज चारों ओर स्वच्छ प्रशासन तथा जन-कल्याण की बातें शासन में लगे हुए लोगों द्वारा निरन्तर दोहराई जाती हैं, चाहें वे राजतंत्र पद्धति के हों अथवा प्रजातंत्र पद्धति के पर हम इस घोषित लक्ष्य से बहुत दूर हैं। रामराष्य के तत्कालीन आदर्शों के किसी एक अंग की भी पूर्ति हम नहीं कर पाए हैं। इन परिस्थितियों में रामराज्य का आदर्श हमारे लिए अधिक स्पृहणीय हो गया है।

राम के जीवन पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उन्होंने अपनी किशोरावस्था से ही राजकार्य में पिता दशरथ की अनुज्ञा से सहयोग करना प्रारंभ कर दिया था। वे ऐसे ही कार्य करते थे जो कि जनकल्याणकारी हों और जिनकी संपन्नता से प्रजा को प्रसन्नता हो :—

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥

बाल ३-२०५

आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

बाल ४-२०५

श्रीराम अयोध्या के नगर निवासियों को अति प्रिय थे। राम बन-गमन के समय वे उनके वियोग-जन्य दुख से अचेत हो गए। अपने राजमहल से निकल कर गुरु वशिष्ठ के द्वार पर पहुँचते ही राम ने देखा कि नगर निवासी उनकी विरहाग्नि में दग्ध हो रहे हैं :—

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥

अयो० १-८०

श्रीराम भी अपनी प्रजा की सुख-सुविधा का पर्याप्त ध्यान रखते

थे। वे साधारण से साधारण लोगों तक की चिन्ता करते थे। बन-गमन के समय गुरु वसिष्ठ से उन्होंने अपने सेवकों का ध्यान रखने की प्रार्थना की थी। उन्होंने नगर-निवासियों से भी यही अनुरोध किया था कि वे उनके पिता महाराज दशरथ का ध्यान रखें और ऐसा ही आचरण करें कि महाराज दशरथ उनके वियोग से दुखी न हों।

श्रीराम के प्रति अयोध्यावासी कितना प्रेम रखते थे इसका पता इसी बात से चल जाता है कि श्रीराम के प्रस्थान करने के साथ ही अयोध्यावासी राम-विहीन अयोध्या को निवास के अयोग्य मान उनके पीछे ही चल पड़ते हैं। नगर के नाना प्रकार के सुख भोग भी उनको ऐसा करने से नहीं रोक सके।

श्रीराम जो कि स्वभाव से ही करुणाकर तथा दूसरों के दुखों से शीघ्र द्रवित होने वाले हैं बन के सम्भावित कष्टों का अनुमान कर नगर निवासियों को अपने पीछे जाने से विरत करने का प्रयास करते हैं, पर नगर निवासी उनका साथ छोड़ने को तैयार नहीं होते। अन्य उपाय न देखकर श्रीराम रात्रि में सभी को सोता हुआ देख कर, सुमंत्र से कहते हैं कि इस प्रकार से रथ चलाइए कि उसके गन्तव्य का पता न चले :—

खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता॥

अयो० ४-८५

अयोध्या नगर और उसके निवासी श्रीराम को कितने प्रिय थे इसका पता श्रीराम के उस कथन से चलता है जो उन्होंने अयोध्या का माहात्म्य बताते हुए अपने साथियों से कहा था। साथियों को दिखाते हुए वे कहते हैं कि यह बहुत ही पवित्र नगरी है। इसके उत्तर में सरयू नदी बहती है जिसमें स्नान करने वाले अनायास ही मुक्त हो जाते हैं। इस नगर के निवासी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। यह पुरी सुख एवं मुक्ति देने वाली है :—

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥

उत्तर ४-४ [क]

अयोध्या नगर निवासियों के प्राणप्रिय राम जब अयोध्या वापस लौटते है तो उनके दर्शन मात्र से ही नागरिकों की वियोग-जन्य विपत्ति

का अन्त प्रसन्नता में हो जाता है। वे अगणित रूप धारण कर सभी नागरिकों से क्षण भर में ही मिल लेते हैं। प्रत्येक नागरिक यही समझता है कि श्रीराम का उस पर अपार स्नेह है। तभी तो वे सर्वप्रथम उसी से मिले हैं। श्रीराम ने कृपा दृष्टि डाल कर सभी को शोक रहित कर दिया।

नगर निवासियों में भी श्रीराम के प्रति अगाध प्रेम है। श्रीराम के साथ अयोध्या पहुँचने वाले उनके सहायक भी इस प्रेम की सराहना करते हैं :—

देखि नगर बासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती।।

उत्तर २-८ [क]

श्रीराम अपनी प्रजा के हित का हर प्रकार से ध्यान रखते हैं। उनका दायित्व राजनीतिक तथा प्रशासनिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं। वे अपनी प्रजा के आध्यात्मिक उत्थान का भी ध्यान रखते हैं क्योंकि अंतिम लक्ष्य तो वही है। बीच के पुरुषार्थ तो इस परम-पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए ही हैं। एक बार उन्होंने अपने प्रजाजनों की सभा में जिसमें गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सज्जनवृन्द भी उपस्थित थे कहा कि मेरा सेवक तथा प्रिय वही है जो कि मेरी आज्ञा को माने। उन्होंने कहा कि यदि मेरी बात नीतियुक्त न हो तो आप निर्भीकतापूर्वक उसे कार्यान्वित करने से मुझे रोक दें :—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन माने जोई।।
जौं अनीति कछु भाखौं भाई। तौ मोहि बरजउ भय बिसराई।।

उत्तर ३-४३

श्रीराम की इस उक्ति से यह बात स्पष्ट है कि श्रीराम कितने निरंहकारी तथा स्पष्ट वक्ता हैं। वे सब कुछ अपनी प्रजा के प्रीत्यर्थ ही करना चाहते है। सामान्य राजाओं की भाँति वे अपने कार्य-कलापों को जनता की दृष्टि से ओझल रख कर राजा की मर्यादा को बनाए रखने के पक्षधर नहीं। अपितु वे तो अपने कार्य-कलापों पर जनता की सूक्ष्म दृष्टि चाहते हैं। इतना ही नहीं उनसे यह भी अपेक्षा करते हैं कि यदि उनसे कुछ अनुचित बन पड़े तो जनता उन्हें निर्भीकतापूर्वक टोक दे। श्रीराम अपनी प्रजा को मनुष्य-जीवन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मानव शरीर बड़ी कठिनाई से मिलता है। इस शरीर के मिलने पर मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार का प्रयास

करना चाहिए। उन्होंने यह भी बताया कि पूर्ण समर्पित भक्त सरलता से मुक्ति की प्राप्ति कर लेता है।

अयोध्या-नगर-निवासी, श्रीराम की अमृतमयी वाणी को सुनते ही उनके चरणों को पकड़ लेते हैं और कहते हैं कि आप ही हमारे माता-पिता गुरु तथा भाई हैं। आपने जो उत्तम शिक्षा प्रदान की है वह आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं दे सकता क्योंकि माता-पिता भी तो स्वार्थ के ही आधार पर संबंध रखते हैं। बिना किसी हेतु के ही सारे संसार का उपकार करने वाले आप और आपके सेवक ही हैं। अन्य लोग तो स्वार्थ में लगे हुए हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
उत्तर ३-४७

श्रीराम को इस बात का पूरा-पूरा ध्यान है कि उनके कर्त्तव्य की पूर्णता इसी में है कि उनकी प्रजा का कल्याण हो। वह अपने धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य में पूर्णतया सफल हो इसीलिए उसे जीवन के चरम लक्ष्य की ओर भी उत्प्रेरित करते हैं।

आज हम अपने अभावों एवं दुखों से तो दुखी हैं ही पर हमें इसका जितना दुख है उससे कहीं अधिक दुख इस बात का है कि दूसरे लोग हमारी अपेक्षा अधिक सुखी क्यों हैं? रामराज्य की यह विशिष्टता थी कि उस में सभी लोग शोकरहित थे। श्रीराम के प्रताप से सभी प्रकार की विषमताएँ नष्ट हो गई थीं। लोग पारस्परिक सौहार्द से मिल-जुल कर रहते थे। कोई किसी से भी बैर-भाव नहीं रखता था :—

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥
उत्तर ४-२०

भारत में, वर्ण एवं आश्रम की व्यवस्था, कर्म विभाग तथा मनुष्य को अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने की सुविधा के उद्देश्य से ही की गई थी। आज हम इसके मूल उद्देश्यों को भूल कर एकमात्र इसकी विकृति को अंगीकार कर जीवन जी रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि सुविधा एवं व्यवस्था द्विविधा में परिवर्तित हो गई है।

रामराज्य में ऐसी स्थिति न थी सारी व्यवस्था सहज रूप में थी। अयोध्या के नगर निवासी अपने-अपने वर्णों तथा आश्रमों के अनुसार अपने कर्तव्यपालन में संलग्न थे। उस कर्तव्यपालन में जो कि वेद-विहित है। इसमें उन्हें सुख की प्राप्ति होती है क्योंकि निरोगिता के कारण वे भय तथा शोक से मुक्त है।

सुख की भी एक सीमा होती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो पता चलेगा कि समाज में जिन्हें हम अपनी तुलना में अधिक सुखी मानते हैं, वे सुखी नहीं हैं। यदि उन्हें अच्छा स्वस्थ शरीर मिला है तो धनाभाव के कारण वे कुटुम्ब-पालन की चिन्ता से चिन्तित रहते हैं। जिसे पर्याप्त धन तथा वैभव सुलभ है उसको उसके भोगने योग्य स्वस्थ शरीर नहीं मिला अथवा सन्तति के अभाव में यह चिन्ता घेरे रहती है कि आखिर इस अपार संपत्ति का क्या होगा ? प्रभु की कृपा एवं संयोग से दोनों सुलभ हुआ भी तो यदि इनके सदुपयोग की सद्बुद्धि न मिली तो भी परिणाम निराशाजनक ही रहेगा। रामराज्य में श्रीराम की प्रजा दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रितापों से मुक्त थी। सभी लोग परस्पर प्रेम करते थे तथा अपने कर्तव्य में रत रह कर वेद-मार्ग पर चलते थे :—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
उत्तर १-२१

रामराज्य में धर्म अपनी पूर्णता में विद्यमान है। वह अपने चारों चरणों-सत्य, शौच, दया और दान से युक्त है। धर्म की इस पूर्णता के कारण पाप के प्रवेश को तनिक भी अवकाश नहीं है। राम-राज्य की सारी प्रजा श्रीराम की भक्ति में निरत है और इस प्रकार वे सभी मोक्ष के अधिकारी हैं। न तो किसी की अल्पायु में मृत्यु हो रही है और न अन्य किसी प्रकार की पीड़ा से ही कोई ग्रस्त है। सभी लोग सुन्दर एवं निरोगी हैं। न कोई निर्धन है न दुखी और न ही दीन। राम-राज्य में कोई भी व्यक्ति मूर्ख और लक्षणहीन भी नहीं है। लोग पाखण्डरहित, धर्मपरायण तथा पुण्यात्मा हैं। स्त्री-पुरुष सभी कुशल एवं गुणों से युक्त हैं। सभी लोग गुणों का आदर करने वाले विद्वान तथा ज्ञानी हैं। उनमें कपटाचरण का सर्वथा अभाव है। आज कल

लोग इसी में अपनी सबसे बड़ी सफ़लता मानते हैं कि वे अपने वास्तविक मनोभावों को छिपाए रखें। सोचें कुछ और करें कुछ और ही। लोगों में कृतज्ञता का भाव भी बहुत ही कम है अपना उपकार करने वालों के प्रति भी दुर्भाव रखने तथा अवसर मिलने पर अपकार करने से भी लोग नहीं चूकते पर रामराज्य में ऐसा कुछ भी न था। रामराज्य में जड़-चेतन सभी में काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणों से उत्पन्न होने वाले दुख किसी को भी पीड़ित नहीं करते थे :—

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।
उत्तर ३-२१

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।
उत्तर ४-२१

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।। उत्तर २१

अयोध्या के राजा श्रीराम सात समुद्रों से वेष्ठित पृथ्वी के एक-छत्र राजा हैं। कोई अन्य राजा उनकी प्रतिद्वन्द्विता करने में समर्थ नहीं है :—

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।
उत्तर १-२२

आज की प्रजातांत्रिक प्रणाली में भी शासन का मुख्य उद्देश्य होता है जनता का कल्याण। राजराज्य में जनता की आर्थिक स्थिति बहुत ही सुन्दर है तथा सभी सुखी हैं। सभी लोग उदार तथा परोपकारी हैं। वे सभी ब्राह्मणों के चरण सेवक हैं। उनका चरित्र भी उत्तम कोटि का है वे एक पत्नीव्रती हैं। पतियों की ही भाँति स्त्रियाँ भी निरन्तर पतिहित-चिंतिका तथा पतिव्रता हैं :—

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।
उत्तर ४-२२

श्रीराम के प्रताप से उनके राज्य में इतनी सुव्यवस्था है कि राज्य के चार मूल सिद्धान्तों-साम, दान, दण्ड और भेद के प्रयोग की

आवश्यकता ही नहीं रह गई है। दण्ड एकमात्र संन्यासियों के हाथ में ही रह गया है। कोई अपराध करता ही नहीं अस्तु दण्ड देने का प्रश्न ही नहीं उठता। कोई शत्रु रह ही नहीं गया अस्तु उसके जीतने अथवा दमन करने की बात ही नहीं रही। जीतने के लिए एकमात्र अपना मन ही रह गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से मन को जीत लेना ही आत्म-साक्षात्कार का मूलमंत्र है। भेद भी एकमात्र नर्तकों के नृत्य समाज में नृत्य के विभिन्न प्रकारों तथा सुरताल में ही रह गया है:—

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र कें राज॥

उत्तर० २२

आज प्राकृतिक आपदाओं की अधिकता है। कहीं अनावृष्टि तो कहीं अतिवृष्टि, कहीं उपल वृष्टि तो कहीं अन्यान्य रोगों का प्रकोप। कहते हैं कि मनुष्य प्रकृति से जितनी दूर जा पड़ता है, उसके आचरण में जितनी कृत्रिमता आती जाती है प्रकृति उतनी ही प्रकुपित होकर प्रतिकूल आचरण करती है। रामराज्य में ऐसा कुछ भी न था। बनों में वृक्ष सदैव फूलते तथा फलते हैं। राम-राज्य में सत्य गुण की इतनी प्रधानता है कि जिन पशुओं में जन्मजात शत्रुभाव होता है उन्होंने भी उसे भुला दिया है। पशु-पक्षी स्वाभाविक बैर भाव को भूलकर पारस्परिक प्रेम का परिचय दे रहे हैं। वे निर्भयता एवं आनन्द से बनों में विचरण करते हैं। शीतल एवं सुगंधित मंद वायु बह रहा है। भ्रमर पुष्परस लेकर गुंजार करते हुए चलते हैं। लताएँ एवं वृक्ष यथेष्ठ मधु प्रदान करते हैं। गौएँ इच्छित परिमाण में दूध दे रही हैं। धरती सदैव शस्य-श्यामला बनी रहती है। त्रेता के रामराज्य की स्थिति सतयुग की भाँति है। रामराज्य में सद्गुणों का प्राधान्य अपने युग-धर्म की अपेक्षा अधिक है:—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

उत्तर० १-२३

कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि लै चलि मकरन्दा॥

उत्तर० २-२३

लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥
उत्तर० ३-२३

रामराज्य में प्रकृति की अनुकूलता के परिणामस्वरूप पर्वतों में मणि की अनेक खाने निकल आई हैं। नदियों में सुन्दर सुखद शीतल तथा स्वादिष्ट जल प्रवाहित हो रहा है। समुद्र अपनी सीमा में ही रह रहे हैं। सीमोल्लंघन कर वे कभी भी जन धन को हानि नहीं पहुँचाते। रामराज्य के प्रभाव से वे अपने गर्भ में विद्यमान रत्नों को तट पर लाकर छोड़ देते हैं जिन्हें लोग पा जाते हैं। चंद्रमा, सूर्य रामराज्य को लाभ पहुँचा रहे हैं। चन्द्रमा अपनी किरणों से रामराज्य के समग्र भू-भाग को परिपूर्ण कर रहे हैं। सूर्य उतने ही ताप का विकिरणन कर रहे हैं जितना कि उत्पादनों तथा लोगों को स्वस्थ बनाए रखने के लिए अपेक्षित है। प्रकृति की अनुकूलता की यह चरम सीमा है कि बादल अपेक्षा के अनुसार ही वृष्टि कर रहे हैं :—

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र कें राज॥
उत्तर० २३

श्रीराम स्वयं धर्म-पालन की एक मर्यादा हैं। उन्होंने अपने शासन काल में अनेक अश्वमेघ यज्ञ किए तथा ब्राह्मणों को अनेक दान दिए। वे वेदमार्ग पर चलने वाले तथा धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं। वे त्रिगुणातीत तथा ऐश्वर्य में इन्द्र के समान हैं। उनकी धर्म सह-चरी सीता शोभा की खानि सुशीला तथा विनीता है। वे सदैव पति की आज्ञा का अनुसरण करती हैं एवं उनकी प्रसन्नता का ध्यान रखती हैं और वही सब करती हैं जिससे वे प्रसन्न हों। वे निरभिमानिता-पूर्वक कौसल्यादि सासुओं की सेवा करती हैं। कृपा-कटाक्ष के लिए लालायित देवताओं की ओर दृष्टि भी न डालने वाली जानकी अपने इस स्वभाव को त्याग कर श्रीराम के चरणों में प्रीति करती हैं :—

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥
उत्तर० २४

इतना ही नहीं श्रीराम के सभी भाई उनके अनुकूल हो उनकी

सेवा में तत्पर, उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहते हैं। श्रीराम भी भाइयों पर अत्यधिक स्नेह रखते हुए नीति की शिक्षा देते रहते हैं। नगर निवासी सदैव प्रसन्न रहते और देव-दुर्लभ भोगों को भोगते हैं। वे दिन-रात ब्रह्मा से इसी बात की प्रार्थना करते रहते हैं कि श्रीराम-चरणों में उनका प्रेम बना रहे :—

सेवहिं सानकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं ॥
उत्तर० १-२५

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ॥
उत्तर० २-२५

अहनिसि बिधिहिं मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं ॥
उत्तर० ३-२५

जनसंख्या में अनपेक्षित वृद्धि की समस्या आज भारत ही नहीं अपितु समग्र विश्व की है। रामराज्य में ऐसी कोई भी समस्या न थी। आज कृत्रिम उपायों से जनसंख्या के नियंत्रण का प्रयास किया जा रहा है। तत्समय अंगीकृत सामाजिक आचरण के बल पर ही यह नियंत्रित थी। स्वयं श्रीराम के दो ही पुत्र-लव और कुश थे। यही स्थिति उनके अन्य अनुजों की भी थी :—

दुइ सुत सुन्दर सीताँ जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥
उत्तर ३-२५

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे ॥
उत्तर ४-२५

रामराज्य में प्रजा पूर्णरूपेण श्रीराम के प्रति समर्पित है। प्रत्येक घर में पुराणों की कथाएँ होती हैं। इनमें श्रीराम के पवित्र चरित्र का वर्णन किया जाता है। स्त्री-पुरुष श्रीराम के गुणानुवाद में इस प्रकार तल्लीन हैं कि उन्हें दिन-रात कब व्यतीत हो गए इसका भी ध्यान नहीं रहता। रामराज्य के निवासियों के सुख एवं वैभव के वर्णन की बात साधारण व्यक्ति तो क्या सहस्रों शेष भी करने में समर्थ नहीं हैं :—

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥ उत्तर २६

अयोध्या नगर अति सुन्दर है। वहाँ के भवन बहुत ही रम्य हैं। गगनचुंबी अट्टालिकाएँ हैं। उनके ऊपर स्थापित प्रकाशमान कलशों का प्रकाश सूर्य एवं चन्द्रमा के प्रकाश से भी अधिक शुभ्र है। उनमें मणियों के झरोखे बनाए गए हैं। घर-घर में मणि-दीपक सुशोभित हो रहे हैं। घरों में निर्मित सुन्दर चित्रशालाओं में श्रीराम चरित्र बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किए गए हैं। उनका सौंदर्य सामान्य लोगों की बात कौन कहे मुनियों के चित्त को भी मुग्ध करने वाला है। ये भवन पुष्पोद्यानों से युक्त हैं जिनमें अनेक लताएं हैं जो कि सदैव बसन्त ऋतु की भाँति फूलती रहती हैं। इनमें भ्रमर सुंदर मनोहारी गुंजार करते रहते हैं। शीतल मन्द सुगंध वायु बहता रहता है, बालकों ने अनेक प्रकार के पक्षी पाल रखे हैं जिनके स्वर सुन्दर हैं और उड़ने में वे अच्छे लगते हैं। घरों में पले हुए ये पक्षी-मोर, हंस, सारस एवं कबूतर मणि-निर्मित दीवालों में अपनी ही परछाईं देखकर अनेक प्रकार से कूजते तथा नृत्य करते हैं। श्रीराम इतने जनप्रिय हैं कि बालक गण तोता-मैना को पढ़ाते है—राम, रघुपति तथा जनपालक :—

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक ॥
उत्तर ४-२८

वैयक्तिक भवन एवं स्थान ही सुन्दर नहीं है अपितु सार्वजनिक स्थान राजद्वार, गलियाँ, चौराहे, और बाजार सभी सुन्दर हैं। नगर की उत्तरी दिशा में पावन सरयू नदी बह रही है। घाट सुन्दर हैं। घाट सुन्दर ढंग से निर्मित हैं। वहाँ कीचड़ का नाम नहीं है। कुछ दूर पर पशुओं के जल पीने के लिए सुन्दर घाट बने हुए हैं। पानी भरने के अनेक सुन्दर घाट हैं जहाँ पुरुषों के स्नान का निषेध है। हर प्रकार से सुन्दर बनाए गए राजघाट पर चारों वर्णों के लोग स्नान करते हैं। सरयू नदी के किनारे-किनारे अनेक देव मन्दिर हैं जिनमें चतुर्दिक सुन्दर उपवन भी हैं। नदी के किनारे कहीं-कहीं विरक्त तथा ज्ञानी मुनि और संन्यासी निवास करते हैं। मुनियों द्वारा लगाई गई तुलसी के झुंड के झुंड सरयू के तट पर हैं। सभी सिद्धियाँ तथा सुख-वैभव अयोध्या में उपलब्ध हैं :—

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई ।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा ।।
उत्तर ४-२६

× × ×

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ ।। उत्तर २६

रामराज्य की सुव्यवस्था से अयोध्यावासी इतने प्रभावित एवं प्रसन्न हैं कि वे जब भी परस्पर बैठते हैं तो एक दूसरे को यही शिक्षा देते हैं कि शोभा, शील एवं गुणों की खान तथा शरण में आए हुए की रक्षा करने वाले श्रीराम का भजन करो। वे श्रीराम के विभिन्न सद्-गुणों तथा स्वरूपों का स्मरण कर उनके भजन की बात करते हैं। अयोध्यावासी इसी प्रकार श्रीराम के गुणों का गान करते हैं और कृपा-निधान श्रीराम निरन्तर उन सबके अनुकूल रहते हैं।

एहि बिधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान ।। उत्तर ३०

सुराज की यही कसौटी है कि अच्छे लोग तो उसमें प्रसन्न तथा प्रफुल्लित हों पर बुरे लोग दुखी तथा भयभीत हों। रामराज्य से अविद्या, पाप, काम, क्रोध, मत्सर, मान, मोह और मद लुप्त हो गए हैं। धर्म की प्रबलता से ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य तथा विवेक में वृद्धि हो गई है।

रामराज्य में राजा तथा प्रजा दोनों अपने-अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूपेण जागरुक थे। वे एक दूसरे से सहयोग लेते थे और सहयोग देते थे। वे जीवित थे पर दूसरों के जीवन-मूल्य पर नहीं। उनके जीवन का उद्देश्य सांसारिक सुखोपभोग तक ही सीमित न था अपितु उनकी दृष्टि जीवन के उच्चतर उद्देश्यों की ओर भी थी, अंतिम लक्ष्य था आत्म-साक्षात्कार। जब मनुष्य का लक्ष्य आत्मज्ञान का होगा तो निश्चय ही वह ईर्ष्या-द्वेष तथा घृणा-भाव जो कि आज समाज में अज्ञानतावश प्रबल हैं, से सर्वथा मुक्त होगा।

रामराज्य एक ऐसा आदर्श राज्य था कि आज भी लोग उसकी प्राप्ति का निरन्तर प्रयास करते रहते हैं। वस्तुतः राम-राज्य शब्द, राज्य की सुव्यवस्था एवं सुचारुता का एक मापदण्ड बन गया है।

□

उपास्य राम

मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है—अपने स्वरूप का वास्तविक अभिज्ञान । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु लक्ष्य तक पहुँचे हुए अनेक सद्-गुरुओं ने विभिन्न उपाय बताए हैं । जिसको जिस मार्ग से वहाँ तक पहुँचने का सुअवसर मिला है उसने उसी का गुण गाया है । उपासना शब्द का अर्थ ही है निकट बैठना । आत्मा, परब्रह्म अथवा ईश्वर, हम उसे जिस नाम से भी संबोधित करना चाहें, उसकी निकटता प्राप्त करना ही उपासना है ।

इस उपासना में विरोध अथवा वाद-विवाद को स्थान नहीं है फिर भी मनुष्य न अपनी अज्ञानता तथा विचारों की विकृति के कारण अनेक मतभेद उत्पन्न कर लिए हैं । कुछ तो स्थान, मत एवं उपास्य विशेष के अन्तर के कारण परस्पर विरोधी हो गए हैं । यह अन्तर भी साधारण नहीं इतना गहरा कि एक जिसे धर्म के नाम से अभिहित करता है दूसरा उसे ही अधर्म मानता है ।

आत्म-साक्षात्कार के प्रयासों में तीन बातें प्रमुख होती हैं—उपासना, उपासक तथा उपास्य । इस त्रिपुटी की भिन्नता का मिट जाना ही आत्म-साक्षात्कार है । देश, संप्रदाय तथा विश्वास की विभिन्नता के कारण इनमें भी विभिन्नता है । गोस्वामी तुलसीदास के समय में भी वैष्णवों तथा शैवों में अपने-अपने उपास्यों तथा उपासना-पद्धति को लेकर पर्याप्त मतभेद था । यह मतभेद विरोध की सीमा तक पहुँच गया था । अपने पक्ष के मण्डन की अपेक्षा लोग एक दूसरे के खण्डन में अपनी शक्ति और सामर्थ्य का अधिक उपयोग कर रहे थे । गोस्वामी जी की पैनी दृष्टि ने इस अनर्थकारी स्थिति को भली प्रकार देख लिया था अस्तु उन्होंने अपने रामचरित मानस में स्वयं श्रीराम के मुख से अपनी और भगवान शंकर की अभिन्नता का प्रतिपादन कराया है ।

श्रीराम ने रामेश्वरम् में समुद्र तट पर शिवलिंग की स्थापना की, यह कहकर कि मुझे शिव के समान अन्य कोई भी प्रिय नहीं है । वे आगे कहते हैं कि ऐसा उपासक जो कि बनता तो मेरा भक्त पर शिव

से वैर-भाव रखता है, वह मुझे स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। शंकर से विमुख रहकर यदि कोई मेरी भक्ति की इच्छा रखता है तो वह नितान्त अल्पज्ञ है क्योंकि शंकर की विमुखता वाले को मेरी भक्ति मिल ही नहीं सकती है। ऐसा व्यक्ति तो नितांत मूर्ख है। उसे तो नरक ही जाना होगा। जो लोग शंकर जी की तो भक्ति करते हैं पर मुझसे वैर-भाव मानते हैं या उनसे वैर-भाव रखकर मेरी भक्ति की इच्छा रखते हैं वे कल्प भर घोर नरक में निवास करेंगे :—

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
लंका ३-२

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि ना पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥
लंका ४-२

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥ लंका २

उपासना के क्षेत्र में वस्तुतः गुरु की आवश्यकता ही इसलिए है कि प्रत्येक साधक को अपेक्षित मार्ग का ज्ञान हो सके। यह आवश्यक नहीं है कि सभी के लिए एक ही उपासना-पद्धति तथा एक ही उपास्य हो। स्वामी विवेकानन्द ने तो कहा है कि जितने व्यक्ति उतने मत।

गोस्वामी तुलसीदास अपने राम चरितमानस की रचना स्वान्तः सुखाय ही करते हैं। उनका यह प्रयत्न उन्हें साहित्यकारों की पंक्ति में अपना स्थान सुरक्षित करवाने के लिए नहीं अपितु इसके माध्यम से श्रीराम की भक्ति और उसके प्रतिफल स्वरूप आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति ही है। संभवतः यही कारण है कि उनका यह राम-चरित मानस साधारण लिख-पढ़ सकने की क्षमता रखने वालों से लेकर आत्मतत्ववेत्ताओं तक के आत्मसाक्षात्कार-पथ को निरन्तर आलोकित कर रहा है। अनेक जिज्ञासु तथा मुमुक्षु इसकी सहायता से अपने मार्ग पर द्रुतगति से चले चल रहे हैं।

तुलसी के उपास्य श्रीराम अगणित उपासकों के उपास्य हैं? लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनके विभिन्न स्वरूपों की उपासना करते हैं। कोई उनके बाल स्वरूप की उपासना करता है तो कोई उनके वीरवेश की। कबीर जैसे निर्गुणकारी संत श्रीराम नाम की

उपासना करते हैं यद्यपि वे सगुणवाद में विश्वास नहीं करते। गोस्वामी तुलसीदास जी दास्य भक्ति को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं पर उपासना के अन्य क्षेत्रों का भी उन्होंने विस्तार से वर्णन किया है। योग, ज्ञान एवं वैराग्य का भी उनके द्वारा बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

राम को चाहे दशरथ नन्दन मानें, चाहे परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा उनके नाम की महिमा अमित है। गोस्वामी जी ने तो इसे ईश्वर प्राप्ति का साधन-स्वरूप-महामंत्र माना है। अन्य लोग भी नाम-जप को बहुत महत्व देते हैं। कहते हैं कि ईश्वर की ओर चलने में सबसे बड़ी बाधा अपना चंचल मन ही है। जब तक यह मन निर्वात दीप की लौ की भाँति निष्कंप न हो जायगा तब तक आत्म-साक्षात्कार का आधार ही तैयार न होगा। अस्तु मन को स्थिर करना सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसके अनेक उपाय हैं। अन्य उपायों में तो विभिन्न समुदायों तथा मार्गों के आचार्यों में मत वैभिन्य है पर जहाँ तक नाम-जप का संबंध है लगभग सभी एक मत हैं। यहाँ तक कि मुसलमान, ईसाई तथा अन्य धर्मावलंबी भी इसे मान्यता देते हैं।

नाम-जप के लिए साधक अपनी रुचि अथवा गुरु के उपदेश के अनुसार नाम का चयन करते हैं। उस परम सत्ता के विभिन्न नामों का जप विभिन्न लोगों द्वारा किया जाता है पर संभवतः रामनाम इनमें सर्वाधिक जपा जाता है। इसका कारण है इसकी सर्वव्यापकता, सर्व-सुलभता तथा जप करने में सरलता। राम नाम सभी नामों में श्रेष्ठ हो इसके लिए सीता के विरह में बन-बन में घूमते हुए भगवान राम से नारद जी इस वर की याचना करते हैं कि यद्यपि आपके अनेक नाम हैं, वे एक से एक बढ़ कर हैं फिर भी राम नाम उन सब में अधिक महत्वपूर्ण हो। पाप-समूहों के विनाश में वह सर्वाधिक समर्थ हो ऐसा वर दें। श्रीराम ने तथास्तु कह कर इसे स्वीकार किया :—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

अर० ४-४२

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम॥
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥

अर० ४२(क)

एवमस्तु मुनिसन कहेउ कृपासिन्धु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउँ माथ ।।

अर० ४२(ख)

राम-नाम-जप का अवलंब प्रारंभिक कोटि के साधकों से लेकर सिद्ध महात्मा तक लेते दिखाई देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार नाम की महिमा भगवान के दोनों सगुण तथा निर्गुण स्वरूपों से भी अधिक है क्योंकि दोनों ही उसके वश में हैं नाम तो राम से बढ़ कर है। राम ने भी भक्तों एवं अन्य जीवों का उद्धार तथा दुष्टों का संहार किया है पर नाम ने तो असंख्य लोगों का उद्धार किया है। गोस्वामी जी ने विस्तारपूर्वक श्रीराम तथा उनके नाम के कृत्यों का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि नाम का प्रभाव राम की अपेक्षा बहुत अधिक है। अन्त में वे कहते हैं कि राम नाम निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण राम दोनों से बढ़ कर है :—

ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक बरदानि ।।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ।।

बाल० २५

युग-धर्म के अनुसार वर्तमान युग-कलियुग में आत्मोद्धार का सर्व-सहज साधन नाम जप ही है। कलियुग में कर्म, भक्ति तथा ज्ञान कुछ भी नहीं है। एकमात्र रामनाम ही उपचार है। यह रामनाम और भी उपयोगी है इसलिए है कि इसका जप आलस्य में ही क्यों न किया जाय इसके जप से दशों दिशाओं में मंगल ही मंगल होता है :—

ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ।।
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ।।

बाल० २-२७

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ।।
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ।।

बाल० ४-२७

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ।।

बाल० २७

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।

बाल० ५-२८

इस प्रकार उपासना के प्रमुख साधन 'नाम जप'' जिसे ही कलि-युग के लिए सर्वाधिक उपयोगी माना गया है के लिए रामनाम सर्व-ग्राह्य एवं उपयोगी है।

उपासना की अन्य विधाओं में भक्ति भी एक परम एवं सहज विधा है। नारद, भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव विभीषण, निषाद तथा भक्त-राज हनुमान श्रीराम के प्रति दास्य भाव की भक्ति रखते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं। गोस्वामी जी भक्ति को ही सर्वाधिक सरल और सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। भक्ति स्वयं में स्वतंत्र तथा पूर्ण है इसको किसी अन्य अवलंब की आवश्यकता नहीं हैं। ज्ञान-विज्ञान भी इसी के अधीन हैं। ये नामधारी भक्त ही नहीं आज भी अनेक लोग श्रीराम की भक्ति कर भवसागर से पार हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे।

श्रीराम को भक्ति-भाव से स्मरण करने वाले तो मोक्ष प्राप्त करते हैं पर श्रीराम इतने कृपालु हैं कि वे वैरभाव से स्मरण करने वालों को भी मुक्त कर देते हैं। वे स्वयं इस तथ्य को जानते हैं कि राक्षस गण उन्हें, बैर-भाव से स्मरण करते हैं। स्वयं रावण को खरदूषण के बधोपर्यन्त इस बात का अनुमान हो गया था कि संभवतः भगवान का अवतार हो गया है। तभी वह निश्चय करता है कि मैं आग्रहपूर्वक उनसे शत्रुता करूँगा जिससे कि उनके हाथ से मृत्यु को पाकर संसार-सागर से पार हो जाऊँ क्योंकि मेरे इस तमोगुण-प्रधान शरीर से भगवान का भजन तो बन नहीं पड़ेगा :—

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तो मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
अर० ३-२३

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
अर० ३-२३

इस प्रक्रिया से अनेक राक्षसों का उद्धार श्रीराम के हाथों मृत्यु प्राप्त करने के परिणाम स्वरूप हुआ।

योग-क्रिया द्वारा अपने शरीर को भस्म कर शरभंग मुनि बैकुंठ चले गए। पहले ही भक्ति की याचना कर लेने के कारण वे श्रीराम में लीन नहीं हुए :—

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा ।।
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ।।
अर० १-६

इस प्रकार श्रीराम के चिन्तन में योग-क्रिया द्वारा इस नश्वर शरीर को समाप्त कर स्वर्ग की प्राप्ति संभव है।

मुनि अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण जो कि पूर्ण रूपेण श्रीराम के प्रति समर्पित हैं, उनके आगमन की सूचना से अत्यन्त पुलकित हैं। प्रेम मग्न होकर वे नृत्य कर रहे हैं। श्रीराम, वृक्ष की ओट से भक्त की इस प्रेमदशा को देख रहे हैं। सुतीक्ष्ण का अत्यन्त प्रेम देखकर श्रीराम उनके हृदय में प्रकट हो गए। मुनि मार्ग में ही बैठकर हृदयस्थ राम के ध्यान में तल्लीन हो गए। श्रीराम ने मुनि को अनेक विधि जगाने की चेष्टा की पर ध्यान-जनित सुख में लीन होने के कारण वे जगे नहीं तब श्रीराम ने अपना भूपरूप छिपा कर चतुर्भुज रूप प्रकट किया। जिस रूप पर ध्यान केन्द्रित था उसके लुप्त हो जाने पर सुतीक्ष्ण मणिहीन सर्प की भाँति व्याकुल होकर उठ खड़े हुए। वे अपने आगे सीता राम तथा लक्ष्मण को देखकर, श्रीराम के चरणों में दण्ड की तरह गिर पड़े। श्रीराम ने अपने विशाल भुजापाश में उन्हें बाँध कर उठा लिया और उनको अविरल भक्ति प्रदान कर दी :—

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ।।
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ।।
अर० ९-१०

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। विकल हीन मनि फनिकर जैसें ।।
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ।।
अर० १०-१०

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़ भागी ।।
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई ।।
अर० ११-१०

श्रीराम ने यथाबसर लोगों का जो प्रबोधन किया है उससे शाश्वत अध्यात्मतत्व पर प्रकाश पड़ता है। उनका अनुसरण कर मुमुक्षु अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। "प्रबोधक राम" के संदर्भ में इनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है अस्तु यहाँ इंगित मात्र करना ही पर्याप्त होगा।

राम कथा स्वतः जगतोद्धार का कार्य कर रही है। इस कथा के आदर्श से अनुप्राणित हो मनुष्य मात्र, वे चाहे जिस देश, जाति, विश्वास तथा धार्मिक मान्यता के हों, लौकिक एवं पार लौकिक दोनों प्रकार के कल्याण के लक्ष्यों की प्राप्ति सरलता पूर्वक कर सकते हैं।

रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड के अन्त में श्री गोस्वामी तुलसी दास ने यह स्पष्ट किया है कि राम-कथा के गान श्रवण तथा हृदयंगम करने से किस प्रकार राम-चरणों में प्रीति बढ़ती है जिससे अन्ततः ईश्वर की प्राप्ति संभव होती है।

गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीराम की विवाह-कथा का गान एवं श्रवण करने वाले निरन्तर उत्साहित रहते हैं क्योकि श्रीराम के यश का गान करने से मंगल की सृष्टि होती है :—

सिय रघुबीर विवाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ।। बाल० ३६१

नियम बनाकर भरत-चरित को सुनने वालो में सीताराम के चरणों में प्रेम उत्पन्न होगा। भरत चरित का श्रवण भगवान एवं उनकी परम शक्ति के प्रति भक्ति-भाव की उत्पत्ति का साधन है जिससे सहज भाव से उन्हें सांसारिक विषय-वासनाओं से विराग होगा :—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ।।
अयो० ३२६

जो लोग रावणारि श्रीराम के पवित्र यश का गान तथा श्रवण करेंगे वे जप, योग, तथा वैराग्य के बिना ही राम की दृढ़ भक्ति प्राप्त करने में सफल होंगे :—

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ।।
अर० ४६ (क)

जिस प्रकार दीप-शिखा पतिंगे को नष्ट कर देती है उसी प्रकार युवती का आकर्षण साधक की साधना को। साधक अपने मन को प्रबोधित करते हुए कहता है कि युवती का तन दीप-शिखा की भाँति है। तू अज्ञानता-वश उसकी ओर पतिंगे की तरह आकृष्ट न हो। तेरे

लिए तो उचित कर्तव्य यह है कि तू काम और मद का त्याग कर निरन्तर राम का भजन तथा सत्संग कर :—

दीप शिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥
अर० ४६ (ख)

श्रीराम का यश संसार रूपी रोग की औषधि है। जो स्त्री-पुरुष इस यश गाथा का श्रवण करते हैं उन्हें त्रिशिरारि श्रीराम सफल मनोरथ करेंगे :—

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहि जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥
किष्किंधा ३० (क)

जिनका श्याम शरीर नील कमलवत् है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है और जिनका नाम पाप रूपी पक्षियों के वध हेतु व्याध के समान है उन श्रीराम के गुणों का अवश्य ही श्रवण करना चाहिए। इसका श्रवण इसलिए करना आवश्यक है क्योंकि यही मुक्तिदायक है :—

नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥
किष्किंधा ३० (ख)

श्रीराम के गुणों का गान सभी मंगलों का दाता है। जो लोग श्रीराम के गुणगान को आदर सहित सुनेंगे वे बिना किसी अन्य साधन ही मोक्ष पा लेंगे :—

सकल सुमंगलदायक रघुनायक गुनगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥
सुन्दर ६०

श्रीराम के युद्ध विजय-चरित के श्रवण करने वाले सुजान को भगवान चिरस्थायी विजय, विवेक एवं ऐश्वर्य प्रदान करते हैं :—

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान॥
लंका १२१ (क)

साधक अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे मन! तू इस बात पर विचार कर इसे समझ ले कि कलियुग का यह काल पापों का घर है। इस काल में इन पापों से बचने का एक मात्र श्रीराम नाम के अतिरिक्त अन्य कोई भी आधार नहीं है :—

यह कलि काल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार।।

लंका १२१ (ख)

साधक की अन्तिम इच्छा है कि जिस प्रकार कामी मन काम के आधार स्त्री में अनुरक्त रहता है, उसे वही प्रिय लगती है और जिस प्रकार लोभी का मन धन में बसा रहता है, वह उसे इतना प्रिय लगता है कि हर प्रकार से उसके अर्जन और संरक्षण में दत्त-चित्त रहता है उसी प्रकार श्रीराम उसे निरन्तर प्रिय लगें, निर्बाध रूप से उसका मन श्रीराम-भक्ति में लगा रहे : -

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।।

उत्तर० १३० (ख)

गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस पुण्य-रूप है। यह पापों का हरण करने वाला तथा कल्याणकर है। यह विज्ञान तथा भक्ति का प्रदाता एवं माया, मोह तथा मल का नाश करने वाला परम प्रेमरूपी जल से परिपूर्ण एवं मंगलमय है। जो लोग भक्ति पूर्वक इस रामचरित मानस का पठन-पाठन एवं मनन करते हैं, सांसारिक कष्ट उन्हें नहीं व्यापते :—

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं
माया मोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।

उत्तर० श्लोक २

इस प्रकार राम-उपासना के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रभावी, सहज तथा कल्याणकारी हैं। उनके उपासकों की संख्या में दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस का

योगदान भी महत्वपूर्ण है। राम के उपासकों के लिए रामचरित से अधिक प्रिय कोई भी वस्तु नहीं है। इस कलियुग में उपासना के अन्य साधन योग, यज्ञ, तप, ब्रत तथा पूजादि कोई भी उतने प्रभावी नहीं हैं जितना कि श्रीराम के चरित का स्मरण एवं गुणानुवाद। श्रीराम की प्रतिज्ञा है पतितोद्धार की। उन्हीं का भजन मन की कुटिलता को त्यागकर करना चाहिए। राम का भजन करने से सभी को सुगति प्राप्त हुई है :—

राम उपासक जे जगमाहीं। एहि सम प्रिय तिन कें कछु नाहीं॥
उत्तर० २-१३० (क)

एहिं कलि काल न साधन दूजा। जोग जग्य जप. तप, ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥
उत्तर० ३-१३० (क)

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥
उत्तर० ४-१३० (क)

राम नाम और चरित जन-जन के मन-मस्तिष्क में समा गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह विद्यमान है। अपने देश के मनुष्यों के जीवन में तो एक दूसरे के अभिवादन में राम राम अथवा जयराम शब्दों का प्रयोग होता है। यदि किसी पर संकट पड़ने अथवा उसके दिवंगत होने की सूचना मिलती है तो श्रोता के मुख से हठात् ही राम राम निकल पड़ता है। यदि किसी के द्वारा किए गए अनुचित कार्य को इंगित करना होता है तो कहा जाता है कि राम राम यह क्या किया? अनिश्चित भविष्य के संबंध में पूछे जाने पर बहुधा लोग कहते हैं कि राम जानें। असह्य शारीरिक पीड़ा की स्थिति में राम राम शब्द का बार-बार उच्चारण होता रहता है। विपत्ति के अवसरों तथा जीवन के अंतिम क्षणों में भी हाय राम अथवा हे राम का उच्चारण होता है। इस प्रकार राम शब्द का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र एवं स्थिति के कार्य-कलापों के लिए होता रहता है। इससे यह स्पष्ट है कि राम शब्द हमारे जीवन में किस प्रकार समरस हो गया है। यह सब इस बात का प्रमाण है कि राम के चरित की उदात्तता ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को परिव्यात कर रखा है। यह उसकी

सर्वग्राह्यता का पुष्ट प्रमाण हैं। राम शब्द हमारे लौकिक कार्य-कलापों की अपेक्षा पारलौकिक को अधिक प्रभावित करता है।

राम शब्द आदर्श का प्रतीक है इसका उच्चारण होते ही श्रीराम का आदर्श जीवन नेत्रों के समक्ष उभर कर आ जाता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामान्य से सामान्य तथा विशिष्ट कार्य व्यापारों में भी उनका आचरण तत्समय ही नहीं अपितु आज भी हमारे समक्ष आदर्श रूप में प्रस्तुत है। ''राम'' शब्द सत्य का भी प्रतीक है। असत्य क्षण भर के लिए चाहे जितना प्रबल एवं प्रभावी क्यों न प्रतीत हो अन्ततः वह पराभूत होगा और विजय सत्य की ही होगी।

भारतवर्ष विशेष कर उत्तर भारत में आत्म-साक्षात्कार के जिज्ञासुओं के लिए राम नाम अमोघमंत्र है। इसका तथा श्रीराम के चरित का गुणानुवाद कर लोग सहज ही संसार सागर से पार हो जाते हैं। उपासना के क्षेत्र में राम और उनका चरित सर्वाधिक प्रभावशाली है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि अन्य अवतारों अथवा इष्टों का प्रभाव नगण्य है। इसका एकमात्र भाव यह है कि श्रीराम का जप, स्मरण एवं चरित का गान अपेक्षाकृत अधिक सहज तथा सुबोध है। यही कारण है कि उसकी ग्राह्यता सर्वाधिक है।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१६	वशिष्ठ	विश्वामित्र
२५	१८	प्रवत्ति	प्रवृत्ति
३४	६	प्रयुर	प्रचुर
३५	११	काण्य	काण्ड
३६	११	बरिखण्डा	बरिबण्डा
४६	२४	साकाश्य	संकाश्य
४८	१७	जानकी की	जानकी को
४८	१७	राम को	राम की
७२	३	हुख	दुख
८०	१, २, ४	कवि	कपि
६५	१६	साँधरी	साँथरी
६६	११	प्राणा	प्राण
१०१	२१	सुख	सुत
१२८	२	झँकना	झँपना
१३७	२६	वृतज्ञता	कृतज्ञता
१३६	२७	सामग्र	सामग्री
१५२	२२	समाहीत	समादृत
१६८	२०	अतिसम	अतिसय
१६८	३०	जीवन	जीव
१८१	५	आए	जाए
१६०	१३	संस्सेति	संसृति
१६६	३	सखाण	सखागण
२१३	१	ल	लें
२२६	१०	बतें	बातें
२३७	३	डारही	बारहीं